जोंकी व्यवहारका आचरण करना योग्य है ; शीघ्र ही इस सर्पको मार डालो, इसमें कुछ भी शङ्का मत करो ।

भीष्म बोले, व्याधने सांपको मारनेके लिये गौतमीको बार बार उत्तेजित किया, परन्तु उस महाभागाने पापकार्य्यमें मन नहीं लगाया । अनन्तर पाश-पीड़ित सर्प लम्बी सांस छोड़के अत्यन्त कष्टसे धीरज धरके मृदुस्वरसे मनुष्य वाक्य बोलने लगा ।

सर्प बोला, हे मूर्ख अर्जुन ! इस विषयमें मेरा क्या दोष है । मैं पराधीन और परवश हूं, इसलिये मृत्युने ही मुझे प्रेरणा किया है, मैंने मृत्युकी आज्ञानुसार इसे काटा है, कोप अथवा कामानुसार दंशन नहीं किया है, इसमें यदि पाप हो, तो जिसने मुझे प्रेरणा किया है, वह पाप उसे ही लगेगा ।

व्याधा बोला, हे भुजङ्ग ! तुम यदि दूसरेके वशमें होकर यह अशुभ कर्म्म किया करते हो, तौभी तुम इस विषयमें कारण हो, इसलिये तुम भी पापभागी हो । हे सर्प ! जैसे मट्टीके पात्र बनानेमें दण्ड, चक्र, जल और सूत कारण रूपसे कल्पित होते हैं, वैसे ही तुमभी इस विषयमें कारण होनेसे पापभागी हो । हे पन्नग ! पाप करनेवाले मेरे बध्य हैं, तुम भी पापी मालूम होते हो और इस विषयमें अपनेको ही कारण कहते हो ।

सर्प बोला, दण्ड चक्र प्रभृतिकी भांति सब ही अस्वतन्त्र हैं, इसलिये मैं भी अवश हूं, इससे मेरा यह दोष तुम्हारे समीप युक्ति-सम्मत नहीं हो सकता, अथवा यदि तुम्हें ऐसा ही सम्मत हो, तो दण्डचक्र प्रभृति परस्परको प्रयोजक हो सकते हैं और परस्परकी प्रेरणावशसे कार्य्य कारणमें सन्देह हुआ करता है ; यदि ऐसा ही माना जावे, तौभी मेरा दोष नहीं है, मैं बध करनेके योग्य अथवा पापी नहीं हूं, यदि तुम इसमें पाप होना समझते हो, तो समवायको ही पाप होसकता है, अर्थात् यदि चेतनके निबन्धनसे मेरा बध करना ही तुम्हें सम्मत है, तो एकमात्र बध-कार्य्यमें साक्षात् और परस्पर सम्बन्धसे अनेकोंको प्रयोजकता है, इसलिये विभागके अनुसार सबको ही पाप लगेगा, केवल मैं ही पापी नहीं हूं ।

व्याधा बोला, तुम यदि विनाश कार्य्यमें अपनेको कारण अथवा कर्त्ता नहीं समझते हो, तौभी इस विनाशके विषयमें साक्षात् सम्बन्धसे तुम ही कारण हो, इसलिये मेरे विचारमें तुम बध करनेके योग्य हो । हे भुजङ्ग ! पाप कार्य्य करके भी यदि कर्त्ता अपनेको उससे लिप्त न समझे, तब तो इस विषयमें कोई भी कारण नहीं होसकता, इसलिये उपस्थित विषयमें तुम ही कर्त्ता हो, इसीसे बध्य मालूम होते हो, क्यों तुम बड़ीबोल बोलते हो ?

सर्प बोला, कर्त्ताके रहनेपर कुठाराद्यमन आदि कार्य्यसे छेदन किया हुआ करता है, और कर्त्ताके न रहनेपर भी वृक्षोंकी डालियोंका आपसमें सङ्घर्षण होनेसे कार्य्यवशसे उसहीसे अग्नि प्रगट होके वनको जला देती है ; इसलिये कारणके रहने अथवा न रहने पर भी जैसे कार्य्यकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही इस तुल्य हेतुक स्थलमें मेरा कारणत्व विशेष रीतिसे विचारना चाहिये । हे व्याध ! यदि मैं कारण अर्थात् प्रयोजक कर्त्तृरूपसे यथार्थमें ही तुम्हारे समीप युक्तिसम्मत होऊं, तो शाखाके प्रयोजक वायुकी भांति मेरा प्रयोजक दूसरा कोई कर्त्ता अवश्य है, इस जीवके नाश विषयमें वही पापी हो सकता है ।

व्याधा बोला, रे नीच बुद्धि अधम सर्प ! तू जानकर इस बालकका प्राण-नाशरूपी अत्यन्त नृशंस कार्य्य करके बध्य हुआ है ; बध्य होके भी बार बार बड़ी बात करता है ।

सर्प बोला, हे व्याध ! जैसे ऋत्विक् लोग यज्ञमें घृतकी आहुति देनेसे उसके फलभागी

नहीं होते, इस विषयके फल सम्बन्धमें मैं भी वैसा ही हूं।

भीष्म बोले, मृत्यु-प्रेरित सर्पके ऐसा कहते रहने पर मृत्यु स्वयं उस स्थानपर उपस्थित हुई और उस सर्पसे कहने लगी।

मृत्यु बोली, हे सर्प! मैंने कालके द्वारा प्रेरित होकर तुम्हें प्रेरण किया था, इसलिये तुम इस बालकके विनाश-विषयमें कारण नहीं हो, मैं भी इसके नाशका कारण नहीं हूं। हे सर्प! जैसे वायु बादलोंको इधर उधर कर देता है, वैसे ही मैं भी बादलकी भांति कालके वशमें हूं, जो सब सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भाव है, वे सभी कालात्मक होकर प्राणिमात्रमें निवास करते हैं। हे भुजङ्ग! द्युलोक वा भूलोकमें जितने स्थावर जङ्गम जीव हैं, वे सभी कालात्मक हैं, इसलिये यह जगत् कालस्वरूप कहा जाता है; इस लोकमें प्रवृत्ति निवृत्ति अथवा जो कुछ प्राणियोंकी विकृति होती है, वह सब कालात्मकरूपसे बोधित हुआ करती है, हे पन्नग! सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, जल, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मित्र, पर्जन्य, अदिति, नदी, समुद्र, ऐश्वर्य्य और अनैश्वर्य्य, ये सब ही कालके द्वारा बार बार उत्पन्न और संहृत होते हैं। हे सर्प! ऐसा जानके भी तुम मुझे क्या दोषी समझते हो? यदि इसमें मुझे दोष लगे, तो तुम भी दोषी हो।

सर्प बोला, हे मृत्यु! मैं तुम्हें सदोष वा निर्दोष नहीं कहता हूं, मैं केवल तुम्हारे द्वारा प्रेरित हुआ हूं, इतना ही कहता हूं। यदि कालको दोष लगता हो अथवा उसमें दोष लगना अभिलषित न हो;—उस दोषकी परीक्षा करना मेरा कार्य्य नहीं है, क्यों कि उस विषयमें मैं अधिकारी नहीं हूं, इस दोषको निर्मोचन करना जैसे मेरा कर्त्तव्य है, वैसे ही इस विषयमें जिस प्रकार मृत्युका भी दोष न हो, वह भी मेरा प्रयोजन है।

भीष्म बोले, अनन्तर सर्प अर्जुनकसे बोला, हे व्याध! तुमने मृत्युका वचन सुना, अब मैं निरपराधी हूं, मुझे पाशबन्धनके द्वारा दुःखित करना तुम्हें उचित नहीं है।

व्याध बोला, हे भुजङ्ग! मैंने मृत्युका और तुम्हारा वचन सुना है, परन्तु इससे तुम्हारी निर्दोषिता सिद्ध नहीं होती है, मृत्यु और तुम इस बालकके विनाशविषयमें कारण हो, मैं तुम दोनोंको ही कारण समझता हूं, जो कारण नहीं है, उसे कारण नहीं कहता। साधुओंको दुःख देनेवाली क्रूर दुष्टात्मा मृत्युको धिक्कार है और पापके हेतु पापात्मा तुम्हें भी धिक्कार है; मैं तुम्हारा अवश्य वध करूंगा।

मृत्यु बोली, हम निर्दिष्ट कर्म्म करनेवाले परवश तथा कालके वशग हैं, इसलिये यदि तुम पुरोहितसे विचार करोगे, तो हम लोगोंको दोषयुक्त न कह सकोगे।

व्याध बोला, हे मृत्यु! हे सर्प! यदि तुम दोनों ही कालके वशमें हो, तब हम लोगोंको परोपकारके विषयमें हर्ष और अपकारोंके विषयमें जिस प्रकार द्वेष उत्पन्न होता है, उसे स्पष्ट रूपसे प्रकट करो, मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

मृत्यु बोली, इस जगत्के बीच प्राणियोंमें जो कुछ कार्य्य संघटित होते हैं, काल ही उन सबका प्रयोजक है। हे व्याध! कालकी प्रेरणानुसार जो सब कार्य्य हुआ करते हैं, उन्हें मैंने पहले ही कहा है, ईश्वरके वशमें रहनेवाला पुरुष सत् वा असत् कर्म्म करके स्तुतियुक्त अथवा निन्दनीय नहीं होता; इसलिये हम दोनों ही कालके वशमें होकर यथा निर्दिष्ट कार्य्य करते हैं। हे व्याध! इसलिये तुम हम लोगोंको किसी विषयमें दोषी नहीं कह सकते।

भीष्म बोले, अनन्तरउस धर्म्मार्थ संशयके समयमें काल स्वयं उपस्थित होकर सर्प, मृत्यु और अर्जुन नामक व्याधसे यह वचन कहने लगा।

कालने कहा, हे व्याध ! मृत्यु, मैं और सर्प, हम तीनों ही जीवोंकी मृत्युके विषयमें निष्पाप हैं, क्यों कि हम लोग केवल प्रयोजक मात्र हैं, हे अर्ज्जुन ! इस बालकने जैसा कर्म्म किया था, वह कर्म्म ही हम लोगोंका प्रयोजक है, इसके विनाशका कारण दूसरा कोई भी नहीं है, यह बालक निज कर्म्मवशसे मरा है इस पुरुषने जो कर्म्म किया था, उसहीके द्वारा मृत्युको प्राप्त हुआ ; इसलिये कर्म्म ही इसके विनाशका कारण है, हम सब लोग कर्म्मके वशीभूत हैं, कर्म्मसे ही लोगोंकी उत्तम गति मिलती है अर्थात् कर्म्म पुत्रकी भांति लोगोंका उद्धार करता है, कर्म्मफलके मिलनेसे ही लोगोंका पुण्य पाप जाना जाता है ; जैसे सब कर्म्म परस्परके प्रयोजक होते हैं, हम लोग भी वैसे ही हैं। जैसे कर्त्ता मट्टीके पिण्डसे जैसी इच्छा करता है, वैसा ही पात्र बनाता है, मनुष्य भी उस ही प्रकार अपने किये हुए कर्म्म फलको पाता है। जैसे छाया और धूपका सदा सम्बन्ध है, वैसे ही कर्म्म और कर्त्ता सदा ही आत्मकर्म्मोंके द्वारा सम्बन्धविशिष्ट है। इसलिये मैं, मृत्यु, सर्प, तुम अथवा बूढ़ी ब्राह्मणी, हम लोग कोई भी इस बालककी मृत्युके कारण नहीं हैं, बालक ही इस विषयमें कारण है। हे राजन् ! कालके ऐसा कहते रहनेपर 'सब लोग अपने कर्म्मसे ही स्वर्ग नरक भोग करते हैं' ब्राह्मणी गौतमी ऐसा निश्चय करके अर्ज्जुनसे कहने लगी।

गौतमी बोली, काल, सर्प और मृत्यु, तुममेंसे कोई भी इस बालकके मरनेके विषयमें कारण नहीं हैं, इस बालकने निज कर्म्मोंके द्वारा ही मृत्यु लाभ की है। मैंने भी ऐसा शोकप्रद कर्म्म किया था, जिससे कि मेरा यह पुत्र पञ्चत्वको प्राप्त हुआ है ; इस समय काल मृत्यु गमन करें, हे अर्ज्जुन ! तुम भी सर्पको छोड़ दो।

भीष्म बोले, अनन्तर काल, मृत्यु और सर्पके चले जानेपर अर्ज्जुनका शोक छूटा और गौतमी भी शोक रहित हुई। हे महाराज ! इसे सुनके तुम शान्ति अवलम्बन करो, शोक मत करो। हे महाराज ! सब कोई निजकर्म्म-निबन्धनसे स्वर्ग और नरकलोकमें गमन किया करते हैं। राजा लोग जिन कर्म्मोंके सहारे मारे गये, वे तुम्हारा अथवा दुर्य्योधनके कृत कर्म्म नहीं थे ; जानना चाहिये, कि वे कालके द्वारा रचित हुए थे।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, महातेजस्वी धर्म्मज्ञ युधिष्ठिर भीष्मका ऐसा वचन सुनके शोकरहित हुए और उनसे यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगे।

१ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सब शास्त्रोंके जाननेवाले महाप्राज्ञ पितामह ! मैंने यह महत् आख्यान सुना, अब फिर आप धर्म्मयुक्त जो इतिहास कहें, उसे मैं सुननेकी अभिलाष करता हूं, इसलिये आपको उसकी व्याख्या करनी उचित है। हे नरपाल ! किस गृहस्थने धर्म्मके सहारे मृत्युको पराजित किया है, इस वृत्तान्तको आप यथार्थ रूपसे बयान करिये।

भीष्म बोले, गृहस्थ मनुष्यने धर्म्मके सहारे मृत्युको पराजित किया है, इस विषयमें प्राचीन लोग इस पुरान इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हे राजन् ! प्रजापति मनुके इक्ष्वाकु नामक एक पुत्र था, उस सूर्य्य समान तेजस्वी राजाके एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। हे भारत ! उसके दशवें पुत्रका नाम दशाश्व था, वह सत्य पराक्रमी धर्म्मात्मा माहिष्मती नगरीका राजा हुआ था। दशाश्वका पुत्र परम धर्म्मात्मा मदिराश्व नामक राजा पृथ्वीमण्डल भरमें

प्रसिद्ध हुआ था। सत्य, तपस्या और दान विषयमें उसका चित्त सदा रत रहता था और वह धनुर्व्वेद तथा वेदमें भी अनुरक्त था। मदिराश्वके पुत्रका नाम द्युतिमान था, वह महाबली महातेजस्वी, महाभाग और महासत्त्व शाली था। द्युतिमानका पुत्र परम धार्म्मिक सुवीर नाम राजा सब लोकोंमें विख्यात हुआ, वह धर्म्मात्मा अधिक धन सम्पत्तिशाली और दूसरे इन्द्रके समान कोषवान था। सुवीरका पुत्र सर्व्व संग्राम दुर्जय सब शास्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ सुदुर्जय नामसे विख्यात था। सुदुर्ज्जयके इन्द्रके समान शरीरसे युक्त अग्नि सदृश तेजस्वी महाराज दुर्योधन नामक पुत्र हुआ। उस इन्द्र समान पराक्रमशाली युद्धमें अपरांमुख राजाके राज्यमें देवराज यथारीतिसे जलकी वर्षा करते थे। अनेक प्रकारके शस्य, पशु और धन रत्नसे उस समय उसका राज्य तथा नगर परिपूर्ण था; उसके राज्यमें कोई कृपण वा दरिद्र नहीं था, और उसके राज्य शासनके समयमें कोई पुरुष रोगी अथवा कृश नहीं हुआ था। हे भारत! उस मृदुभाषी, असूया रहित, जितेन्द्रिय, धर्म्मात्मा, अनृशंस, पराक्रमी, अनात्म श्लाघा परायण, विधिपूर्व्वक यज्ञ करनेवाले, अन्तरिन्द्रिय निग्रहशील, मेधावी, ब्रह्मनिष्ठ, सत्य, सङ्गर, अनवमन्ता, वदान्यवर, वेद-वेदान्तके जाननेवाले उत्तम दक्षिणा देनेवाले पुरुषप्रवर पृथ्वीपालकी शीतल जलसे युक्त कल्याणदायिनी पुण्यतमा देवनदी नर्म्मदाने स्वाभाविक कामना की थी। हे महाराज! राजा दुर्योधनने उस नर्म्मदा नदीसे एक सुदर्शना नामकी राजीवलोचना कन्या उत्पन्न की, वह कन्या केवल नामसे ही नहीं; रूपसे भी सुदर्शना थी। हे युधिष्ठिर! दुर्योधनकी कन्या जैसी सुन्दरी थी, स्त्रियोंके बीच वैसी सुन्दरी स्त्री पहले कभी उत्पन्न नहीं हुई थी। हे राजन्! अग्निने स्वयं ब्राह्मणका वेष धरके उस राजकन्या सुदर्शनाकी कामनासे राजाके निकट उसे पानेके लिये प्रार्थना की थी। ब्राह्मण मेरा असवर्ण और दरिद्र है, ऐसा समझके राजाने उस विप्रको सुदर्शना कन्या दान करनेकी अभिलाषा नहीं की। अनन्तर उस भूपतिके वैतानिसाध्य यज्ञमें हव्यवाहन अग्निदेव अन्तर्धान हुए, राजा उस समय अत्यन्त दुःखित होकर ब्राह्मणोंसे यह वचन बोला, हे द्विज-श्रेष्ठगण! मुझसे अथवा आप लोगोंसे ऐसा कौनसा पापकर्म्म हुआ है जिससे कि कुपुरुषके उपकारकी भांति अग्निदेव अदृश्य हुए। हम लोगोंका अल्प पाप नहीं है; क्यों कि अग्नि विनष्ट हुई। यह हमारा अथवा आपका पाप है, इसे यथार्थ रीतिसे विचारिये, हे भरतप्रवर! उस समय वे सब ब्राह्मण राजाका वचन सुनके नियमनिष्ठ और वाक्संयत होकर अग्निदेवके शरणागत हुए। शरतकालके सूर्य्य समान तेजस्वी भगवान हव्यवाहनने उस समय निज रूपको प्रकाशित करके ब्राह्मणोंको दर्शन दिया। अनन्तर महानुभाव अग्नि उन ब्राह्मणोंसे बोले, मैं अपने लिये दुर्योधनकी कन्याको चाहता हूं। इस वचनको सुनके ब्राह्मण लोग विस्मित हुए और अग्निने जो कुछ कहा था, भोरके समय उठके वह सब वृत्तान्त राजाके समीप वर्णन किया। उस बुद्धिमान् राजा ब्रह्मवादियोंके मुखसे ऐसा वचन सुनके परम हर्षित होके कहा, कि ऐसा ही होगा और भगवान् अग्निके निकट शुल्कस्वरूप यह वर मांगा कि, हे विभावसु! इस स्थानमें आप सदा निवास करिये, भगवान अग्निदेव राजाका वचन सुनके बोले, कि "ऐसा ही होवे।" तभीसे माहिष्मती नगरीमें अग्नि सदा विद्यमान है, जब सहदेवने दक्षिण दिशा जीतनेके लिये प्रस्थान किया था, तब उन्हें प्रत्यक्ष दीख पड़ा था। अनन्तर राजा दुर्योधनने उस कन्याको नवीन वस्त्र पहराके सब आभूषणोंसे भूषित करके महात्मा

अग्निको प्रदान किया, अग्निने भी अध्वरमें वसुधाराकी भांति उस राजकन्या सुदर्शनाको प्रतिग्रह किया। उसके कुल-शील शरीरकी सुघराई और श्रीदेखके अग्निदेव प्रसन्न होके उसे पुत्र प्रदान करनेमें मनोयोगी हुए। अग्निके द्वारा उस राजकन्याके गर्भसे सुदर्शन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ; सुदर्शन सुघराई और गुणमें पूर्णचन्द्रके समान हुआ, उसने बालक अवस्थामें ही सम्पूर्ण सनातन वेद अध्ययन किया।

नृग राजाके पितामह ओघवान् नामके राजा थे, उनके ओघवती नामकी कन्या और ओघरथ नामका पुत्र था, ओघवानने स्वयं विद्वान् सुदर्शनके साथ अपनी देवरूपिणी कन्याका विवाह किया। हे महाराज! सुदर्शनने उस ओघवतीके साथ गृहस्थाश्रममें रत होके कुरुक्षेत्रमें निवास किया था। हे नरनाथ! महातेजस्वी धीमान् सुदर्शन 'गृहस्थ होके मृत्युको जय करूंगा' ऐसी ही प्रतिज्ञा करके पत्नीसे बोले, कि तुम भी अतिथियोंके विषयमें किसी प्रकारसे प्रतिकूल आचरण न करना, प्रतिदिन अतिथि जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा प्रसन्न हों, तुम आत्मप्रदान करके भी उस कार्य्यको सिद्ध करना, इस विषयमें कुछ भी विचार न करना। हे सुश्रोणि! मेरे हृदयमें सदा यह व्रत विद्यमान है, कि गृहस्थ मनुष्योंके निमित्त अतिथिसे बढ़के और कुछ भी नहीं है। हे शोभने! हे वामोरु! यदि तुम मेरे वचनको मानो, तो सन्देहरहित होके सदा इस ही वचनको हृदयमें धारण करो। हे कल्याणि! हे पापरहित! मैं चाहे घरसे बाहर रहूं, अथवा घरमें ही रहूं, मेरा वचन यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो तुम अतिथिकी अवमानना न करना। ओघवती उस समय हाथ जोड़के पतिसे बोली, तुम्हारी आज्ञा हर प्रकारसे मुझे पालन करना उचित है। हे राजन्! उस समय मृत्यु उस गृहस्थ सुदर्शनको जिगीषा परवश और छिद्रान्वेषी होकर सदा उसके पीछे पीछे घूमने लगी। जब अग्निपुत्र सुदर्शनने काष्ठ लानेके निमित्त गमन किया, तब यमने ब्राह्मणका वेष धरके अतिथि होकर उस ओघवतीसे कहा, हे वरवर्णिनि! गृहस्थाश्रम-सम्मत धर्म्म यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो मेरा तुम आतिथ्य करो, मेरी यही अभिलाषा है। हे नरनाथ! यशस्विनी राजपुत्री उस ब्राह्मणका ऐसा वचन सुनके वेदविहित विधिके अनुसार उसका सत्कार करने लगी, तथा ब्राह्मणको आसन और पाद्य देकर बोली, हे विप्रवर! आपका कौनसा प्रयोजन है? तब ब्राह्मण उस सुन्दरी राजकन्यासे बोला, हे कल्याणि! मैं तुम्हें ही चाहता हूं, तुम निशङ्क होकर ऐसा ही आचरण करो। हे राजकन्या! गृहस्थाश्रम सम्मत धर्म्म यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो तुम आत्मप्रदान करके मेरा प्रियकार्य्य सिद्ध करो। राजपुत्रीने अन्य अन्य अभिलषित वस्तु देनेको ब्राह्मणको लोभ दिखाया, तो भी उसने उसके आत्म प्रदानके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु न मांगी। तब राजकन्याने पतिका वचन स्मरण करके लज्जापूर्व्वक ब्राह्मणसे कहा, कि "ऐसा ही होवे।" अनन्तर उस राजकन्याने गृहस्थाश्रमकी इच्छा करनेवाले पतिका वचन स्मरण करके हंसकर उस ब्राह्मणके साथ निर्ज्जन गृहमें बैठी; अनन्तर अग्निपुत्र सुदर्शन काठ लेकर घरपर आके उपस्थित हुए। रौद्र भावयुक्त मृत्यु अदृश्य भावसे सदा उनकी निकटवर्त्ती थी।

अनन्तर अग्निपुत्र उस समय अपने आश्रममें आके उस ओघवतीको 'कहां गई' ऐसा कहके बार बार आह्वान करने लगे। पतिव्रता सती उस समय उस ब्राह्मणके दोनों हाथोंसे आलिङ्गित रहनेसे पतिको कुछभी उत्तर न देसकी मैं पतिके समीप उच्छिष्ट हुई, ऐसा विचारती हुई लज्जित होकर वह साध्वी चुप होरही, तथा कुछ भी न बोली, अनन्तर सुदर्शनने फिर

उसी प्रकार कर कहा, 'वह साध्वी कहां है?' वह कहां चली गई? इससे बढ़के और गुरुतर विषय दूसरा कौनसा होगा? पतिव्रता सत्यशीला, सदा सरल स्वभाववाली वह प्रिय तमा किस निमित्त विस्मययुक्त होकर आज पहिलेकी भांति प्रकाशित नहीं होती है। सुदर्शन ऐसा ही वचन कह रहे थे, उस समय कुटीमें स्थित ब्राह्मणने उन्हें उत्तर दिया, कि हे आग्नेय! तुम्हें विदित हो, कि मैं अतिथि उपस्थित हुआ हूं। हे सत्तम! मैं तुम्हारी भार्य्याके द्वारा अनेक प्रकारके सत्कारोंसे प्रलोभित होने पर भी केवल इसकी ही प्रार्थना की है, यह वही शुभानना विधिपूर्व्वक मेरा सम्मान करती है, इस विषयमें दूसरा जो कुछ कार्य्य तुम्हें उपयुक्त बोध हो, अर्थात् स्त्री-दूषणके अनुसार यदि दण्ड देना उचित हो, तो तुम उसका अनुष्ठान करो। "अतिथिव्रत परित्याग करके जो प्रतिज्ञासे भ्रष्ट होता है, उसका बध करूंगा", ऐसा विचार कर मृत्यु देव लोहदण्ड धारण करके उस पुरुषकी अनुगामी हुए हैं। सुदर्शन ऐसा वचन सुनके कर्म्म, मन, नेत्र और वचनसे ईर्षा तथा क्रोध परित्याग करके विस्मित होकर यह वचन बोले, हे विप्रवर! आपकी सुरत हो, मुझे उससे परम प्रसन्नता होगी; अतिथि-सत्कार ही गृहस्थका परम धर्म्म है। जिस गृहस्थके घरमें अतिथि आकर पूजित होके गमन करता है, उससे बढ़के दूसरा कोई भी श्रेष्ठ धर्म्म नहीं है,—ऐसा पण्डित लोग कहा करते हैं। मेरा प्राण, पत्नी और दूसरा जो कुछ धन है, वह सब अतिथियोंको दान करूंगा, यही मेरा सङ्कल्पित व्रत है। हे विप्र! मैंने सन्देहरहित होकर जिस प्रकार यह वचन कहा है, वैसे ही सत्यके सहारे स्वयं, आत्माको अवलम्बन करता हूं।

हे धार्म्मिक प्रवर! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि ये पांच और बुद्धि, आत्मा, मन, काल तथा दिशा, ये दश सदा देहधारियोंके शरीरमें स्थित रहके सुकृत और दुष्कृत कर्म्मोंको अवलोकन करते हैं। आज मैंने जो यह सत्य वचन कहा है, उस सत्यके सहारे देवता लोग मुझे पालन करें, अथवा भस्म करें। हे भारत! अनन्तर "यही सत्य है, इसमें कुछ भी झूठ नहीं है," ऐसा ही शब्द सब ओरसे प्रकट हुआ। अनन्तर उदयशील वायुकी भांति शरीरको सहारे वह ब्राह्मण उस कुटीसे बाहर निकला और उदात्तादि धर्म्मविशिष्ट स्वरसे प्रथम उस धर्म्मज्ञ सुदर्शनका नाम लेके उन्हें आमन्त्रण करके यह वचन बोला, हे पापरहित! तुम्हारा मङ्गल हो, मैं धर्म्म हूं, मैं तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये इस स्थानमें आया था। हे सत्यज्ञ! जाननेसे अब तुम्हारे ऊपर मेरी अत्यन्त प्रीति हुई। छिद्रान्वेषी मृत्यु जो कि सदा तुम्हारा पीछा कर रहा है, तुमने उसे जय किया है और धैर्य गुणसे वशीभूत किया है। हे पुरुषोत्तम! तुम्हारे इस पतिव्रता साध्वीको स्पर्श करनेकी बात तो दूर है, इसको और देखनेकी भी तीनों लोकके बीच किसीकी सामर्थ नहीं है। यह तुम्हारे गुणसे तथा पतिव्रता गुणसे रक्षित हुई है। यह अदृष्या साध्वी जो कहेगी, वह मिथ्या न होगा। यह ब्रह्मवादिनी निज तपस्यासे संयुक्त होकर लोकको पवित्र करनेके लिये श्रेष्ठ नदी होगी। तुम इस जन्ममें इस ही शरीरसे सब लोकोंमें गमन करोगे, और यह महाभागा अर्द्ध शरीरसे ओघवती नामकी नदी होगी और आधे शरीरसे तुम्हारा अनुगमन करेगी, योगबलसे यह दो शरीर धारण कर सकेगी, क्योंकि योग इसके वशमें है, तुमने तपोबलसे जिन लोकोंको प्राप्त किया है, इसके सहित उन्हीं लोकोंमें जाओगे; जहांपर जानेसे फिर मर्त्त्यलोकमें नहीं आना होता, तुम इस ही शरीरसे उस शाश्वत सनातन लोकमें गमन

करोगी। मृत्यु तुमसे निर्ज्जित हुई है, तुमने उत्तम ऐश्वर्य्य पाया है, तुमने निज वीर्य्यबलसे मनोजव होकर पञ्चभूतोंको अतिक्रम किया है। तुमने इस गृहस्थधर्म्मके सहारे काम और क्रोधको जीता है। हे ऋषिराज! इस राजपुत्रीने तुम्हारी सेवाके सहारे स्नेह राग, तन्द्रा, मोह और द्रोहको विशेष रूपसे जय किया है।

भीष्म बोले, अनन्तर देवराज इन्द्र सफेद रङ्गवाले हजार घोड़ोंसे युक्त उत्तम रथ लेकर उस ब्राह्मणके निकट उपस्थित हुए। हे नरनाथ! उस ब्राह्मणने अतिथिके विषयमें भक्तिवशसे मृत्यु, आत्मा, सब लोक, पञ्चभूत, बुद्धि, काल, मन, व्योम, काम तथा क्रोधको जय किया था, इसलिये गृहस्थाश्रमी पुरुषके लिये अतिथिके समान दूसरा कोई भी देवता नहीं है, इसे मनही मन विचारो। अतिथि पूजित होनेसे मनहीमन जो शुभचिन्ता करता है, उसकी समानता सौ यज्ञके फल भी नहीं कर सकते, इसलिये पण्डित लोग कहा करते हैं कि अतिथि सत्कारका फल उससे भी अधिक हुआ करता है। शीलवान् सत्पात्र अतिथिके उपस्थित होनेसे जो पुरुष उसका सत्कार नहीं करता, उसे वह अतिथि अपना पापका फल देकर उसके पुण्यफलको लेकर चल देता है। हे तात! पहिले समयमें गृहस्थ पुरुषके द्वारा मृत्यु जिस प्रकार पराजित हुई थी, यह वही उत्तम आख्यान मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया है। यह उत्तम आख्यान धन यश और आयुको वृद्धि करनेवाला है। ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्य इसे सब पापोंको नष्ट करनेवाला समझते हैं। हे भारत! जो विद्वान् पुरुष नित्य इस सुदर्शन चरितको कहता है, वह पुण्य लोक पाता है।

२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णोंको यदि ब्राह्मणत्व प्राप्त होना दुष्प्राप्य है, तो महानुभाव विश्वामित्रने क्षत्रिय होके किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया था। इसे मैं यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे पुरुषश्रेष्ठ धर्म्मात्मा पितामह! आप मेरे समीप इस विषयका वर्णन करिये। हे पितामह! उस अत्यन्त वीर्य्यशाली विश्वामित्रने तपस्याके प्रभावसे महात्मा वसिष्ठके एक सौ पुत्रोंका नाश किया था। उनके शरीरमे क्रोध उत्पन्न होनेपर उन्होंने कालान्तक समान बहुतेरे महातेजस्वी यातुधान राक्षसोंको उत्पन्न किया था। एक सौ ब्रह्मर्षियोंसे युक्त विद्यावान् अत्यन्त महान् कौशिक वंश इस मनुष्य लोकमें ब्राह्मणोंके द्वारा स्तुतियुक्त होकर स्थापित हुआ है; ऋचीकके पुत्र महातपस्वी शुनःशेफ पशुत्वको प्राप्त होकर महायज्ञसे विमोचित हुए; हरिश्चन्द्र निज तेजके सहारे यज्ञमे देवताओंको सन्तुष्ट करके बुद्धिमान् विश्वामित्रका पुत्रत्व लाभ किया। देवताओंने विश्वामित्रको देवरात नामक जो पुत्र प्रदान किया था, उसके ज्येष्ठ तथा राजा होनेपर भी उनके अन्य पुत्रोंने उसे प्रणाम नहीं किया, इसीसे उन्होंने उन पचास पुत्रोंको शाप दिया, वे सब चाण्डाल होगये। इक्ष्वाकुका पुत्र त्रिशङ्कु वसिष्ठके शापसे चाण्डाल होगया, इसीसे उसके बान्धवोंने उसे परित्याग किया। अनन्तर उनके दक्षिण दिशाको अवलम्बन करके अवाक्शिरा होनेपर विश्वामित्रने उसे स्वर्गमें भेजा। विश्वामित्रकी कौशिकी नामकी देवर्षियोंसे सेवित एक बड़ी नदी थी, उस कल्याणी पुण्यसलिलवाली श्रेष्ठ नदीको देवता और ब्रह्मर्षिलोग सदा सेवा करते थे। पञ्चचूड़वती उत्तम और प्रसिद्ध रम्भानामकी अप्सरा उसकी तपस्यामें विघ्न करनेसे शाप वशसे शिला होगई थी। इस ही ऋषिके भयसे पहिले समयमें वसिष्ठ मुनि प्रस्तरखण्डके सहित

जलमें डूबे थे और विपाश होकर फिर जलसे ऊपर उठे थे, तभीसे उस पवित्र सलिलवाली महानदी महात्मा वसिष्ठके उस ही कर्म्मसे विपाशा नामसे विख्यात् हुई है। जब विश्वामित्र त्रिशङ्कुके यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए, तब वसिष्ठ मुनिके पुत्रोंने उन्हें यज्ञ करके शाप दिया, कि "जब तुम चाण्डालके पुरोहित हुए हो, तो स्वयं चाण्डाल होजाओगे।" इस ही शापके सत्य होनेके निमित्त किसी आपदकालमें विश्वामित्रने चौर्य्यवृत्तिसे कुत्तेका निकृष्ट मांस चुराकर उसे पकाना आरम्भ किया था, इतने ही समयमें इन्द्रने बाजपक्षीका रूप धरके उस मांसको हरण किया। उस समय विश्वामित्रने वचनसे भगवान् इन्द्रकी स्तुति की, इन्द्रने प्रसन्न होकर उन्हें शापसे मुक्तकर दिया उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुव और ब्रह्मर्षियोंके बीच जो उदीची दिशाको अवलम्बन करके सदा नक्षत्र रूपसे प्रकाशित होरहे हैं, हे कौरव! उस विश्वामित्रके ये सब तथा अन्यान्य कर्म्मोंको सुनके, कि क्षत्रियके द्वारा यह सब घटना हुई थी, इसमें मुझे अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न हुआ है। हे भरतश्रेष्ठ! यह घटना किस प्रकार हुई थी, आप उसे वर्णन करिये। विश्वामित्र बिना दूसरा शरीर धारण किये ही किस प्रकार ब्राह्मण हुए। हे तात! हमारे समीप इन समस्त वृत्तान्तोंको वर्णन करनेके योग्य आप ही हैं, जैसा मतङ्गका वृत्तान्त है, वैसे ही इसे भी आप मेरे निकट वर्णन करिये। हे भरतप्रवर! मतङ्गने शूद्रके सहारे ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न होके कठिन तपस्या करनेपर भी ब्राह्मणत्व लाभ नहीं किया, वह युक्तिसङ्गत है, परन्तु विश्वामित्रने किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया।

३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे तात पृथापुत्र! पहिले समयमें विश्वामित्रने जिस प्रकार ब्राह्मणत्व और ब्रह्मर्षित्व प्राप्त किया था। उसे यथार्थ रीतिसे कहता हूं, सुनो। हे भरतप्रवर! भरतवंशमें आजमीढ़ नामक यज्ञ करनेवाला धार्म्मिकोंमें श्रेष्ठ एक राजा था। गङ्गा जिसकी पुत्री कहाती हैं, वही जन्हु उसके मुख्य पुत्र थे; उनके महायशस्वी सिन्धुद्वीप गुणोंमें उन्हींके सदृश पुत्र हुआ, सिन्धुद्वीपसे महाबली बलाकाश्व राजर्षि उत्पन्न हुआ। साक्षात् धर्म्मसमान उसके वल्लभ नाम पुत्र हुआ। इन्द्रके समान तेजस्वी उसका पुत्र कुशिक हुआ; कुशिकका पुत्र श्रीमान गाधि नामक राजा था, वह अपुत्र होनेसे वनवासी हुआ था। जब वह वनमें निवास कर रहा था, तब उसके एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका सत्यवती नाम रखा, पृथ्वी मण्डलमें वैसी रूपवती और कोई स्त्री नहीं थी। महातपस्वी भृगुवंशी च्यवन मुनिके पुत्र जो कि ऋचीक नामसे विख्यात हैं, उन्होंने राजासे उस कन्याके निमित्त प्रार्थना किया, शत्रुनाशन गाधिराज पहले महानुभाव ऋचीकको दरिद्र समझके अपनी कन्या देनेमें सम्मत नहीं हुए। अनन्तर जब ऋचीक मुनि वहांसे लौटकर चलने लगे, तब नृपसत्तम गाधिराजने उनसे कहा, कि तुम मुझे शुल्क प्रदान करो, तो मेरी कन्याका पाणिग्रहण कर सकोगे।

ऋचीक मुनि बोले, मैं तुम्हारी कन्याका क्या शुल्क प्रदान करूं, उसे तुम निःसन्देह मुझसे कहो।

महाराज गाधि बोले, हे भार्गव! चन्द्रमाकी किरण समान प्रकाशमान वायुके सदृश वेगशाली और जिनके एक कान श्यामवर्ण हैं, वैसे एक हजार घोड़े मुझे दो।

भीष्म बोले, अनन्तर उस भृगुवंशीय च्यवन मुनिके पुत्र ऋचीकने अदितिपुत्र जलाधिपति वरुणदेवसे कहा कि, हे देवसत्तम! एककर्ण श्यामवर्ण और चन्द्रकिरण समान सफेद, वायु समान वेगशाली एक हजार घोड़े पानेके लिये मैं आपके समीप भिक्षा मांगता हूं। अदिति-

पुत्र वरुणदेवने भृगुसत्तम ऋचीक मुनिसे कहा "बहुत अच्छा"—तुम्हें जिस स्थानपर उन घोड़ोंके निमित्त अभिलाषा होगी, उस ही स्थानमें ऐसे लक्षणोंसे युक्त एक हजार घोड़े प्रकट होजांयगे। अनन्तर ऋचीक मुनिके ध्यान करते ही महातेजस्वी चन्द्रमा समान सफेद एक हजार श्यामकर्ण घोड़े गङ्गाजलसे प्रकट हुए; कान्यकुब्ज देशके समीप जिस स्थानमें ये घोड़े प्रकट हुए थे, अबतक भी मनुष्य उसे अश्वतीर्थ कहा करते हैं। हे तात। अनन्तर तपस्वी श्रेष्ठ ऋचीक मुनिने प्रसन्न होकर शुल्कके निमित्त महाराज गाधिको वेही एक हजार उत्तम श्यामकर्ण घोड़े प्रदान किये, गाधिराज उसे देखकर विस्मित हुए और शाप भयसे डरके अपनी कन्याको सब आभूषणोंसे भूषित करके ऋचीक मुनिको प्रदान किया। ब्रह्मर्षिसत्तम ऋचीक मुनिने विधिपूर्व्वक उस कन्याका पाणिग्रहण किया, वह भी उन्हें पति रूपसे पाके परम हर्षित हुई। हे भारत। ब्रह्मर्षि ऋचीक उसके चरित्रसे हर्षित हुए और उससे कहा, कि तुम्हें पुत्र दान करूंगा, इस प्रकार वर देके उस वरवर्णिनीको प्रलो-भित किया। हे भारत। कन्याने वह सब वृतान्त अपनी मातासे कह दिया।

अनन्तर माताने उस अधोवदनवाली अपनी पुत्रीसे कहा, हे पुत्री। तुम्हारा पति मुझ पर भी कृपाकर सकता है, वह महातपस्वी पुत्र देनेमें समर्थ है। हे राजन्। इतनी बात सुनके उसने शीघ्र ही पतिके निकट जाके माताका सब अभिप्राय कह सुनाया। तब ऋचीक मुनिने उससे कहा, हे कल्याणि। मेरे प्रसादसे तुम्हारी माताके शीघ्रही गुणवान पुत्र जन्मेगा। तुम्हारे भी गुणवान और यशस्वी हमारे वंशकी वृद्धि करनेवाला श्रीमान महान् पुत्र उत्पन्न होगा; यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं। हे कल्याणि! तुम और तुम्हारी माता जब ऋतुमती होकर स्नान करने पर अश्वत्थ और उडुम्बर वृक्षको आलिङ्गन करना, तब मेरे वचनके अनुसार तुम दोनोंको पुत्र लाभ होगा। हे शुचिस्मिते! वह और तुम इन मन्त्रयुक्त दो चरु भोजन करना, तब तुम दोनोंको ऐसे ही गुणोंसे युक्त दो पुत्र होंगे। अनन्तर सत्यवती अत्यन्त हर्षित होके माताके निकट गई, और ऋचीक मुनिने जो कुछ कहा था, वह सब वृतान्त तथा चरुके विषयको वर्णन किया। तब उसकी माता निज पुत्री सत्यवतीसे बोली, हे पुत्री! मैं तुम्हारे पतिसे भी तुम्हारे समीप मान-नीय हूं, इसलिये तुम मेरा वचन प्रतिपालन करो, तुम्हारे पतिने तुम्हें जो मन्त्रयुक्त चरु दिया है, वह मुझे दो और जो चरु मुझे दिया है, उसे तुम लो। हे शुचिस्मिते! हे अन-न्दिते! मैं तुम्हारी माता हूं, यदि मेरा वचन तुम्हें प्रमाण हो, तो हम दोनों उन दो वृक्षोंको आलिङ्गन करें। सब कोई अपने लिये उत्तम और निर्म्मल पुत्रकी कामना करते हैं, भगवान् ऋचीकने भी अवश्य इस ही प्रकार क्या होगा यह शेषमें मालूम होजायगा। हे सुमध्यमे! इस ही निमित्त तुम्हारे वृक्ष और चरुमें मेरी अभिरुचि हुई है। जिस प्रकार तुम्हारा भाई श्रेष्ठ हो, तब वैसीही चिन्ताकरो।

हे युधिष्ठिर। सत्यवती और उसकी माताने ऊपर कहे हुए वचनसे उस ही प्रकार आचरण किया अनन्तर वे दोनों गर्भवती हुईं, भृगु सत्तम ऋचीक मुनिने अपनी भार्य्या सत्यवतीको गर्भ वती देखकर दुःखित होकर कहा, हे कल्याणि! चरु अदल बदल करना तुम्हारा उपयुक्त कार्य्य नहीं हुआ है, यह पीछे मालूम होगा और तुमने जो वृक्षमें उलट फेर किया है, वह स्पष्ट ही मालूम होरहा है। मैंने तुम्हारे चरुमें विश्वब्रह्मतेज परिपूरित किया था और तुम्हारी माताके चरुमें सम्पूर्ण क्षत्रिय तेज भरा हुआ था। तुम्हारे तीनोंलोकके बीच निज गुणोंसे

विख्यात् ब्राह्मण पुत्र हो और तुम्हारी माताके क्षत्रिय पुत्र होवे, इस ही लिये मैंने ऐसा किया था। हे शुभे! तुम दोनोंने जब उसमें हेर फेर किया है, तब तुम्हारी माताके एक उत्तम ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न होगा और तुम्हारे प्रचण्ड कर्म्म करनेवाला एक क्षत्रिय पुत्र होगा। हे भद्रे! हे भाविनि! तुमने मातृस्नेहके वशमें होकर इस प्रकार वृक्ष और चरुको बदलके उत्तम कार्य्य नहीं किया।

हे महाराज! वह वरवर्णिनि सत्यवती ऐसा वचन सुनके शङ्कित तथा दुःखित होकर टूटी हुई मनोहारिणी लताकी भांति पृथ्वीपर गिर पड़ी। कुछ समयके अनन्तर गाधिराज पुत्री सावधान होके हाथ जोड़के सिर झुकाकर भार्गव श्रेष्ठ पतिको प्रणाम करके कहने लगी। हे वेदज्ञवर विप्रर्षि! मैं तुम्हारी भार्य्या हूं, इससे प्रसन्न होके आप मुझपर कृपा करिये,— जिससे कि मेरे क्षत्रिय पुत्र न हो। यदि आपकी इच्छा हो, तो मेरा पौत्र उग्र कर्म्म करनेवाला क्षत्रिय होसकेगा, परन्तु जिसमें मेरा पुत्र क्षत्रिय न हो, वही करिये। हे ब्रह्मन्! आप मुझे यही वर दीजिये, महातपस्वी ऋचीकमुनि अपनी भार्य्यासे बोले,—'ऐसा ही होगा।' हे राजेन्द्र! अनन्तर सत्यवतीके शुभलक्षणसे युक्त यमदग्नि नाम पुत्र उत्पन्न हुआ और यशस्विनी गाधिराजकी भार्य्या ऋषिके प्रसादसे ब्रह्मर्षि विश्वामित्रकी जननी हुई। महातपस्वी विश्वामित्रने क्षत्रिय होके भी ब्राह्मणत्व लाभ किया और नीचा करके ब्राह्मण वंशके कर्त्ता हुए। उनके महानुभव व … ब्राह्मण वंशकी वृद्धि करनेवाले तपस्वी, ब्रह्मवित और गोत्रकर्त्ता हुए थे; उनके ये नाम हैं,- भगवान् मधुच्छन्द, वीर्य्यवान् देवरात, अचीण, शकुन्त, बभ्र, कालपथ, विख्यात् याज्ञवल्क्य, महाव्रतस्थूल, उलूक, मुद्गल, सैन्धवायन, ऋषि, भगवान् वल्गुजङ्घ, महर्षि गालव, रुचि, विख्यात्वज्र, सालङ्कायन, लीलाढ्य, नारद, कूर्च्चामुख, वाहुलि, मूषल, वक्षोग्रीव, आङ्घ्रिक, नैकदृक्, शिलायूप, शित, शुचि, चक्रक, मारुतन्तव्य, वातघ्न, आश्वलायन, श्यामायन, गार्ग्य, जावालि, सुश्रुत, कारीषि, संश्रुत्य, पर पौरवतन्तव, महर्षि कपिल, ताड़कायन ऋषि, उपगहन, आसुरायणि ऋषि, मार्गमऋषि हिरण्याक्ष जङ्घारि, वाभ्रवायन, भूति, विभूति सूत, सुरकृत, आरालि, नाचिक, चाम्पेय, उज्जयन, नवतन्तु बकनख, शयन, यति, अम्भोरुह, अमत्स्यशी, शिरीषी गार्द्दभि, उर्ज्जयोनि, रुदापेक्षी और महर्षि नारदी, ये सब विश्वामित्रके पुत्र ब्रह्मवादी मुनि थे।

हे महाराज युधिष्ठिर! महातपस्वी विश्वामित्रके क्षत्रिय होनेपर भी ऋचीक मुनिके द्वारा जो पहले चरुमें ब्रह्मतेज प्रवेशित किया गया था, उस ही निमित्त उन्होंने क्षत्रियवीर्य्यसे उत्पन्न होके भी ब्राह्मणत्व लाभ किया था। हे भरतश्रेष्ठ! यह मैंने तुम्हारे समीप चन्द्रमा सूर्य्य तथा अग्निके समान तेजस्वी विश्वामित्रकी उत्पत्तिका वृत्तान्त यथार्थ रूपसे वर्णन किया। हे नृपसत्तम! फिर जिन विषयोंमें तुम्हें सन्देह हो, वह मुझसे कहो, मैं तुम्हारा सब सन्देह मिटा दूंगा।

४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्म्मज्ञ पितामह! मैं आनृशंस्य धर्म्म और भक्तोंके गुणको सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप इसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें महानुभाव शुक और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। काशिराजके राज्यमें कोई व्याधा गांवसे निकलकर विषमें बुझे हुए बाण ग्रहण करके हरिणोंकी खोजमें घूम रहा था। मृगयाके समय महाव-

नमें उस मांसलोभी व्याधने थोड़ी दूरपर हरिणोंका झुण्ड देखकर बाण साधा। दुर्व्वारितास्त्र व्याधने मृग मारनेके लिये बाण चलाया, वह बाण निशानेसे बिचलकर बनमें एक बृहत् वृक्षमें विद्ध हुआ। वह वृक्ष विषमें बुझे हुए तीक्ष्ण बाणसे बलपूर्व्वक वेधित होनेसे फल और पत्तोंको त्यागके सूखने लगा। उस वृक्षको ऐसी अवस्था होनेपर भी उसके कोटरमें बहुत समयसे निवास करनेवाला एक शुकपक्षी भक्तिवशसे वहांसे पृथक् न हुआ। धर्म्मात्मा कृतज्ञ शुक, निष्प्रचार, निराहार, ग्लानियुक्त और शिथिल वचन होकर वृक्षके सहित सूखने लगा। इन्द्र उस अतिमानुषी बुद्धिवाले उदार और सुख दुःखको समान माननेवाले महाप्राणी शुकको देखकर विस्मित हुए। उन्होंने सोचा, कि इस पक्षीने किस प्रकार तिर्य्यग् योनिमें असम्भाव्य पराये दुःखसे दुःखितभाव अवलम्बन किया है। अथवा इन्द्रको इस विषयमें कुछ आश्चर्य नहीं मालूम हुआ, क्यों कि मनुष्य पशु पक्षी आदि सब प्राणी तथा सब जातिमें ही दया और निठुरता प्रभृति दीख पड़ती हैं। अनन्तर इन्द्र ब्राह्मणवेषसे मनुष्य रूप धारण कर पृथ्वीपर उतरके उस शुक पक्षीसे बोले, हे विहङ्गवर शुक! दक्ष दौहित्री शुकी तुम्हारे द्वारा उत्तम प्रजायुक्त हुई है, मैं तुमसे पूछता हूं, कि तुम किस लिये इस वृक्षको परित्याग नहीं करते?

अनन्तर शुक पूछनेपर सिर झुकाके उन्हें प्रणाम करके बोला, हे देवराज! आपने सुखसे आगमन किया है न? मैंने ज्ञानदृष्टिके सहारे आपको पहचाना है। अनन्तर इन्द्रने 'साधु साधु' ऐसा वचन कहा और क्या ही आश्चर्ययुक्त विज्ञान है? ऐसा विचारके मनही मन उसकी प्रशंसा करने लगे। बलसूदन इन्द्रने उस शुभ कर्म्म करनेवाले परम धार्म्मिक शुकको ऐसा जानके भी वृक्षके विषयमें उसकी सहृदताका विषय पूछा। यह वृक्ष पत्तारहित फलहीन, सूखा और पक्षियोंका अनाश्रय है, इसलिये इस महावनके बीच दूसरे, सजीव वृक्षोंके विद्यमान रहते किस निमित्त तुम इस सूखे वृक्षमें बास करते हो? इस महावनमें दूसरे बहुतेरे वृक्ष हैं, उनका कोटर पत्तोंसे परिपूर्ण है, देखनेमें सुन्दर हैं, तुम उन वृक्षोंपर सहजहीमें उड़के जासकते हो। हे धीर! इसलिये तुम बुद्धिके सहारे विचार करके इस निर्ज्जीव, सामर्थ्यरहित, सारहीन, श्रीरहित सूखे वृक्षको परित्याग करो।

भीष्म बोले, धर्म्मात्मा शुक इन्द्रका वचन सुनके लम्बी सांस छोड़ते हुए दुःखित होके कहने लगा। हे शचिपति सुरराज! दैव वचन अनतिक्रमणीय है, जिस विषयमें आपने प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनिये। मैंने इस वृक्षपर जन्म लिया है, बाल्य अवस्थासे प्रतिपालित और सद्गुणयुक्त हुआ हूं, शत्रुओंसे कभी आक्रान्त नहीं हुआ। हे पापरहित! मैं पराये दुःखसे दुःखित, अभियुक्त भक्त और अनन्य गतिसे युक्त हूं, आप क्यों करुणा करके मुझमें जन्मका शोक उत्पन्न करते हैं? दया ही साधुओंके महत् धर्म्मका लक्षण है, वही उन्हें सदा प्रसन्न किया करती है। देवता लोग सन्देहयुक्त होनेसे आपसे ही उस विषयमें प्रश्न करते हैं। हे देव! इस ही निमित्त आप देवताओंके आधिपत्य पर प्रतिष्ठित हुए हैं। हे सहस्रलोचन! मुझे सदाके लिये इस वृक्षको त्यागना उचित नहीं है। जब यह वृक्ष समर्थ था, तब इसे उपजीव्य करके इस समय किस प्रकार इसे परित्याग करूं। धर्म्मात्मा इन्द्र शुकका प्रिय वचन सुनके हर्षित होकर उससे बोले, मैं तुम्हारी अनृशंसतासे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं, तुम वर मांगो। सदा पर दुःखसे दुःखित शुकने उस समय उस वृक्षके हरे होनेके लिये वर मांगा। देवराज उस सुग्गेको उस

वृक्षपर दृढ़भक्ति और शील सम्पत्ति मालूम करके प्रसन्न हुए और शीघ्र ही अमृत छिड़कके उस वृक्षको हरा कर दिया। अनन्तर वह वृक्ष शुकके दृढ़ भक्ति निबन्धनसे फल पत्र और मनोहर शाखासे युक्त होकर श्रीमान् हुआ। हे महाराज! शुकने भी उस अनृशंस कर्म्मके सहारे आयु शेष होनेपर इन्द्रके समान लोक प्राप्त किया। हे मनुजेन्द्र! जैसे वृक्षने शुकको आश्रय देकर सिद्धि लाभ की, वैसे ही जो लोग भक्तिमान पुरुषको आश्रय देते हैं, वे सब प्रयोजनोंमें सिद्धि लाभ करते हैं।

५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्व शास्त्र विशारद महाप्राज्ञ पितामह! दैव (भाग्य) और पुरुषकार (उद्योग) इन दोनोंमेंसे कौन श्रेष्ठ कहा जायगा। भाग्य सब विषयोंका मूल होने पर भी बिना पुरुषार्थके कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता; इसलिये भोग और मोक्षकी इच्छा करने वाले मनुष्योंको अवश्य ही पुरुषार्थ करना उचित है। इसमें यदि दोनों विषय ही श्रेष्ठ हुए, तब इन दोनोंके बीच अधिक श्रेष्ठ कौन होगा?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्मा और वशिष्ठ मुनिके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पहिले समयमें भगवान् वशिष्ठ मुनिने सोचा, कि दैव अर्थात पूर्व्वकर्म्म और मानुष अर्थात वर्त्तमान कर्म्म, इन दोनोंमेंसे श्रेष्ठ कौन है? अनन्तर उन्होंने यह विषय पितामहसे पूछा था। हे महाराज! अनन्तर कमलसे उत्पन्न भये देवोंके देव पितामह ब्रह्मा अर्थ तथा युक्तियुक्त मधुर वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, बिना बीजके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती और बिना बीजके फलकी भी उत्पत्ति नहीं होती; बीजसे ही बीज उत्पन्न हुआ करता है; इसलिये यह निश्चित है, कि बीजसे ही फल होता है। कृषक खेतमें जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल पाता है, वैसे ही सुकृत रूपी बीजको बोके लोग उस ही भांति फल पाते हैं। जैसे बिना खेतके उप्त बीज निष्फल होते हैं, वैसे ही पुरुषार्थके बिना भाग्यको कदापि सिद्धि नहीं होती; इसलिये पण्डित लोग पुरुषार्थको खेत भाग्यको बीज रूपसे उदाहरण दिया करते हैं, खेत और बीजके सम्बन्ध निबन्धनसे शस्योंकी वृद्धि हुआ करती है। यह लोकमें प्रत्यक्ष दीख पड़ता है, कि कर्त्ता स्वयं अपने सुकृत वा दुष्कृत कर्म्मोंका फल भोगता है। किये हुए कर्म्म सर्व्वत्र ही फलित होते हैं और अकृत कर्म्मोंका फल कहीं भी नहीं दीख पड़ता। सब कृती पुरुष ही भाग्यके अनुसार प्रतिष्ठा पाते हैं और अकृति मनुष्य भ्रष्ट होकर क्षत्रमें क्षार सेचन लाभ किया करता है, मनुष्य तपस्यारूपी कर्म्मके सहारे रूप, सौभाग्य और विविध रत्नोंको पाता है, अकृतात्मा पुरुष दैववशसे उसे नहीं पा सकता। इसके अतिरिक्त समस्त भोग, स्वर्ग और मनोकामना युक्त जो कुछ निष्ठा हैं, उन सबको विहित कर्म्म करनेवाला पुरुष प्रयत्नके सहारे पाता है। पुरुषार्थसे ही नक्षत्रों, देवताओं, नागों, यक्षों, चन्द्रमा, सूर्य्य और मरुद्गणोंने मनुष्यत्व उलङ्घन करके देवत्व लाभ किया है। अर्थ मित्र और कुल परम्परासे प्रचलित ऐश्वर्य्य तथा श्रीसम्पत्ति अकृतकर्म्मा मनुष्योंको प्राप्त होनी अत्यन्त दुर्लभ हैं। ब्राह्मण पवित्रतासे श्री लाभ करता है, क्षत्रिय पराक्रमसे सम्पत्तिवान होता है, वैश्य पुरुषार्थके सहारे धनी होता और शूद्रसेवासे ही श्रीसम्पन्न हुआ करता है। सब अर्थ अदाताको सेवा करते हैं और कादर, क्रियारहित, निषिद्ध कर्म्म करनेवाले, निबल और जो पुरुष तपस्वी नहीं हैं, वेभी अर्थवान नहीं होते।

जिसने तीनों लोकोंकी सृष्टि की है और देवता तथा दैत्य जिससे उत्पन्न हुए हैं, वह यही भगवान् विष्णु समुद्रगर्भमें तपस्या करता है। यदि अपने किये हुए कर्म्मोंका फल न रहे, तो सब लाभ ही निष्फल होजावें, भाग्यको लक्ष्य करके उदासीन होना न चाहिये। बिना पुरुषार्थ किये जो पुरुष भाग्यका अनुवर्त्तन करता है, स्त्रीके निकट क्लीव पतिकी भांति वह पुरुष भी वृथा परिश्रम किया करता है। पापकर्म्मसे देवलोकमें जैसा भय उत्पन्न होता है, मनुष्य लोकमें शुभाशुभ कर्म्मोंसे वैसा भय नहीं होता। उत्तम रीतिसे पुरुषका विहित प्रयत्न भाग्यके ही अनुसार किया करता है; बिना कर्म्म किये दैव किसीको भी कुछ देनेमें समर्थ नहीं होता, अकस्मात् निधि प्राप्त होनेपर भी उसमें किञ्चित कर्म्मकी सहायता है। जब कि, देव लोकमें इन्द्रादि स्थान भी अनित्य दीख पड़ते हैं, तब बिना पुण्य कर्म्मके देवता लोग ही किस प्रकार स्थित रहेंगे और कैसे अन्य प्राणियोंको स्थापित करेंगे। देवता लोग इस लोकमें किसी पुरुषके पुण्यकर्म्मका अनुमोदन नहीं करते, धर्म्ममें विघ्न करनेवाले उग्रकर्म्म आत्माभिभवकी शंकासे विशेष आसङ्ग उत्पन्न करते हैं। ऋषिवृन्द और देवताओंको सदा ही शत्रुता उत्पन्न हुआ करती है अर्थात् ऋषियोंकी तपस्याके समय देवता लोग विघ्न आचरण करते हैं और यह प्रसिद्ध है, कि च्यवन आदि ऋषियोंने इन्द्रादि देवताओंको पराजित किया था। इसलिये यदि दैवर्षियोंका भी इस प्रकार कर्म्मपरत्व हुआ है, तौभी यह नहीं कहा जासकता कि "भाग्य नहीं है," क्यों कि भाग्य ही पुरुषको कर्म्ममें प्रवृत्त कराया करता है। जब दैव ही कर्म्मका प्रवर्त्तक हुआ, तब भाग्यके बिना किस प्रकार कर्म्मकी उत्पत्ति हो सकती है। पुण्यवान पुरुष निज धर्म्ममें प्रवृत्त होता है, धर्म्मसे पुरुष बढ़ता है, नहीं तो सभी धर्म्ममें प्रवृत्त न होते। जैसे इस लोकमें अत्यन्त धनवान पुरुष वाणिज्यका फैलाव करके अतुल अर्थ उपार्ज्जन करता है, वैसे ही पुण्यवान पुरुष स्वर्ग लोकमें पुण्यके सहारे बहुतसा भोग उपभोग किया करता है। जीव आप ही अपना बन्धु और आप ही अपना शत्रु है, आप ही अपने कृत और अकृत कर्म्मफलका साक्षी है। कर्म्म करनेसे ही पाप पुण्य प्रकाशित होता है; सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म्म यथार्थरूपसे फलदायक नहीं होते, उसका कारण यह है, कि पुण्यके द्वारा पाप और पापसे पुण्य नष्ट होके दोनोंके फल स्वर्ग और नरकका भोग नहीं प्राप्त होता। पुण्य ही देवताओंका गृहस्वरूप है, पुण्यसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है, पुण्यवान् मनुष्यके निकट दैव क्या कर सकता है, पुण्यकी अधिकता होनेसे दैव कर्म्म भी नष्ट हुआ करता है।

पहिले समयमें राजा ययाति स्वर्गसे भ्रष्ट होके पृथ्वीपर गिरे और पुण्य कर्म्म करनेवाले दौहित्रोंके द्वारा फिर स्वर्ग लोकमें चले गये, राजऋषि पुरूरवा जो इलाका पुत्र कहके विख्यात है, वह राजा पहिले समयमें ब्राह्मणोंसे अभिहित होकर स्वगमें गया। अयोध्याके राजा सौदास अश्वमेध आदि यज्ञोंके द्वारा सत्कृत होके भी महर्षिके शापवशसे मनुष्यभक्षी राक्षस हुए थे। अश्वत्थामा और परशुराम दोनों ही सुनिपुण और महाधनुर्द्धर होके भी इस लोकमें अपने किये हुए कर्म्मोंके द्वारा स्वर्ग लोकमें न जासके। दूसरे इन्द्रके समान वसुने सौ यज्ञ पूरा करके भी एक ही बार मिथ्या वचन कहनेसे रसातलके नीचे गमन किया है। विरोचनका पुत्र राजा बलि देवताओंके धर्म्म पाशमें बद्ध होकर विष्णुके पुरुषार्थसे पातालमें निवास करता है। और तेजस्वी पुरुषोंका पाप भी दोषका कारण नहीं होता। जनमेजय देवराजके द्विज-स्त्री-हननकी आनके प्रस्थान

करनेके समय ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका बध करते हुए क्या दैवके द्वारा निवारित नहीं हुए थे। ब्रह्मर्षि वैशम्पायन अज्ञान वशसे ब्रह्महत्या करके भी बालक बध निबन्धनसे क्या दैवके द्वारा निवारित नहीं हुए थे। और पुण्य भी किसी किसी पुरुषके परित्राणका हेतु नहीं होता, पहिले समयमें राजऋषि नृग महायज्ञमें ब्राह्मणोंको गोदान करके भी गिरगिट योनिको प्राप्त हुए थे। द्युम्नमार राजऋषि यज्ञ करते ही करते जराग्रस्त हुए, वह देवताओंके दिये हुए वरको परित्याग करके गिरिव्रजमें निद्रित हुए थे, यज्ञका फल नहीं पाया। महाबली पराक्रमी धृतराष्ट्र पुत्र दुर्य्योधन आदिने पाण्डवोंका राज्य हर लिया था, परन्तु पाण्डवोंने अपने भुजबलसे उस हृत राज्यको फिर ले लिया; उसमें दैव कुछ भी कारण नहीं है। तप नियमसे युक्त संशितव्रती मुनि लोग क्या दैवबलसे ही शाप दिया करते है? क्या कर्म्म वशसे वे लोग अभिशाप नहीं देते? लोकमें अत्यन्त दुर्लभ सहस्त वस्तु पापी पुरुषोंको प्राप्त होके फिर उसे परित्याग किया करती हैं, लोभ मोहसे युक्त मनुष्योंका दैव कभी परित्राण नहीं कर सकता जैसे बहुत थोड़ी अग्नि वायुके द्वारा बढ़के महान् होती है, वैसे ही कर्म्म संयुक्त दैव उत्तम रीतिसे वर्द्धित हुआ करता है। जैसे तेलके नष्ट होनेसे दीपकका नाश होता है, वैसे ही कर्म्म नष्ट होनेसे भाग्य भी नष्ट होजाता है। इस लोकमें कर्म्महीन मनुष्य बहुतसा धन, उपभोग विषय और स्त्रियोंको पाके भी उपभोग करनेमें समर्थ नहीं होते; और सदा उद्योगी मनुष्य भाग्यके सहारे बच्यमाण पृथ्वीमें पड़ी हुई निधि भी पाते हैं। श्रद्धाप्रिय देवता लोग व्ययशाली साधु पुरुषोंके सदाचारके निमित्त संशय करते हैं, अर्थात् अपना भाग ग्रहण करनेके लिये उसे ही उपजीव्य किया करते हैं। मनुष्य लोकसे देवलोकको उत्तम देखकर साधु लोग श्रेष्ठ फल पानेके लिये सर्व्वस्व व्यय करके भी यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होते हैं; और मनुष्योंका गृह अनेक प्रकारकी समृद्धियोंसे परिपूरित होनेपर भी यदि उसमें यज्ञ आदि कर्म्म न हो, तो देवता लोग उस स्थानको श्मशानके समान देखते हैं। जीव लोकमें कर्म्महीन मनुष्यका तृप्ति लाभ नहीं होती और केवल दैवकुमार्गी मनुष्योंको निवारित करके नहीं रख सकता; इसलिये दैवकी कुछ भी प्रभुता नहीं है। परन्तु जैसे शिष्य गुरुका अनुसरण करता है, वैसे ही दैवकर्म्म पुरुषार्थ जिन जिन विषयोंमें उत्तम रीतिसे अनुष्ठित होता है, उन्हीं विषयोंमें भाग्यकी उत्पत्ति हुआ करती है। जब यत्नके सहारे पुरुषको कार्य्य सिद्धि होती है, तब लोग कहते हैं, कि "दैवकी अनुकूलतासे यह कार्य्य सिद्ध हुआ है।" हे मुनिसत्तम! मैंने यथार्थ रूपसे योगयुक्त दृष्टिके द्वारा अनुभव करके तुम्हारे समीप यह सब पुरुषार्थका फल वर्णन किया है। भाग्यके उदय होने तथा पूरी रीतिसे कर्म्म आरम्भ करने अर्थात् शास्त्रविहित कर्म्मसे लोकमें स्वर्गपथ प्राप्त हुआ करता है।

६ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ पितामह! मैं आपसे प्रश्न करता हूं, आप शुभ कर्म्मोंका फल मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भरतकुल धुरन्धर युधिष्ठिर! बहुत अच्छा, तुमने मुझसे जो पूछा है, मैं तुम्हारे समीप वही विषय कहता हूं। मरनेके अनन्तर दूसरा शरीर मिलनेपर जिस कर्म्मसे जो चिरंप्सित फल प्राप्त होता है, ऋषियोंके उस रहस्य विषयको सुनो। जो पुरुष जिस जिस शरीरसे जो जो कर्म्म करता है, वह उस ही शरीरसे उन कर्म्मोंका फल भोग किया करता

है अर्थात् मनके द्वारा किये हुए कर्म्मोंके फल स्वप्नकालमें मनके ही सहारे भोगे जाते हैं और शरीरके द्वारा जो कर्म्म किये जाते है, वे जाग्रत अवस्थामें शरीरसे ही भोगे जाते हैं। मनुष्य, बालक, युवा अथवा आपद वा निरापद अवस्थामें जो शुभाशुभ कर्म्म करता है, जन्म जन्म उस ही अवस्थामें उन कर्म्मोंका फल भोग किया करता है। इस जन्ममें पञ्च इन्द्रियोंके द्वारा नित्यके किये हुए कर्म्म कभी निष्फल नहीं होते, वे पांचों इन्द्रियें और छठवां आत्मा सदा उस कर्म्म करनेवालेके साक्षी हुआ करते हैं। अभ्यागत पुरुषके विषयमें कोमल दृष्टि करे, सत्य और प्रिय बचन कहे, उसका अनुगमन करे और उसकी उपासना करनी चाहिये, यही पञ्च दक्षिणायुक्त यज्ञ है। जो लोग अनचीन्हे तथा मार्गके थके हुए पथिकको उत्तम अन्नदान करते हैं, उन्हें अपरिमित पुण्यफल मिलता है। बाणप्रस्थ ब्रताचारी कुशापर शयन करनेवाले मनुष्योंको गृह तथा शय्या आदि प्राप्त होती हैं और चीरवल्कलधारी योगयुक्त तपस्वियोंको वस्त्र, आभूषण, वाहन, यान आदि फलस्वरूपसे प्राप्त हुआ करते हैं, अग्निके समीप शयन करनेवाले लोगोंको राजाका पौरुष प्राप्त होता है, रसोंको प्रतिसंहार करनेसे सौभाग्य हुआ करता है। मांसको प्रतिसंहार करनेसे पशु और पुत्र प्राप्त होते हैं, जो अवाक्शिरा होकर लटकते रहते हैं और जो लोग जलमें निवास करते हैं, तथा जो पुरुष सदा अकेले ही शयन करते अर्थात ब्रह्मचर्य्य व्रत अवलम्बन किया करते हैं, वे लोग अभिलषित गति पाते हैं। जो लोग अतिथिपूजाके लिये पाद्य, अर्घ, आसन, दीपक, अन्न, अवलम्ब-स्थान दान करते हैं, वे पञ्चदक्षिणा यज्ञके फलभागी होते हैं, जो लोग रणभूमिमें वीरासन और वीरशय्यापर शयन करते हैं, उनके सर्व्वकामप्रद लोक अक्षय होते हैं। हे महाराज! दान करनेसे धन लाभ होता है; मौन रहनेसे अविच्छिन्न आज्ञा प्राप्त हुआ करती है, तपस्यासे उपभोग और ब्रह्मचर्य्यके द्वारा दीर्घजीवन लाभ होता है, अहिंसासे ऐश्वर्य्य और आरोग्य भोग प्राप्त होता है; फलमूल भोजन करनेवालोंको राज्य और पत्ता खानेवालोंको स्वर्ग मिलता है। हे महाराज! योगयुक्त होके बैठनेवालोंके लिये सर्व्वत्र सुख वर्णित हुआ करता है। जो लोग केवल शाक भोजन करके नियम अवलम्बन करते हैं, वे लोग गोसमूहसे पूजित होते हैं। तृणभोजी मनुष्य स्वर्गगामी हुआ करते है। स्त्री सहवास परित्याग करके जो लोग नियमपूर्व्वक तीन बार स्नान करते तथा वायु पीके रहते हैं, वे सत्य संकल्पत्व लाभ करते हैं सत्यके द्वारा स्वर्ग मिलता है, और यज्ञके सहारे उत्तम कुलमें जन्म हुआ करता है। जो संस्कारयुक्त ब्राह्मण जलशायी होते है उनके अविच्छिन्न अग्निहोत्र सम्पन्न हुआ करते हैं। जो लोग गायत्री आदि मन्त्रोंको सिद्ध करते हैं, उन्हें राज्य मिलता है। अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे स्वर्गलोकमें वास होता है। हे राजन्! बारह वर्षके यज्ञमें उपवास व्रतके लिये ब्राह्मणको दूध आदि पीना व्रत है, और क्षत्रीको यवागूका आहार ही व्रत है, वैश्यको आमिक्षा आहार ही व्रत और अभिषेक अर्थात् बारह वर्षकाल तीर्थ भ्रमण व्रत करनेसे वीर स्थान स्वर्गसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। मनुष्य सब वेदोंको पढ़नेसे सदाके लिये दुःखोंसे छूट जाता है; मानसिक धर्म्माचरण करनेसे स्वर्ग लोक मिलता है। नीचबुद्धि पुरुषोंसे जो दुस्त्यज्य है, पुरुषके वृद्ध होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होता तथा जो प्राणान्तिक रोग स्वरूप है, उस तृष्णाको जो लोग त्यागते हैं, वे सुखी हुआ करते हैं। जैसे सहस्र गौओंके बीच बछड़ा अपनी माताको खोज लेता है, वैसे ही पहलेके किये हुए कर्म्म

कर्त्ताका अनुगमन किया करते हैं। जैसे अप्रे- रित फल और फूल अपने समयको अतिक्रम नहीं करते, पहलेके किये हुए कर्म्म भी वैसे ही हैं। बूढ़े पुरुषोंके केश झड़ जाते, दांत गिर जाते, दोनों नेत्र और दोनों कान जीर्ण होजाते हैं, परन्तु एकमात्र तृष्णा कभी जीर्ण नहीं होती। जिन कर्म्मोंसे पिताको प्रसन्न किया जाता है, उसहीके द्वारा प्रजापति प्रसन्न होते हैं, और जिसके द्वारा माताको प्रसन्न किया जाता है, उसहीके सहारे पृथ्वी पूजित होती है। जिन कर्म्मोंसे गुरुको प्रीति युक्त किया जाता है, उससे ब्रह्म पूजित होता है; पिता, माता और गुरु, ये तीनों ही जिससे आदरयुक्त होते हैं, उसके सब धर्म्म ही आदृत होते हैं, और ये तीनों जिससे अनादृत होते हैं, उसकी समस्त क्रिया ही निष्फल होती हैं।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, कुरुप्रवीर पुरुष भीष्मके ऐसे वचनको सुनके विस्मित हुए और उस समय वे लोग प्रसन्नचित्त तथा प्रीतियुक्त हुए थे। जैसे जिगीषा आदिके निमित्त मन्त्रका उच्चारण निष्फल होता है, जैसे बिना दक्षिणाके सोमयाग निष्फल होजाता है, जैसे बिना मन्त्रके होमसे कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता अर्थात् इन तीनोंसे जो पाप हुआ करता है, मिथ्या बोलनेवालेका वह सब पाप प्राप्त होता है। हे महाराज! शुभाशुभ फलको प्राप्तिके निमित्त यह मैंने ऋषियोंके कहे हुए समस्त विषय वर्णन किया अब कौनसा विषय सुननेकी इच्छा करते हो?

७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! पूज्य कौन है? किसे नमस्कार करना चाहिये; आप किन लोगोंको नमस्कार करते हैं। यह सब तथा आप जिन लोगोंकी स्पृहा करते हैं, वह सब वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करिये; अत्यन्त आपदायुक्त होनेपर भी आपका मन जिसमें अनुरक्त रहता है, मनुष्य लोक तथा परलोकमें जो कुछ हितकर हो, उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, जिन लोगोंका, आत्मप्रत्यय ही स्वर्ग स्वाध्यायसाधन ही तपस्या और ब्रह्म ही परम धन है, मैं उन ब्राह्मणोंकी ही सदा स्पृहा किया करता हूं; जिनके बालक और बूढ़े पितर पितामहके भारको उठाया करते हैं और अवसन्न नहीं होते, मैं उन्हीं लोगोंको स्पृहा किया करता हूं। हे तात युधिष्ठिर! विद्याविनयसे सम्पन्न, दान्त, कोमल वचन कहनेवाले, शास्त्र-ज्ञान और सच्चरित्रसे युक्त ब्रह्मवित् साधु पुरुषोंको सभाके बीच हंसके जल परित्याग करके दूध पीनेकी भांति आत्मानात्म विचार करके वचन बोलते रहनेपर उनके मङ्गलमय मनोहर बादलके दिव्य शब्दसमान पूरी रीतिसे कहे हुए सब वचन सुनाई देते हैं, सनायुक्त राजाके समीप कहे हुए वे सब वचन इस लोक और परलोकमें सुखदायक हुआ करते हैं। विज्ञानगुणसे युक्त सभाके बीच सम्मानभाजन जो सब मनुष्य सदा साधुओंके कहे हुए वचनोंको सुनते हैं, मैं उन लोगोंकी भी बड़ाई किया करता हूं। हे युधिष्ठिर! जो लोग श्रद्धापूर्व्वक उन ब्राह्मणोंको तृप्त करनेके निमित्त उत्तम, पवित्र और सुगन्धयुक्त अन्न दान करते हैं, मैं उन लोगोंकी स्पृहा किया करता हूं। रणभूमिमें संग्राम करनेमें अनायास ही सामर्थ होती है, परन्तु असूयारहित भावसे दान करना सहज नहीं है। हे युधिष्ठिर! इस लोकमें सैकड़ों शूरवीर पुरुष हैं, जिनकी गिनती करनेके समय दानवीर ही सबसे श्रेष्ठ होता है, हे प्रियदर्शन! तप और विद्यामें रत धर्मात्माकी गति सत्कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंका तो कहना ही क्या है, मैं जन्मान्तरमें कुत्सित ब्राह्मणकुलमें जन्म पानेसे

भी धन्य हूंगा, हे भरतश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र! इस लोकमें तुमसे बढ़के मेरे दूसरा कोई भी प्रिय नहीं है, परन्तु ब्राह्मण लोग तुमसे भी मेरे अधिक प्रिय हैं। हे कुरुसत्तम! जब ब्राह्मण लोग तुमसे भी मेरे अधिक प्रिय हैं तो इस ही सत्यके प्रभावसे मैं उन लोकोंमें गमन करूंगा, जहांपर मेरे पिता शान्तनु विराजमान हैं। ब्राह्मणोंसे बढ़के पिता, पितामह और दूसरे सुहृद लोग भी मेरे अधिक प्रिय नहीं हैं। इस लोकमें ब्राह्मणोंके निकट मुझे किसी फल पानेकी आशा नहीं है, पूज्य समझके ही देवतोंकी भांति मैं उनकी पूजा किया करता हूं; साधुकार्य्यमें मैं तनिक तथा अधिक परिमाणसे फलकी आशा नहीं करता।

हे शत्रुतापन! कर्म्म, मन और वचनसे मैंने ब्राह्मणोंकी जो कुछ आराधना की है, इस समय शरशय्यामें पड़े रहनेपर भी मैं उस ही ब्राह्मण पूजाके प्रभावसे दुःखित नहीं हुआ। प्राचीन लोगोंने मुझे ब्राह्मण जातिके पराभव करनेमें असमर्थ कहा है, मैं उसही वचनसे सन्तुष्ट हुआ हूं, यह समस्त पवित्रतासे भी परम पवित्रता कहके वर्णित हुआ है। हे तात! मैं सब लोकोंको ही पवित्र और निर्म्मल देखता हूं, मैं ब्राह्मणोंका दास हूं, इसलिये शीघ्र ही सदाके लिये उन पवित्र लोकोंमें गमन करूंगा। हे युधिष्ठिर! जैसे इस लोकमें पति ही स्त्रियोंके लिये देवता है, वैसे ही ब्राह्मण ही चत्रियोंके देवता और ब्राह्मण ही चत्रियोंकी गति है; इसके अतिरिक्त चत्रियोंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है। सौ वर्षकी अवस्था वाला चत्रिय और दश वर्षकी अवस्थावाला उत्तम ब्राह्मण पिता पुत्र रूपसे मालूम होते हैं, इन दोनोंके बीच ब्राह्मण ही गुरु हैं। जैसे स्त्री पतिके अभावमें देवरको पति तुल्य मानती है, वैसेंही पृथ्वी ब्राह्मणके अभावमें चत्रियको अपना स्वामी समझती है। हे कुरुसत्तम! इसलिये चत्रियोंको चाहिये कि पुत्रकी भांति ब्राह्मणोंकी रचा करें, ब्राह्मण गुरु समान पूजनीय और अग्निकी भांति उपचारके योग्य हैं, इसलिये सरल साधु सत्यशील सब प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाले क्रुद्ध विषैले सर्प समान ब्राह्मणोंकी सदा सेवा करनी योग्य है।

हे युधिष्ठिर! तेज और तपस्यासे सदा भय करना उचित है, तपोबल और तेजोबल दोनों ही परित्याज्य हैं। चत्रियोंके तेज और ब्राह्मणोंकी तपस्या इन दोनोंके फल अत्यन्त तीव्र हैं। हे महाराज! परन्तु तेजस्वी चत्रियकी अपेक्षा तपस्वी ब्राह्मण क्रुद्ध होने पर शीघ्रही मनुष्योंका नाश करते हैं। अक्रोधी ब्राह्मणके निकट प्रयोग किया हुआ तेज और तप, ये दोनों ही अधिक होने पर भी खण्डित होते हैं, और दोनों ही यदि शेष करें, तो चमा रागके द्वारा खण्डित तेजका जो कुछ अंश शेष रहेगा, वह निःशेष न करनेपर भी अवश्य ही निःशेष होगा। जैसे गोपाल सदा हाथमें दण्ड लेकर गौवोंको पालन करता है, वैसेही चत्रिय राजा ब्राह्मण और वेदोंकी सब प्रकारसे रचा करे। जैसे पिता पुत्रोंको पालन करता है, वैसेही धर्म्मनिष्ठ ब्राह्मणोंकी रचा करे और उन लोगोंके गृह तथा जीविका निर्व्वाहके योग्य कोई वस्तु है वा नहीं, उसे जान लिया करे, यदि कोई वस्तु न हो, तो उसे दान करे।

८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महातेजस्वी धार्म्मिकश्रेष्ठ पितामह! जो सब दुराचारी मनुष्य ब्राह्मणोंको दान देनेका सङ्कल्प करके फिर मोहके वशमें होकर नहीं देते हैं, भविष्यमें उनकी कैसी दशा होती है, आप यथार्थ रीतिसे यह धर्म्म मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, जो पुरुष थोड़ी अथवा अधिक वस्तु दान करनेका सङ्कल्प करके फिर उसे

दान नहीं करता, उसकी सब आशा इस प्रकार नष्ट होजाती है, जैसे नपुंसक पुरुषके पुत्रकी लालसा नष्ट होती है। हे भारत! जीव जिस समय जन्मता और जिस समय नष्ट होता है, उस जन्म और मृत्युके मध्यकाल अर्थात् जीवनके समयमें उसका जो कुछ सुकृत होता है, तथा वह जो कुछ होम, दान और तपस्या करता है,—उस पुरुषके वे सभी कर्म्म निष्फल हुआ करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! धर्म्मशास्त्र जाननेवाले पुरुष परम युक्तिवती बुद्धिसे विचार करके उक्त वचन कहा करते हैं और वे लोग यह भी कहते हैं, कि एक हजार श्याम कर्णी घोड़े दान करनेसे इसका प्रायश्चित्त होता है, इस अशक्य कार्य्यका अनुष्ठान असाध्य है, इसीसे पाप नष्ट नहीं होता। हे भरतनन्दन! प्राचीन लोग इस विषयमें सियार और बन्दरके सम्वाद युक्त यह पुराना इतिहास कहते हैं,—हे शत्रुतापन! पहले मनुष्य जन्ममें वे दो भाई थे। इस समय दूसरे जन्ममें एक सियार योनि और दूसरा बन्दर योनिमें उत्पन्न हुआ था। अनन्तर बन्दरने सियारको श्मशानके बीच मरे मनुष्योंका मांस भक्षण करते हुए देखकर पूर्व्वजाति स्मरण करके कहा, कि तुमने पहले जन्ममें ऐसा कौनसा दारुण पापकर्म्म किया था, जिसके फलसे इस श्मशानमें निन्दनीय मृतक शरीरको भक्षण करते हो। सियार उस समय ऐसा वचन सुनके बन्दरसे बोला, मैंने ब्राह्मणोंको देनेको कहके उन्हें दान नहीं किया था। हे शाखाविहारी! इस ही निमित्त मैं पापयोनिको प्राप्त हुआ हूं और उसही कारणसे भूखा होकर इस प्रकार निन्दित भक्ष्य भक्षण करता हूं।

भीष्म बोले, हे नरोत्तम! सियारने फिर बन्दरसे कहा, तुमने क्या पापकर्म्म किया था, जिसके फलसे बन्दर हुए हो।

बन्दर बोला, मैं सदा ब्राह्मणोंका फल खाया करता था, इस ही कारण बन्दर योनिमें उत्पन्न हुआ हूं, इसलिये विद्वान् पुरुषोंको उचित है, कि ब्राह्मणोंको वस्तुको हरण न करें। ब्राह्मणोंके सङ्ग विवाद करना योग्य नहीं है और उन्हें देनेको कहके अवश्य दान देना उचित है।

भीष्म बोले, हे महाराज! पहले जब मेरे गुरु यह ब्राह्मणकी कथा कह रहे थे, तब उनके मुखसे मैंने इस विषयको सुना था। हे नरनाथ! जब धर्म्मज्ञ व्यासदेव पवित्र और प्राचीन इतिहास कह रहे थे, तब उनके मुखसे भी मैंने यह कथा सुनी थी। हे पाण्डव! फिर ब्राह्मणोंके विषयमें श्रीकृष्णके मुखसे भी मैंने यह कथा सुनी है; ब्राह्मणोंका धन हरना उचित नहीं है, सदा उन लोगोंके विषयमें क्षमा करनी चाहिये। चाहे ब्राह्मण बालक हो, दरिद्र हो अथवा कृपण ही होवे, उसकी कदापि अवमानना न करनी चाहिये; ब्राह्मण लोग मुझसे सदा ऐसा ही उपदेश दिया करते हैं, ब्राह्मणोंके समीप देनेका सङ्कल्प करके उन्हें दान देना ही उचित है, ब्राह्मणोंकी आशाको निष्फल करना योग्य नहीं है। हे पृथ्वीपाल! ब्राह्मण लोग पहलेकी की हुई आशासे जलती हुई अग्निकी भांति समृद्ध हुआ करते हैं। हे महाराज! वे पहलेकी आशासे संयुक्त होके क्रोधपूर्व्वक जिसकी ओर देखते हैं, उसे इस प्रकार भस्म किया करते हैं, जैसे अग्नि तृण काठ प्रभृतिको जला देती है और जब वेही प्रसन्न होकर प्रशान्त वचनसे जिसे अभिनन्दित करते हैं, उसका राज्यचिकित्सकके समान होता है, उसके निकट कोई आपदा नहीं रहती; पुत्र, पौत्र, बन्धु, बान्धव, मन्त्री, पर और प्रजा, सबको ही वह पुरुष शक्तिके अनुसार उत्तम रीतिसे पालन करता है; पृथ्वीपर सहस्र किरणवाले सूर्य्यके तेज समान ब्राह्मणोंका यह परम तेज दीख पड़ता है। हे भरतसत्तम युधिष्ठिर! यदि कोई उत्तम जाति प्राप्त

होनेकी इच्छा करे, तो उसे योग्य है, कि ब्राह्मणोंके निकट देनेका सङ्कल्प करके दान करे। ब्राह्मणोंको दान देनेसे अत्यन्त उत्तम अक्षय स्वर्ग प्राप्त करनेमें समर्थ होता है, इसलिये दानके समान महत् कार्य्य और कुछ भी नहीं है। इस लोकमें दान करनेसे देवता और पितर लोग जीवन धारण किया करते हैं, इसलिये ज्ञानवान् मनुष्य ब्राह्मणोंको देने योग्य वस्तु दान करे; क्योंकि ब्राह्मण ही दानका पात्र है, हे भरतश्रेष्ठ! ब्राह्मण ही महत् तीर्थस्वरूपसे वर्णित होते हैं; इसलिये किसी समयमें ही ब्राह्मण अपूजित होकर गमन न करें।

९ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे राजर्षि! उपकारकी इच्छा करके जो लोग अपकार करते हैं, ऐसी मित्रता और उपकारकी इच्छा न करके जो पुरुष अपकर्त्ता बनते हैं, वैसी मित्रताके सम्बन्धके वशमें होकर यदि कोई पुरुष नीचजातिको उपदेश करे, तो उसे कुछ दोष होता है, वा नहीं? हे पितामह! जिससे मनुष्य लोग मोहित होते हैं, वह धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है; इसलिये ऊपर कहे हुए विषयको यथार्थ रूपसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे महाराज! पहले ऋषियोंने इस विषयका वर्णन किया था, मैंने जिस प्रकार सुना है, उसको तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। किसी नीच जातिको उपदेश करना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा शास्त्रमें वर्णित है, कि वैसे मनुष्यको उपदेश करनेसे उपदेश करनेवालेको महान् दोष होता है। हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! पहली समयमें दुःखस्थ नीचके विषयमें उक्त वचनका यह प्रमाण है, मैं कहता हूं, तुम सुनो। हिमालयके पवित्र स्थानमें ब्रह्माश्रमके निकट एक पवित्र आश्रम है, वह अनेक प्रकारके वृक्ष गुल्म और लतासे परिपूरित, हरिण और पक्षियोंसे सेवित, सिद्ध-चारणोंसे युक्त और फूले हुए वनसे शोभित रहनेसे अत्यन्त रमणीय था; वह स्थान बहुतेरे ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ पुरुषोंसे परिपूर्ण था, सूर्य्य तथा अग्निके समान तेजस्वी ब्राह्मण लोग वहां सदा निवास करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! वह आश्रम नियम व्रतसंयुक्त, दीक्षित, मिताहारी शुद्धचित्तवाले तपस्वियोंसे परिपूरित था। हे भरतप्रवर! वह तपस्या और अध्ययनके शब्दसे निनादित तथा बहुतेरे वालखिल्य वा सन्न्यासियोंसे निषेवित था। पहली समयमें प्राणियोंसे अभय निबन्धनसे दयायुक्त होकर कोई शूद्र सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करके भली भांति उत्साहपूर्व्वक उस आश्रममें उपस्थित हुआ। शूद्र सन्न्यासीको आश्रममें आया हुआ देखके तपस्वियोंने उसका बहुत आदर किया। हे भारत! वह उन मुनियोंको देवताओंके समान महातेजस्वी और अनेक प्रकारके नियमोंसे युक्त देखके अत्यन्त हर्षित हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर उसके मनमें यह विचार हुआ कि "मैं तपस्या करूं" हे भारत! तब वह कुलपतिके दोनों चरणोंको पकड़के बोला, हे द्विजवर! मैं आपकी कृपासे धर्म्म जाननेकी अभिलाष करता हूं हे भगवान्! इसलिये आप मुझसे धर्म्म कहने और परित्याग करानेके उपयुक्त हैं। हे उत्तम! मैं नीचवर्ण शूद्र जाति हूं, इससे आपकी सेवा करनेकी इच्छा करता हूं, आप मुझ दीनके ऊपर प्रसन्न होइये।

कुलपति बोले, सन्न्यासी चिन्ह धारण करके शूद्र इस स्थानमें निवास करनेमें समर्थ नहीं होता, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो इस आश्रममें वास करो और सेवा करनेमें तत्पर रहो, सेवाके सहारे निःसन्देह उत्तम लोकोंको पाओगे।

भीष्म बोले, हे महाराज! अब मुनिने उस

शूद्रसे ऐसा कहा, तब उसने सोचा, कि "मैं इस स्थानमें क्या करूंगा? मुझे धर्म्मनिष्ठामें श्रद्धा है, मैं अपना प्रियकार्य्य करूंगा, इस ही प्रकार मालूम होवे" अनन्तर उसने उस आश्रमसे दूर जाके एक कुटी बनाई और वहां पूजाके निमित्त वेदी, शयन करनेका स्थान तथा देवताओंका स्थान बनाया। हे भरतश्रेष्ठ! उसने उस ही कुटीमें प्रवेश करके नियमनिष्ट होकर मौनव्रत अवलम्बन किया। वह शूद्र सन्न्यासी त्रिसन्ध्या स्नान करके देवस्थानमें नियम पूर्व्वक बलि और होम करके उनकी पूजा करता था, संकल्पित नियमनिष्ठ और जितेन्द्रिय होके फल भोजन करता तथा औषधि और फलसे सदा निकटवर्त्ती अतिथियोंकी यथावत् पूजा करता था। इस ही प्रकार उसका बहुत समय व्यतीत हुआ।

अनन्तर कोई मुनि उस शूद्र सन्न्यासीको देखनेके लिये उसके आश्रममें उपस्थित हुए। उसने उस ऋषिसे स्वागत प्रश्न करके भली भांति विधिपूर्व्वक पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट किया। परम तेजस्वी संशितव्रती धर्म्मात्मा ऋषि उसके सङ्ग अनुकूल वचन कहके जिस निमित्त आये थे, वह उसके समीप वर्णन किया, हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ! इस ही प्रकार वह ऋषि उस शूद्र सन्न्यासीको देखनेके लिये बार बार उसके आश्रम पर आते थे। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर शूद्र उस तपस्वीसे बोला, मैं पितृकार्य्य करूंगा, आप उस विषयमें मेरे ऊपर कृपा करिये। हे भारत! ब्राह्मणने उसका वचन स्वीकार किया, तब शूद्र पवित्र होकर ऋषिके निमित्त पाद्य ले आया। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर दाभ और बनकी औषधि, पवित्र आसन तथा व्रती पुरुषोंके लिये आसन लाया। अनन्तर दक्षिण दिशाको आवरण करके अन्यायपूर्व्वक व्रतीका आसन पश्चिमाग्र रूपसे रखा गया था, उसे देखकर ऋषिने उस शूद्रसे कहा, "इस आसनको पूर्व्वशीर्ष करो और तुम पवित्र तथा उदङ्मुख होकर बैठो।" जब ऋषिने ऐसा कहा तब शूद्रने वैसाही किया। धर्म्ममार्गमें गमन करनेवाला मेधावी शूद्र दाभ, अर्घ हव्यकव्य आदिसे जिस प्रकार पितर कार्य्य करना योग्य था, वह सब उस तपस्वी ऋषिके वचनके अनुसार पूरा किया, जब उसका पितृकार्य्य पूरा हुआ, तब ब्राह्मणने उसके समीपसे बिदा होकर प्रस्थान किया।

अनन्तर वह शूद्र तपस्वी बहुत समयतक तपस्याचरण करके बनके बीच पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। हे तात! महातेजस्वी शूद्र उस पूर्व्वजन्मके पुण्य सञ्चयसे महाराजवंशमें उत्पन्न हुआ और वह विप्रर्षि उस ही समयमें मरके पुरोहित कुलमें उत्पन्न हुए। हे भरतश्रेष्ठ! इस ही प्रकार वह शूद्र और मुनि उस स्थानमें उत्पन्न होके दोनों ही धीरे धीरे बर्द्धित होकर बिद्या-विषयमें दक्ष होगये। ऋषि अथर्व्व वेद तथा ऋक्, यजु और साम, इन तीनो वेदोंमें सुशिक्षित हुए, तथा सूत्रोक्त यज्ञ प्रयोग और ज्योतिषशास्त्रके भी पारदर्शी हुए, सांख्य शास्त्रमें भी उनकी परम प्रीति विशेषरूपसे वृद्धिको प्राप्त हुई। इधर पिताके परलोकमें गमन करनेपर राजपुत्र भी पवित्र चरित्रवाली प्रजासमूहसे अभिषिक्त होकर पृथ्वीपति हुआ। उसने अभिषिक्त होकर उस ऋषिको अपना पुरोहित बनाया।

हे भरतश्रेष्ठ! राजा उसे पुरोहित बनाके परम सुखसे बास करने लगा, वह धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करते हुए राज्य शासन करता था, वह राजा सदा धर्म्मकर्म्ममें पुण्याहवाचनके समय पुरोहितको देखकर उपहास करके हंसता था। पुरोहित बार बार उस राजाको उपहास करते हुए देखकर क्रुद्ध हुआ। अनन्तर पुरोहितने एक समय एकान्त स्थानमें राजाके सङ्ग मिलके अनुकूल बचनसे उसे प्रसन्न किया। हे भरतर्षभ! फिर उस पुरोहितने राजासे कहा, हे महातेजस्वी! मेरी यह इच्छा

है, कि आप मुझे एक वरदान करिये। राजा बोला, हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं आपको एक सौ वर प्रदान करूं, अथवा एक ही वर दूं ? प्रीति और बहुमान वससे आपको देनेके लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।

पुरोहित बोला, हे महाराज ! यदि आप प्रसन्न हुए हों, तो मैं एक वर मांगता हूं, आप प्रतिज्ञा करके सत्य वचन कहना, मिथ्या न बोलना।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! राजाने उससे कहा 'ऐसा ही होगा' परन्तु यदि मुझे मालूम होगा, तो मैं कहूंगा और यदि न मालूम होगा, तो न कह सकूंगा।

पुरोहित बोला, प्रतिदिन धर्म्मकार्य्यके उपलक्षमें पुण्याहवचनके समय और शान्ति तथा होमके समयमें आप मेरी ओर देखके किस निमित्त हंसते हैं। आपके हंसनेसे मेरा मन अत्यन्त लज्जित होता है। हे महाराज ! मैं इसका कारण जाननेके लिये अपना अङ्ग स्पर्श कराके आपसे शपथ कराता हूं, कि आप मिथ्या न कहें। आपकी हंसी अकारण न होती होगी, इसमें अवश्य ही कुछ स्पष्ट कारण है; इसलिये इस विषयमें मुझे अत्यन्त ही कौतूहल हुआ है; आप यथार्थ रीतिसे इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये।

राजा बोला, हे विप्र ! आपने जब इस प्रकार कहा है, तब मेरे पक्षमें यह विषय न कहने योग्य होनेपर भी मैं अवश्य कहूंगा, आप चित्त एकाग्र करके सुनिये। हे द्विजश्रेष्ठ ! पूर्व्वजन्ममें जो कुछ हुआ था, उसे कहता हूं, सुनो। हे द्विजसत्तम ! पूर्व्वजन्ममें मैं अत्यन्त तपस्यायुक्त शूद्र था, उस समयमें आप भी उग्र तपस्यावाले ऋषि थे। हे पापरहित ब्रह्मन् ! उस समय आपने प्रसन्न होकर पितृकार्य्यके निमित्त मुझे उपदेश दिया था। हे मुनिसत्तम ! पहले मेरे उस पितृकार्य्यके विषयमें ब्रतीके आसन, दाभ और हव्य-कव्य आदि सब वस्तुओंका आपने जिस प्रकार मुझे उपदेश दिया था, मैंने उसहीके अनुसार सब कार्य्य किया था; इस ही कर्म्मदोषसे आप मेरे पुरोहित कुलमें उत्पन्न हुए हैं और मैं राजा हुआ हूं। हे विप्रवर ! इससे कालकी उलटी गति देखिये, मैं शूद्र होके भी जातिस्मर हुआ हूं और आप मुनि होनेपर भी पुरोहित हुए हैं; आपने जो मुझे उपदेश दिया था, उसका यही फल प्राप्त हुआ है। हे द्विजश्रेष्ठ ! इस ही कारणसे मैं आपको देखकर हंसता हूं, आपका उपहास करनेके लिये मैं नहीं हंसता; क्यों कि आप मेरे गुरु हैं। इस उलटी गतिको देखकर मुझे जो दीनता हुई है, उसहीसे मेरा अन्तःकरण दुःखित होता है, मैं जातिको स्मरण करता हूं, इस ही लिये आपको देखकर हंसता हूं। इस ही प्रकार उपदेश करनेसे आपकी दारुण तपस्या नष्ट हुई है, इसलिये आप पुरोहितका कार्य्य परित्याग करके अगाड़ीके वास्ते प्रयत्न करिये। हे द्विज ! जिससे कि आप इससे भी बढ़के दूसरी कोई अधम योनि न पावें। हे सत्तम ! आप इस विपुल वित्तको ग्रहण करके पुण्यात्मा होइये।

भीष्म बोले, अनन्तर वह विप्र राजाके समीपसे बिदा मांगके ब्राह्मणोंको बहुतसा धन, भूमि और ग्राम दान किया। ब्राह्मणोंके कहे हुए कृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करके तीर्थोंमें गमन करके ब्राह्मणोंको गोदान तथा अनेक भांतिकी वस्तु दान देकर पवित्र चित्त होकर आत्मवान हुआ और उस ही आश्रममें जाकर बहुत् तपस्याचरण करने लगा। हे राजसत्तम ! अनन्तर उस ब्राह्मणने उन आश्रमवासी ऋषियोंमें सम्मत होकर परम सिद्धि पाई। हे नृपसत्तम ! इस ही प्रकार वह ऋषि परम कृच्छ्रको प्राप्त हुआ था, इसलिये ब्राह्मणोंको उचित है, कि किसी नीच वर्णके पुरुषको उपदेश न दें। हे महा-

राज ! ब्राह्मण सदा ही उपदेश देनेसे बिमुख रहें, उपदेश देनेसे उन्हें क्लेश मिलता है। हे नृपसत्तम ! ब्राह्मणको योग्य है, कि सदा बचनको संयम कर रखे, इस लोकमें हीनवर्णवाले पुरुषसे कुछ भी न कहे। हे महाराज ! ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनोंवर्ण द्विजाति हैं, इन्हें उपदेश करनेसे ब्राह्मण कदापि दूषित नहीं होता है; परन्तु किसीके निकट कुछ भी न कहना। साधुओंका मुख्य कर्त्तव्य कार्य्य है, क्यों कि धर्म्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है इसहीसे वह अकृतात्म पुरुषोंको नहीं मालूम होती, इसही कारणसे मुनि लोग आदरयुक्त होके भी मौनव्रत अवलम्बन करते हैं; यदि कुछ बचन कहनेसे दोषी होना पड़े, इस ही भयसे वे लोग कुछ भी नहीं कहते। धार्म्मिकगण, तथा सत्य और सरलतायुक्त मनुष्य भी न कहने योग्य बचन कहनेसे पापभागी होते हैं। इसलिये कदापि किसीके विषयमें उपदेश करना उचित नहीं है, ब्राह्मण लोग जिसे उपदेश करते हैं, उसके पापके फलभागी होते हैं, इसलिये धर्म्मकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको उचित है, कि बिचारके बचन कहे। बाणिज्य और धनके लाभसे जो उपदेश किया जाता है, वह उपदेश करनेवालेको अवश्य ही नष्ट करता है। पूछने पर विशेष निश्चय करके बोलना उचित है। जिससे धर्म्म प्राप्त हो, वैसा ही उपदेश करना चाहिये। यह मैंने तुम्हारे प्रश्नके अनुसार सब वृत्तान्त कहा और उपदेश भी किया, अधम पुरुषको उपदेश देनेसे अत्यन्त क्लेश प्राप्त होता है, इसलिये इस लोकमें वैसे पुरुषोंको उपदेश करना उचित नहीं है।

१० अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! कैसे पुरुष अथवा कैसी स्त्रीमें कमलालक्ष्मी सदा निवास करती है? आप मुझसे यही कहिये।

भीष्म बोले, इस विषयमें जैसी घटना हुई थी और मैंने जिस प्रकार सुना है, तथा श्रीकृष्णके निकट रुक्मिणीने लक्ष्मीसे जो प्रश्न किया था, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो प्रद्युम्नकी माता नारायणके अङ्गवासिनी रुक्मिणी कमलवर्णा प्रकाशमान लक्ष्मीको उत्तम प्रकार नेत्रसे देखकर कौतूहलवशसे प्रश्न किया। हे महर्षि कल्पे! त्रिलोकेश्वर कान्ते ! इस लोकमें तुम कैसे मनुष्यके निकट हाथी घोड़ेके रूपसे तथा धीरज सुन्दरताई वा पराक्रम आदि रूपसे निवास करती हो और कैसे लोगोंके समीप नहीं जाती? इस बिषयको मेरे समीप यथार्थ रीतिसे बर्णन करो। जब गरुड़ध्वजके सम्मुखमें रुक्मिणी देवीने लक्ष्मीसे ऐसा प्रश्न किया, तब वह चन्द्रमुखी प्रसन्न होकर उत्तम और मधुरवचन कहने लगी।

लक्ष्मी बोली, हे सुभगे ! मैं प्रतिभावन, निरालसी, कार्य्यदक्ष, क्रोधरहित, देवताओंको आराधनामें निष्टावान, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उद्योगी पराक्रमी पुरुषके निकट सदा निवास किया करती हूं, और जो पुरुष कार्य्य करनेमें समर्थ नहीं है, जो नास्तिक, बर्णसङ्कर करनेवाले, कृतघ्न, भिन्न चरित्री, निठुर बचन बोलनेवाले, चोर और गुरुजनोंकी असूया करनेवाले हैं;—उनके निकट कदापि निवास नहीं करती। और जो लोग अल्पपराक्रमी, अल्प बलवाले, अल्प बुद्धि तथा अल्प मानयुक्त हैं, जो किसी विशिष्ट पुरुषके निकट क्लेश पाते और क्रोध करते हैं, वैसे गुप्त-मनोरथी अर्थात् जो एक बिषयकी चिन्ता करते हुए दूसरे बिषयमें जा पड़ते हैं, वैसे मनुष्योंके समीप मैं कभी स्थित नहीं होती। इसके अतिरिक्त जो पुरुष अपनी किसी प्रकारकी उन्नतिकी इच्छा नहीं करते, जिनका अन्तरात्मा स्वभावहीसे उपहत हुआ है, उन अल्प सन्तोषवाले मनुष्योंके निकट मैं पूरीरीतिसे निवास नहीं करती। स्वधर्म्ममें निष्ठावान,

धर्म्मज्ञ, वृद्धोंकी सेवामें रत रहनेवाली, दान्त, कृतात्मा, क्षमाशील, सत्यस्वभाव, सरल, देवता ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाली स्त्रियोंमें मैं निवास करती हूं। जिसके गृहकी सामग्रियें इधर उधर बिखरी रहती हैं जो स्त्री बिना बिचारे कार्य्य करती है, सदा पतिके विषयमें प्रतिकूलवादिनी हुआ करती है, जो पराये गृहमें वास करनेमें अनुरक्त तथा लज्जाहीन होती है, मैं वैसी स्त्रीको परित्याग किया करती हूं। और पतिव्रता, कल्याणशीला, विभूषित, सत्यवादिनी, प्रियदर्शना, सौभाग्ययुक्त और गुणमयी स्त्रीके निकट मैं सदा निवास करती हूं। और दयारहित, अपवित्र, अवलेहिनी अर्थात् सदा शयन करनेवाली स्त्रीको मैं परित्याग किया करती हूं। सब प्रकारकी सवारियें, कन्यासमूह, विभूषण, यज्ञस्थान, वृष्टियुक्त मेघमण्डल, फूले हुए कमलदलों, शरदकालके नक्षत्रों, गजयूथ, गो-समूह आसन और प्रकाशमान उत्पल और कमलयुक्त तालावों, अधिक कहांतक कहूं, समस्त रमणीक वस्तुओंमें ही मैं निवास किया करती हूं। हंस और सारस आदिके शब्दसे निनादित वृक्षोंसे शोभित, तपस्वी सिद्ध और ब्राह्मणोंसे निषेवित, अधिक जलयुक्त, सिंह तथा हाथियोंसे परिपूरित नदियोंमें मैं सदा निवास करती हूं। मतवाले हाथियों, गऊ, वृषभ, राजसिंहासन, सत्पुरुषों और जिस स्थानमें मनुष्य अग्निमें होम करते हैं, अथवा गऊ ब्राह्मण वा देवताओंकी पूजा करते हैं, उस स्थानमें मैं सदा निवास करती हूं। सदा स्वाध्यायमें रत रहनेवाले ब्राह्मणों, सदा धर्म्ममें तत्पर रहनेवाले क्षत्रिय, कृषिकार्य्य में अनुरक्त वैश्यों और प्रतिदिन सेवाकार्य्य में रत शूद्रोंके निकट मैं निवास किया करती हूं। मैं नारायणके निकट एकाग्रचित्त और मूर्त्तिमती होकर आदरके सहित सदा निवास किया करती हूं, उन्हींमें उत्तम महान् धर्म्म ब्रह्मण्य और प्रियत्व सदा प्रतिष्ठित है। हे देवि! मैं नारायणके अतिरिक्त दूसरे स्थानमें मूर्त्तिमयी होकर निवास नहीं करती, इस समय यह नहीं कह सकती, कि मैं जिस पुरुषके निकट आदरके सहित निवास करती हूं वह धर्म्म, अर्थ और कामसे वर्द्धित होता है।

११ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! स्त्री-पुरुषोंके परस्पर संयोगमें वैषयिक सुख किसे अधिक होता है, इस संशयके विषयको आप यथावत् कहनेमें समर्थ हैं।

भीष्म बोले, पहले समयमें भङ्गास्वन राजाके सहित इन्द्रको जो शत्रुता हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हे पुरुषप्रवर! पहले समयमें भङ्गास्वन नामक अत्यन्त धार्म्मिक एक राजर्षि था। वह पुत्ररहित था, इसलिये पुत्रके निमित्त यज्ञ किया था। उस महाबलवान राजऋषिने इन्द्रके द्वेषी अग्निष्टुत यज्ञ करना आरम्भ किया अर्थात् इस यज्ञमें इन्द्रकी प्रधानता न रहनेसे उनका इस यज्ञसे द्वेष था। त्रिगुणित अग्नि होम यज्ञमें अग्निदेव ही केवल स्तुत होकर पुत्र प्रदान करते हैं, इस ही निमित्त इसका नाम वेदमें अग्निष्टुत कहके प्रसिद्ध है। मनुष्योंकी पुत्रकी कामनासे प्रायश्चित करनेके समय अग्निष्टुत ही इष्ट हुआ करता है। हे राजन्! महाभाग सुरेश्वर इन्द्र उस यज्ञको होता हुआ जानके सावधान चित्तसे उस राजर्षिका छिद्र अन्वेषण करनेमें प्रवृत्त हुए; परन्तु किसी प्रकार भी उस महात्माका कोई छिद्र न देख सके। कुछ समयके अनन्तर राजा मृगया खेलने गया, तब इन्द्रने वही उत्तम समय समझके उसे मोहित करना आरम्भ किया। राजा इन्द्रके द्वारा मोहित होकर अकेले ही घोड़ेके

सहारे भ्रमण करते हुए भूख प्याससे पीड़ित होकर दिशाको न जान सका। महाराजने परिश्रमसे प्यासा होकर इधर उधर भ्रमण करके निर्म्मल जलसे पूरित एक मनोहर तालाब देखा। उसने उस ही तालाबपर जाके पहिले घोड़ेको जल पिलाया और पानी पिलाके घोड़ेको एक वृक्षमें बांधकर जलमें स्वयं स्नान किया, स्नान करते ही स्त्री होगया। राजा अपनेको स्त्री रूपधारी देखके राजाकी इन्द्रियें और मन उस समय अत्यन्त व्याकुल हुआ। चिन्ताकरने लगा, "मैं किस प्रकार घोड़ेपर चढ़ूं, कैसे नगरमें जाऊं, अग्निष्टुत यज्ञके सहारे मेरे महाबलवान एक सौ औरस पुत्र उत्पन्न हुए हैं, मैं उनसे क्या कहूंगा और पुरवासी तथा जनपद वासियोंसे ही क्या कहूंगा?" उस समय वह इन्हीं सब विषयोंको बिचारने लगा। "धर्म्म तत्वार्थदर्शी ऋषि लोग कहते हैं, कि मृदुल, तनुत्व तथा बिह्वलत्व, ये तीन स्त्रियोंके गुण हैं और व्यायाम् कठोरताई और वीर्य्य ये तीन पुरुषोंके गुण हैं; इस समय मेरा सब पौरुष बिनष्ट हुआ, न जाने किस कारणसे स्त्रित्व उत्पन्न हुआ? स्त्रित्व निबन्धन अब फिर घोड़े-पर चढ़नेका मैं किस प्रकार उत्साह करूं। यह सब बिचारके राजा अत्यन्त यत्न पूर्व्वक घोड़ेपर चढ़के फिर स्त्रीरूपसे नगरमें आया। उसके पुत्र, स्त्रियें, पुरवासी तथा जनपद-वासि-योंने यह क्या हुआ? ऐसा ही सोचकर बिस्म-ययुक्त हुए।

अनन्तर उस स्त्रीरूपी वक्तृप्रवर राजऋषिने कहा, मैं सेनाके सहित मृगयाके लिये गया था, दैव बशसे मार्ग भूलकर एक घोर बनमें प्रबिष्ट हुआ, उस भयङ्कर बनके बीचमें प्याससे आर्त्त हुआ था, अनन्तर वहांपर पक्षियोंसे परिपूरित एक मनोहर तालाब दीख पड़ा; उसमें स्नान करते ही दैव बशसे मेरा ऐसा रूप होगया है। वह राजा पत्नी और मन्त्रियोंको अपना नाम गोत्र सुनाकर अन्तमें कुमार बालकोंसे बोला हे पुत्रगण! मैंने राजा होके स्त्रित्व लाभ किया है, इसलिये बनमें गमन करता हूं, अब तुम लोग परस्पर प्रीतिपूर्व्वक राज्यभोग करो। उसने अपने एक सौ पुत्रोंसे ऐसा कहके बनमें गमन किया; बनमें जाके वह एक तपस्वीके आश्रममें पहुंचके उसके समीप निवास करने लगा। उस आश्रममें तपस्वीके द्वारा उसके गर्भसे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। अनन्तर उसने उन पुत्रोंको सङ्ग लेके पहिलेके पुत्रोंके निकट आके कहा। तुम लोग मेरी पुरुष अवस्थाके पुत्र हो और मेरे स्त्रित्व प्राप्त होनेपर ये सौ पुत्र उत्पन्न हुए हैं। हे पुत्रगण! इसलिये तुम लोग इनके सङ्ग मिलके राज्य भोग करो।

अनन्तर वे सब भाई मिलके उस समय राज्य भोग करने लगे। देवराजने उन लोगोंको भ्रातृभावसे उत्तम प्रकार राज्यभोग करते हुए देखकर क्रुद्ध होके मनमें सोचा, कि मैंने तो इस राजऋषिका उपकार ही किया है, इसका अपकार तो कुछ भी न हुआ। अनन्तर शत-क्रतु इन्द्र ब्राह्मणका रूप धरके उस नगरमें जाकर राजपुत्रोंका भेदित करनेमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने कहा, जो लोग एक पिताके पुत्र हैं, वैसे भाइयोंमें भी सौभ्रात्र नहीं रहता, कश्यपके पुत्र देवता और असुर लोग परस्पर बिबाद किया करते हैं। तुम लोग भङ्गास्वन राजाके पुत्र हो, और ये लोग तपस्वीके पुत्र हैं; जब कि देवता और असुर दोनों कश्यपके पुत्र होनेपर भी राज्यके निमित्त बिबाद किया करते हैं, तब तपस्वीके पुत्र जो तुम्हारे पैतृक राज्यको भोग करते हैं, यह अत्यन्त ही आश्चर्य्य है। राजपुत्र लोग इन्द्रके द्वारा भेदित होनेपर युद्धमें परस्पर एक दूसरेका नाश करते हुए सब नष्ट होगये। तपस्विनी यह वृत्तान्त सुन-कर अत्यन्त दुःखित होके रोदन करने लगी। इन्द्र ब्राह्मण बेष धरके उस तापसीके निकट

आकर बोले, हे वरानने! तुम किस दुःखसे सन्तापित होकर रोदन कर रही हो? उस अबलाने उस समय ब्राह्मणको देखकर महा करुणायुक्त स्वरसे कहा, हे ब्रह्मन्! मेरे दो सौ पुत्र कालवशसे नष्ट होगये हैं। हे विप्रवर! पहिले मैं राजा था, उस समय मेरे समान रूपवान एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, अनन्तर किसी समय मैं मृगयाके निमित्त गृहसे निकलके घने वनमें मार्ग भूल गया, हे द्विजोत्तम! उस वनके बीच एक तालाबमें स्नान करनेसे मैं स्त्री होगया। अनन्तर पुत्रोंको राज्य देकर जब मैं स्त्री होकर वनके बीच इस आश्रममें आई, तब महानुभाव तपस्वीके द्वारा मेरे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए, मैं उन्हें नगरमें लेगई थी। हे द्विजवर! कालक्रमसे मेरे उन सब पुत्रोंमें वैर उत्पन्न हुआ; मैं दैवके द्वारा पुत्ररहित होकर इस समय शोककर रही हूं। इन्द्रने उसे दुःखित देखकर कठोर वचन कहा, हे भद्रे! पहिले मेरे अधिष्ठित रहनेपर भी मुझे आह्वान न करके इन्द्रद्विष्ट अग्निष्टोम यज्ञ करके तुमने मेरे चित्तमें अत्यन्त दुःख उत्पन्न किया था। हे दुर्बुद्धे! मैं वही इन्द्र हूं मैंही तुम्हारे विषयमें वैरका पलटा ले रहा हूं। उस समय राजऋषि इन्द्रको देख उनके दोनों चरणोंपर अपना सिर रखके बोले, हे देवश्रेष्ठ! आप प्रसन्न होइये, मैंने पुत्रकी इच्छासे यज्ञ किया था, उस विषयमें मुझपर क्षमा करनी उचित है। इन्द्र उसकी बिनतीसे सन्तुष्ट होके बरदान करनेके लिये उद्यत होके बोले, हे राजन्! तुम्हारे स्त्री शरीरसे जो सब पुत्र उत्पन्न हुए थे, अथवा पुरुष देहसे जिन पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया था उनके बीच कौनसे पुत्र जीवित होवें, वह तुम मुझसे कहो। अनन्तर तापसी सावधान होकर हाथ जोड़के इन्द्रसे बोली, हे इन्द्र! मेरे स्त्री होनेपर जो एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए हैं, वेही जीवित होवें। तब इन्द्रने विस्मित होके उस स्त्रीसे पूछा, कि पुरुष शरीरके उत्पन्न हुए पुत्र तुम्हें अप्रिय क्यों हुए? और स्त्री होनेपर जो सब पुत्र जन्मे हैं, उनके ऊपर तुम्हारा अधिक स्नेह क्यों है? मैं उसका कारण सुननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये इस विषयको तुम्हें मेरे समीप वर्णन करना उचित है।

स्त्री बोली, हे देवराज! स्त्रीको स्नेह अधिक होता है, पुरुषका वैसा नहीं होता, इसही लिये मेरी स्त्री अवस्थामें जो सब पुत्र उत्पन्न हुए हैं वेही जीवित होवें।

भीष्म बोले, इन्द्र उस तापसीका वचन सुनके प्रीतिपूर्व्वक बोले, हे सत्यवादिनी! तुम्हारे सब पुत्र ही जीवित होवें। हे उत्तम व्रत करनेवाले राजेन्द्र! पुरुषत्व अथवा स्त्रीत्व, इन दोनोंमेंसे जो इच्छा हो, वह वर मांग लो।

स्त्री बोली, हे इन्द्र! मैं स्त्रीत्वको ही अभिलाष करती हूं, पुरुषत्वकी इच्छा नहीं करती। देवराजने ऐसा वचन सुनके फिर उससे कहा, हे महाराज! तुमने पुरुषत्वको परित्याग करके किस लिये स्त्रित्वकी इच्छा की? स्त्रीरूपधारी राजाने देवराजका ऐसा वचन सुनके उत्तर दिया, हे देवेन्द्र! पुरुषके संयोगसे स्त्रीको ही अधिक प्रसन्नता हुआ करती है, यह सत्य है, कि स्त्री शरीरमें ही रतिका अधिक सुख मिलता है, मैं स्त्रीभावमें ही सन्तुष्ट हूं। हे देवराज! आपकी जहां इच्छा हो, वहां जाइये। इन्द्र बोले, 'ऐसा हो हो' यह वचन कहके उस तापसीका आमन्त्रण करके देवलोकमें चले गये। हे महाराज! इसी प्रकार स्त्रीका पुरुषमें अधिक वैषयिक सुख वर्णित हुआ है।

१२ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, लोकयात्राके हितार्थी अर्थात् ऐहिक शिष्ट व्यवहार और

पारलौकिक कल्याणकी इच्छा करनेवाले हितैषी मनुष्यको इस विषयमें क्या करना चाहिये और कैसे स्वभावसे युक्त होके लोकयात्रा निबाहे।

भीष्म बोले, शरीरसे तीन, वचनसे चार और मानससे तीन इन दश प्रकारके कर्म्मोंको परित्याग करे। प्राणिहिंसा, चोरी और परस्त्री हरण ये तीनों शारीरिक पाप परित्यागके योग्य हैं। हे राजेन्द्र! ग्रामवार्त्तादि, निठुर वचन कहना, राज द्वारमें पराये दोष प्रकट करना, असत्प्रलाप वा मिथ्या अर्थात् दूसरेको पीड़ित करनेवाला मिथ्या वचन, इन चार प्रकारके पापोंकी जल्पना और चिन्ता न करे अर्थात् 'ऐसा कहूंगा' यह मनमें भी न सोचे परधनकी चिन्ता, दूसरेकी बुराईकी चिन्ता करना और वाद विषयमें नास्तिकता, ये तीनों पाप कर्म्मोंको मनसे परित्याग करना चाहिये। परस्व विषयकी चिन्ता न करनी, सब जीवोंमें सुहृद्भाव और कर्म्म फलका अस्तित्व स्वीकार मन ही मन इन त्रिविध विषयोंका आचरण करे। इसलिये मनुष्य वचन, शरीर और मनके द्वारा अशुभ आचरण न करे, शुभ वा अशुभ कर्म्म करनेसे उसका फल भोगना पड़ता है।

१३ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे गङ्गानन्दन पितामह! आपने जगत्पति महेश्वरके नामोंको सुना है, इसलिये इस समय उस ही जगन्नियन्ता अन्तर्यामी विशाल विश्वरूप महाभाग सुरासुर गुरु जगत्की उत्पत्ति और लयके कारण स्वयम्भू देवके नामोंको यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, जो देव सर्व्व उपादान निबन्धनसे सर्व्वगत होके भी सर्व्वत्र नहीं दीख पड़ता, उस धीमान् महादेवके गुणोंको वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूं। जो विराटसूत्रात्मा वा प्राज्ञका उपादान तथा निमित्त कारण है, ब्रह्मा आदि देवता और पिशाच प्रभृति जिसकी उपासना करते हैं, पञ्चतन्मात्र अहङ्कार महत् अव्यक्त विश्वकारण प्रकृतिके परम हेतु भोक्ता पुरुषसे भी परतर रूपसे योगवित् तत्वदर्शी ऋषि लोग जिसका ध्यान किया करते हैं। जो अपरिणामी परब्रह्म, अव्याकृत कारण, रज्जु सर्पवत् भासमान होके भी अनिर्व्वचनीय है। जिसने अपने तेजप्रभावसे माया और उसमें प्रतिबिम्बित चैतन्यको प्राणि-कर्म्मानुरोधसे साम्यावस्थामें स्थापित करते हुए निज सत्तामें स्फर्ति प्रदान करके ब्रह्माको उत्पन्न किया है। जब कि उस देवोंके देवसे प्रजापति उत्पन्न हुए हैं, तब गर्भ जन्म जरायुक्त मृत्यु सम्पन्न कौन मनुष्य उस धीमान् महादेवके गुणोंको वर्णन करनेमें समर्थ होगा। हे तात! शंखचक्र गदाधारी नारायणके अतिरिक्त मेरे समान कोई मनुष्य उस परमेश्वरको नहीं जान सकता। ये गुणोंमें श्रेष्ठ परम दुर्ज्जय दिव्य दृष्टि महातेजस्वी विद्वान् विष्णु योगनेत्रके सहारे उसे देख सकते हैं। रुद्र भक्तिके हेतु महात्मा कृष्णके द्वारा समस्त जगत् व्याप्त होरहा है। हे भारत! बदरिकाश्रममें इन्होंने उस ही देवको प्रसन्न करके दिव्य दृष्टि महेश्वरके प्रभावसे उस समय सब लोकोंके बीच भोग्य वस्तुओंसे भी प्रियतरत्व प्राप्त किया है। इस ही कृष्णने पूरी रीतिसे एक हजार वर्षतक तपस्या की थी, चराचर गुरु वरदेव शिवको प्रसन्न करके कृष्णने युगयुगमें महेश्वरको सन्तोषयुक्त किया है और इस महात्माकी परम भक्तिसे महादेव प्रसन्न हुए हैं। जगद्योनि महादेवका जैसा ऐश्वर्य्य है, उसका इस अच्युत हरिने पुत्रके निमित्त साक्षात् दर्शन किया है। हे भारत! उससे परे मैं और किसीको भी नहीं देखता; ये महाबाहु कृष्ण ही उस महादेवके नामोंको अशेषरूपसे कह सकते

हैं, येही उस भगवान्‌के गुणोंको वर्णन करनेमें समर्थ हैं, हे महाराज! येही महेश्वरकी सत्यविभूतिको विस्तारपूर्व्वक वर्णन करनेके उपयुक्त हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महायशस्वी भीष्म पितामह उस समय भव-महात्म्यविषयमें ऐसा कहके वासुदेवसे कहने लगे।

भीष्म बोले, हे सुरासुर गुरु विष्णुदेव! विश्वरूप शिवके उद्देश्यसे युधिष्ठिरने मुझसे जो प्रश्न किया है, तुम उस विषयको वर्णन करनेमें समर्थ हो। शिवके एक हजार नाम जो कि पहले ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके समीप ब्रह्मयोनि तण्डीके द्वारा वर्णित हुए थे, द्वैपायन आदि उत्तम व्रत करनेवाले दान्त तपस्वी ऋषि लोग तुम्हारे मुखसे उन नामोंको सुनें, कूटस्थ आनन्दमय कर्त्तृस्वरूप कर्म्मफल दान करके रक्षा करनेवाले विश्वस्रष्टा गार्हपत्य अग्निस्वरूप मुण्डी अर्थात् यथार्थमें निगूढ़ कपर्द्दी उपाधिवशसे चूड़ाविशिष्ट विश्वेश्वरका ऐश्वर्य्य वर्णन करिये।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हिरण्यगर्भ आदि तथा इन्द्रके सहित समस्त देवता लोग और महर्षिवृन्द ईश्वरके कर्म्मोंकी गतिको यथार्थ रूपसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं। सूक्ष्मदर्शी इन्द्रियाध्यक्षदेववृन्द जिसका हार्द्दाकाशाख्य स्थानको नहीं जान सकते, वह साध्योंकी गतिस्वरूप ईश्वर मनुष्योंको किस प्रकार मालूम होगा। इसलिये मैं आपके निकट उस व्रतपूर्व्वक किये हुए यज्ञोंके फल देनेवाले असुरनाशक भगवानके कुछ गुणोंको यथार्थ रीतिसे वर्णन करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भगवान् कृष्ण इस ही प्रकार उस धीमान् महात्माके गुणोंका वर्णन कर जल स्पर्श करके पवित्र होकर कहने लगे।

श्रीकृष्ण बोले, हे द्विजेन्द्रगण! हे तात धर्म्मराज! हे गाङ्गेय! आप भी इस समय कपर्द्दीके नामोंको सुनिये। पहले मैंने शाम्बके निमित्त जिन सब अत्यन्त दुष्कर नामोंको प्राप्त किया था, उसे ही वर्णन करूंगा। पहले मैंने समाधिके द्वारा उस भगवान्‌का दर्शन किया था। बुद्धिमान् रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्नके हाथसे शम्बरासुरके मारे जानेपर बारह वर्षके अनन्तर जाम्बवतीने मुझसे कुछ कहनेकी इच्छा की। हे धर्म्मराज! वह रुक्मिणी पुत्र प्रद्युम्न और चारु देष्ण आदिको देखकर पुत्रकी कामना करके मेरे निकट आके बोली, हे अच्युत! तुम थोड़े ही समयके बीच शीघ्र ही मुझे शूर, बलवान् कान्तरूप और अकल्मष अपने समान पुत्र प्रदान करो। हे यदुकुल धुरन्धर! तीनों लोकोंके बीच तुम्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं है, इच्छा करनेसे तुम दूसरे लोकोंकी सृष्टि कर सकते हो। तुमने बारहवर्षका व्रत करके शरीर सुखाकर महादेवकी आराधना करके रुक्मिणीमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न किया है अर्थात् चारुदेष्ण सुचारु, चारुवेश, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न और शम्भु, ये सब सुन्दर तथा पराक्रमी पुत्र जैसे रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं; हे मधुसूदन! वैसे ही मुझे भी एक पुत्र प्रदान करो। जाम्बवतीका ऐसा वचन सुनके मैंने उस सुन्दरीसे कहा, हे रानी! तुम अनुमति दो, मैं तुम्हारे वचनको प्रतिपालन करूंगा, उसने मुझसे कहा, तुम विजय और मङ्गलके निमित्त प्रस्थान करो। हे यादव! ब्रह्मा, शिव काश्यप, नदियें, मनके अनुगामी सब देवता, अग्नि, क्षेत्रज्ञ, ओषधियें, छन्दसमूह, ऋषिवृन्द, सब पर्व्वत, समुद्र, दक्षिणा, सामपूरण स्तोभ वाक्य, तारासमूह, पितर, ग्रह, देवपत्नी, देवकन्या और देवमातृवृन्द, मन्वन्तर, गऊ, चन्द्रमा सूर्य्य, हरि, सावित्री वा ब्रह्मविद्या, ऋतु, वर्ष क्षण, लव, मुहूर्त्त, निमिष और युग पर्य्याय, ये सब जहां तुम जाओ, उस ही स्थानमें तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हारी रक्षाके कारण होवें।

हे पाप रहित! तुम अप्रमत्त होके निर्व्विघ्न मार्गमें गमन करो। जब उसने मेरा ऐसा स्वस्त्य-

यन किया, तब मैंने उस राजपुत्रीकी अनुमति लेकर फिर पुरुषसत्तम पिता तथा माता और राजा आहुकके निकट जाके जाम्ववतीने अत्यन्त दुःखित होके मुझसे जो कुछ कहा था, उसे निवेदन करके अति कष्टसे उनकी आज्ञासे गद और महाबलवान बलदेवके निकट सब वृत्तान्त वर्णन करके उनको अनुमति मांगी। उस समय उन्होंने प्रसन्न होके कहा, तुम्हारे तपकी निर्व्विघ्न वृद्धि होवे, अनन्तर मैंने गुरुजनोंकी आज्ञा पाके गरुड़को स्मरण किया। गरुड़पर चढ़के मैं हिमालय पहाड़पर गया और वहां पहुंचके मैंने उसे विदा किया। अनन्तर उस पर्व्वतपर आश्चर्यमय विषयोंको देखने लगा। वैयाघ्रपद्य गोत्र महानुभाव उपमन्युका दिव्य आश्रम जो तपस्वियोंका चित्र कहके विख्यात् था, मैंने उस अद्भुत और उत्तम स्थानको देखा वह आश्रम देवताओं और गन्धर्व्वोंसे पूजित तथा ब्राह्मी लक्ष्मीसे समावृत था; धव, ककुभ, कदम्ब, नारियल, कुरवक, केतकी, जासुन, पाटल, वट, वरुण, वत्सनाभ, बेल, सरल, कापत्थ, पियाल, शाल, ताल, बदरी, कुन्द, पुन्नाग, अशोक, अतिमुक्त मधुक, कोविदार, चम्पा, पनस और दूसरे अनेक प्रकारके फल और फूलोंसे युक्त वृक्षोंसे घिरा हुआ था। वह आश्रम पुष्प, गुल्म और लताओंसे परिपूरित, केलेके खण्डसे शोभित, विविध पक्षियोंके भोज्य फल और वृक्षोंसे अलंकृत, यथायोग्य स्थानमें रखी हुई भस्मसे ढकी हुई अग्निसे विभूषित, रुरु बन्दर शार्दूल सिंह हरिन बर्हिण मार्ज्जार भुजगन्द और तंदुओंसे परिपूर्ण, अनेक प्रकारके मृगसमूह भैंसे और वृक्षोंसे निषेवित सकृत् प्रभृति हाथियोंसे विभूषित अनेक प्रकारके प्रहृष्ट पक्षियोंसे सेवित और बादलके समान उत्तम फूले हुए वृक्षोंसे विचित्र बोध होता था, वहांपर विविध पुष्पोंकी सुगन्धियुक्त दिव्य स्त्रियोंके संगीत समान सुखस्पर्श युक्त वायु बह रही थी। हे वीर! वह स्थान जलधारा निनाद, पक्षियोंकी बोली, हाथियोंके मनोहर चिग्घाड़, किन्नरोंके उदार गीत और साम-गान करनेवाले ब्राह्मणोंकी पवित्र ध्वनिसे अलंकृत था; दूसरे पुरुषोंको मनसे भी अचि-न्तनीय, तड़ागोंसे अलंकृत और विशाल तथा कुसुम वृत अग्निगृहोंके द्वारा उत्तम शोभासे युक्त था।

हे महाराज! वह आश्रम पवित्र जलवा-हिनी जन्हनन्दिनीसे सदा सेवित और विभूषित तथा अग्निके समान तेजस्वी महात्माओंसे अलंकृत था। वायु तथा जल पीनेवाले जपमें रत मैत्री प्रभृति निश्चय करके शोधन करनेवाले ध्याननिष्ठ योगी जन और धूमप्राश उष्मप और चीरप ब्राह्मणेन्द्रोंके द्वारा सब भांतिसे सेवित था। गोचारी अर्थात् जो लोग गऊके समान मुखसे आहार किया करते हैं; अश्मकुट, दन्तो-लूखलिक, मरीचिप अर्थात् चन्द्रकिरण पान करके जीवन धारण करनेवाले, फेनप, मृग-चारी, अश्वत्थफल भोजी, जलमें शयन करने-वाले, चीर और चर्म्माम्बरधारी तथा बल्कल और अत्यन्त कष्टसे जो लोग उन सब नियमोंमें तत्पर रहते हैं, वैसे अनेक प्रकारके तपस्वी मुनियोंका दर्शन करके मैंने उस स्थानमें प्रवेश करनेकी इच्छा की। हे भारत! हे राजन्! आकाशमण्डलमें चन्द्रमण्डलकी भांति वह आश्र-ममण्डल पुण्यकर्म्म करनेवाले महानुभाव भव आदि देवताओंसे सदा उत्तम रीतिसे पूजित होकर विराजमान था। महातपस्वी महात्मा-ओंके सहवास और प्रभावसे वहांपर नेवल विषधर सांपोंके साथ और बाघ मृगयूथोंके सङ्ग मित्रकी भांति क्रीड़ा करते थे। वेदवेदान्त जाननेवाले विविध नियमोंसे विख्यात द्विजवर्य्य महानुभाव महर्षियोंसे सेवित उस सर्व्वभूत मनोरम श्रेष्ठ आश्रमस्थलमें प्रवेश करते ही मैंने जटा चीरधारी तेज और तपस्याके द्वारा

अग्निके समान प्रकाशमान, शिष्योंके अनुगत शान्त यौवनसम्पन्न निग्रहानुग्रहमें समर्थ द्विज-वर उपमन्युका दर्शन किया। जब मैंने सिर नीचा करके उनकी वन्दना की, तब वह मुझसे बोले, हे पुण्डरीकाच ! तुमने सुखसे आगमन किया है न ? हम लोगोंकी तपस्या सफल हुई, क्यों कि तुम पूज्य होके भी हमारी पूजा करते हो और हमारे दर्शनीय होनेपर भी हम लोगोंके दर्शनकी इच्छा करते हो। मैंने हाथ जोड़के उनसे मृग, पक्षी, अग्नि, धर्म्म और शिष्योंके विषयमें अनामय प्रश्न किया।

अनन्तर भगवान उपमन्यु मुझसे परम मनोहर शान्त वचनसे बोले, हे कृष्ण ! तुम अपने समान पुत्र निःसन्देह प्राप्त करोगे। तुम उत्तम महत् तपस्या अवलम्बन करके सर्व्वनियन्ता महादेवको सन्तुष्ट करो। हे अधोक्षज ! वह देव सपत्नीक होके इस ही स्थानमें विराजमान हैं। हे जनार्द्दन ! पहिले समयमें ऋषियोंके सहित देवताओंने इस ही स्थानमें तपस्या, ब्रह्मचर्य्य सत्य और इन्द्रियनिग्रहके द्वारा उस महादेवको सन्तुष्ट करके शुभवासनाओंको प्राप्त किया था। हे शत्रुनाशन ! तुम जिसकी प्रार्थना करते हो, वह तपोनिधि और तेजके आधार अचिन्तनीय भगवान इस ही स्थानमें शुभाशुभ और संहार करते हुए अभिप्रायको उत्पन्न करनेवाली देवीके सहित विराजमान हैं।

सुमेरु पर्व्वतको कंपानेवाला जो हिरण्यकशिपु नामक दानव था, उसने महादेवकी कृपासे अर्व्वुद वर्ष पर्य्यन्त सब देवताओंका ऐश्वर्य्य पाया था। उसहीका मुख्य पुत्र मन्दर नामसे विख्यात है, उसने महादेवके वरप्रभावसे अर्व्वुद वर्षतक इन्द्रके सङ्ग युद्ध किया था। हे तात केशव ! विष्णुका वह घोरचक्र और इन्द्रका भयङ्कर वज्र पहिले समयमें उस मन्दरके अङ्गमें लगनेसे विफल हुआ था।

हे पापरहित ! पहिले समयमें भगवानने जलान्तरचर बलगर्व्वित दैत्यको मारके तुम्हें जो चक्र दिया था, तथा उस दैत्यको मारनेके लिये वृषभध्वजने जो अग्निके समान प्रकाशमान चक्र उत्पन्न किया था, भगवानने जो तुम्हें अद्भुत तेजसे युक्त दुर्द्धर्ष चक्र प्रदान किया था, पिनाकीके अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष उसका दर्शन नहीं कर सकता। इस ही निमित्त महादेवने उस समय कहा था, कि यह सुदर्शन होवे ; तभीसे लोकके बीच वह सुदर्शन नामसे प्रतिष्ठित होरहा है। हे तात केशव ! वह चक्र मन्दरके अङ्गमें लगके जीर्ण तृणके समान व्यर्थ हुआ था। महादेवने उस मन्दर असुरको यह वर दिया था, कि तुम सब शस्त्रोंसे अवध्य होगे, इस ही वरके प्रभावसे वह धीमान् प्रबल बलशाली असुर निज अङ्गपर चक्र और सैकड़ों वज्र आदि शस्त्रोंकी चोट सहनेमें ही सह सकता था। जब बलवान मन्दरने देवताओंको अत्यन्त पीड़ित किया, तब देवताओंने महादेवके दिये हुए वरके प्रभावसे गर्व्वित दानवोंके दलको नष्ट किया था, देवताओंके बुद्धि कौशलसे वे लोग आपसमें कलह करके विनष्ट हुए।

महादेवने विद्युत्प्रभा दानवके ऊपर प्रसन्न होके उसे तीनों लोकका ऐश्वर्य्य दान किया था, वह सौ हजार वर्षतक सब लोकोंका ईश्वर हुआ था। भगवानने उसे कहा था, कि तू सदा मेरा ही अनुचर होगा और उसे सहस्र अयुत पुत्र प्रदान किया था। जन्मरहित भगवानने उसे राज्यके सहित कुशद्वीप दान किया।

अनन्तर शतमुख नामक जो महासुर ब्रह्माके द्वारा उत्पन्न हुआ था और जिसने एक सौ वर्ष तक निज मांससे अग्निको तृप्त किया था, भगवान शङ्कर उसपर प्रसन्न होके बोले, मैं तुम्हारे लिये क्या करूं ? शतमुखने उनसे कहा, हे देवोंकेदेव ! आपकी कृपासे मुझे चन्द्रमा, सूर्य्य, पर्ज्जन्य पृथ्वी आदिकी सृष्टिकी सामर्थ्यशाली अद्भुतयोग होवे और आप मुझे

ब्रह्मविद्यासे उत्पन्न शाश्वत बल प्रदान करिये। निग्रहानुग्रहमें समर्थ भगवानने उसका वह वचन सुनके कहा, 'ऐसा ही होगा।'

स्वायम्भुवक्रतु भी पुत्रके निमित्त योगके सहारे तीन सौ वर्षतक हिरण्य-गर्भमें आविष्ट हुए थे भगवानने उसे क्रतु परिमित सहस्र पुत्र प्रदान किया। हे कृष्ण! वेदमें वर्णित योगीश्वरको तुम निःसन्देह जानते हो। परम धार्मिक ऋषि जो याज्ञवल्क्य नामसे विख्यात हैं; वह महादेवकी आराधना करके अतुल यशस्वी हुए हैं।

पराशर पुत्र महामुनि योगिवर वेदव्यास भी शङ्करकी आराधना करके अशेष यशलाभ किया है। पहिले समयमें बालखिल्य मुनियोंने देवराजके द्वारा अवज्ञात होनेसे क्रुद्ध होकर तपस्याके सहारे महादेवको सन्तुष्ट किया। जगत्पति महादेव प्रसन्न होके उनसे बोले, तुम लोग तपस्याके द्वारा सोम हरनेवाले गरुड़को उत्पन्न करोगे।

पहिले समयमें महादेवके क्रोधवश समस्त जल नष्ट हुआ था। महेश्वरने सप्त-कपाल अर्थात् त्र्यम्बक देवत मन्त्रके सहारे जलको फिर उत्पन्न किया। अनन्तर महादेवके प्रसन्न होनेपर पृथ्वीमण्डलपर समस्त जल पीने योग्य हुआ था।

अत्रिमुनिकी ब्रह्मवादिनी भार्य्या पतिको परित्याग करके प्रतिज्ञा की, कि मैं अब फिर कभी किसी प्रकारसे भी उस मुनिकी वशवर्त्ती न हूंगी; ऐसा कहके वह महेश्वरकी शरणागत हुई थी। उसने अत्रिके भयसे अनाहारी होके तीन सौ वर्षतक महादेवकी कृपाके निमित्त मूषल अर्थात् लोह हलके अग्रभागमें शयन किया। महेश्वरने हंसके उससे कहा, कि रुद्रमन्त्रके प्रभावसे विना पतिके ही तुम्हारे निःसन्देह पुत्र होगा, और वंशके बीच वह तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा।

हे मधुसूदन! भगवान भक्तिमान विकर्णने महादेवको प्रसन्न करके सिद्धि लाभ की थी। हे केशव! संशितचित्त शाकल्यने नव सौ वर्षतक मनो-यज्ञसे महादेवकी आराधना की थी। भगवान प्रसन्न होके उससे बोले, हे तात! तुम ग्रंथ कर्त्ता होगे। और तीनों लोकके बीच तुम्हारी अक्षय कीर्त्ति होगी, महर्षि कुलके द्वारा अलंकृत तुम्हारा वंश अक्षय होगा और तुम्हारा पुत्र द्विजश्रेष्ठ तथा सूत्रकर्त्ता होगा।

सतयुगमें सावर्णि नाम एक विख्यात ऋषि थे, उन्होंने इस स्थानमें छःहजार वर्षतक तपस्या की थी; भगवान रुद्रदेव स्वयं उनसे बोले, हे अनघ! मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं तुम अजर और अमर होके लोकमें प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ता होगे।

हे जनार्द्दन! पहिले समयमें दिग्वासा अस्त्रगुप्तीत भगवान काशीधाममें भक्तवर इन्द्रके द्वारा पूजित हुए थे, उन्होंने महादेवकी आराधना करके देवराज्य पाया।

पहिले समयमें नारद मुनिने भक्ति भावसे महादेवकी आराधना की थी, देवगुरु महादेव प्रसन्न होके उनसे बोले; तेज तपस्या और कीर्त्तिके द्वारा तुम्हारे समान कोई भी न होगा, गीत और बाजेके द्वारा तुम सदा मेरे अनुगत रहोगे। हे तात! हे विभुमाधव! मैंने जिस प्रकार पहिले समयमें देवोंके देव पशुपतिका साक्षात् दर्शन किया था, उसे भी तुम विस्तारके सहित सुनो। हे अनघ! पहिले देवोंकेदेव महादेवसे मैंने सावधान होके जिस प्रकार उन्हें प्रबोधित किया था, इस समय उसे पूरी रीतिसे कहता हूं। हे तात! पहिले सत्ययुगमें वेदवेदाङ्ग जाननेवाले महायशस्वी व्याघ्रपाद नामसे विख्यात एक ऋषि थे, मैं उनका पुत्र था और धौम्य मेरा भाई था। हे माधव! किसी समय मैं धौम्यके सङ्ग खेलते हुए भावितात्मा मुनियोंके आश्रममें उपस्थित हुआ। वहांपर

मैंने किसी दूध देनेवाली गऊका दूध दूहना देखा, वह दूध अमृतके समान स्वादयुक्त मालूम हुआ।

अनन्तर बाल्यकालकी सुलभ चपलतासे मैंने अपनी मातासे कहा, हे माता! मुझे चीरयुक्त भोजन प्रदान करो। उस समय मेरी माताने दूधके अभावसे दुःखित होकर चावल पीसकर उसका पिष्ट बनाया और जलमें घोलके हमें पीनेको दिया। हे तात माधव! मैंने पहले एक बार गऊका दूध पीया था, यज्ञके समय पिता मुझे एक महत् ज्ञातिकुलमें लेगये थे, वहां दिव्य गऊ सुरनन्दिनीका दूध भरता था, मैंने उसका वही अमृत समान दूध पीके दूधका गुण और जिस प्रकार उसकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता था, इसलिये वह पिष्टरस मुझे रुचिकर न हुआ। हे तात! अनन्तर मैंने बाल-स्वभावके वशमें होकर उस समय अपनी मातासे कहा, हे माता! तुमने मुझे जो दिया है, वह दूध नहीं है। हे माधव! अनन्तर दुःख शोकसे युक्त माताने पुत्रस्नेहवश मुझे गोदीमें मस्तक सूंघ-कर बोली, हे पुत्र! सदा बनवासी कन्दमूलफल भोजन करनेवाले आत्मज्ञ ऋषियोंके आश्रममें चीरोदन कहां है? जो लोग बालखिल्यगणसे निषेवित दिव्य नदीको अवलम्बन किये हुए हैं, उन बनवासी और पर्व्वतनिवासी मुनियोंके निकट दूध कहांसे आवेगा? हे पुत्र! आश्रम-निवासी वायु और जल पीनेवाले तथा ग्राम्य आहारसे विरत जङ्गलके फल खानेवाले ऋषि-योंके सुरभी गोत्रसे रहित बनमें दूध नहीं है। नदी गुफा पर्व्वत और विविध तीर्थोंमें हम लोग तपस्याके द्वारा जपमें रत हुआ करते हैं, इस-लिये देवोंकेदेव महेश्वर ही हम लोगोंकी परम गति हैं। हे पुत्र! अव्यय स्थाणु वरद विरूपा-चको विना प्रसन्न किये चीरोदन और सुखसा-धन वस्त्र आदि कहांसे प्राप्त होंगे? हे पुत्र! इसलिये तुम्हें सब भांतिसे चित्त लगाके उस ही महादेवके शरणागत होना उचित है, उनकी कृपासे तुम सब वाञ्छनीय फल पाओगे।

हे शत्रुनाशन! माताका ऐसा वचन सुनके उस समय हाथ जोड़के विनयपूर्व्वक मैंने उससे यह वचन कहा, हे माता! वह महादेव कौन हैं? और वह किस प्रकार प्रसन्न होते हैं? वह देव किस स्थानमें निवास करता है और किस प्रकारसे उसका दर्शन किया जाता है, किस भांति वह महेश्वर सन्तुष्ट होता है; उसका कैसा रूप है? किस प्रकार लोग उसे प्रसन्न हुआ जान सकते हैं? हे माता! तुम मेरे निकट यह सब वृत्तान्त वर्णन करो।

हे कृष्ण! उस समय जब मैंने पुत्रवत्सला मातासे ऐसा वचन कहा, तब वह मेरा मस्तक सूंघकर आंसू भरे हुए नेत्रसे युक्त होकर शरीर-पर हाथ फेरकर दीनता अवलम्बन करके बोली।

माता बोली, महादेव दुर्व्विज्ञेय (शास्त्रसे जानना अशक्य है) दुराधार शास्त्रसे ज्ञान होने पर भी मनमें धारण करना अयोग्य है। दुरावधि (ध्रियमान होनेपर भी लय विक्षेपके द्वारा सङ्कटयुक्त हैं,) क्योंकि वह दुरन्तक है, (अर्थात् उसमें सब बन्ध दूषित हुआ करते हैं,) विघ्नाभावमें भी वह दुर्ग्राह्य है। वह सहजमें नहीं जाना जाता और पुण्यहीन मनुष्योंको दुर्दर्श है (वैराग्यसे भी वह किसीके दृष्टिगो-चर नहीं होता) मनीषी लोग उसके अनेक प्रकारके रूप, विचित्र स्थान और अनेक भांतिकी प्रसन्नताके विषय कहा करते हैं, उस ईश्वरके शुभचरितोंको कौन जाननेमें समर्थ होता है? पहले समयमें देवोंकेदेव महेश्वरने जिन रूपोंको धारण किया था, तथा वह जिस प्रकार क्रीड़ा करते, जैसे प्रसन्न होते, विश्वरूप महेश्वर सब प्राणियोंके हृदयस्थ होनेपर भी भक्तोंपर कृपा करके जिस प्रकार रूप धारण करते हैं, जिस भांति उनका दर्शन किया जा सकता है, महादेवके पवित्र चरित्र कहनेवाले

मुनियोंके मुखसे उनके शुभ चरित्रोंको मैंने जिस प्रकार सुना है, हे तात! ब्राह्मणोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त उन्होंने जो सब रूप धारण किये थे, देवताओंके कहे हुए उन सब विषयोंको संक्षेपमें सुनो। तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, वह सब वृत्तान्त मैं तुमसे कहती हूं।

माता बोली, भगवान महेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और विश्वदेवगणके रूपको धारण करते हैं। पुरुष, स्त्री, प्रेत, पिशाच, किरात, शवर और विविध जलचर तथा बनचर जीवोंका रूप धारण किया करते हैं। वह कूर्म्म, शङ्ख और प्रवालांकुर-भूषण बसन्तकाल स्वरूप होते हैं। वह देव, यक्ष, राक्षस, सर्प, दैत्य, दानव और बिलाशिगणके रूपको धारण करते हैं। बाघ, सिंह, हरिन, तेंदुआ भालू, पक्षी, उल्लू और सियारोंके रूपको अवलम्बन करते हैं; वह हंस, कौआ, मोर, कृकलास, सारस, बक, गिद्ध, चक्रवाक, स्वर्णचातक तथा पर्व्वत आदिके रूपको भी धारण किया करते हैं। महादेव गज, हाथी, घोड़े, ऊंट और खरकी आकृति भी अवलम्बन करते हैं। वह बकरे और शार्दूलके रूपको धारण करते तथा अनेक प्रकारके मृगोंका रूप अवलम्बन किया करते हैं। महेश्वर दिव्य अण्डजोंकी आकृति धारण करते हैं, तथा वह दण्ड, छत्र और कुण्डल धारण करके द्विजोंको अवलम्बन किया करते हैं। वह षड्-मुख और अनेक मुखवाले, त्रिलोचन और बहुशीर्षक हैं। वह अनेक कटि, अनेक चरण, अनेक उदर और शरीर धारण करते हैं। वह अनेक हाथ, अनेक पार्श्व और अनेकों गणोंसे युक्त रहते हैं। वह ऋषिरूप, गन्धर्व्वरूप और सिद्ध चारणोंका रूप धारण किया करते हैं। उनका शरीर भस्मके द्वारा पाण्डुर वर्ण और अर्द्धचन्द्रसे विभूषित है; वह विविध वरसे सन्तुष्ट और अनेक स्तोत्रोंसे संस्कारयुक्त हैं।

वह सब भूतोंके नायक होके सब लोकोंमें प्रतिष्ठित हैं; सर्व्व स्वरूप, सब प्राणियोंके अन्त-रात्मा, सर्व्वग और सर्व्वभाषी वह भगवान सर्व्वत्र विद्यमान हैं, और देहधारियोंके हृदयमें निवास कर रहा है। जो लोग जिस विषयकी अभिलाषा करके जिस निमित्त उसकी पूजा किया करते हैं, वह देवेश महेश्वर उन सब विषयोंको जानता है; इसलिये यदि इच्छा हो, तो तुम उसकी शरणमें जाओ। वह अनिन्दित होता, कुपित होता और हुङ्कार प्रकाश किया करता है। वह चक्र, शूल, गदा, मूषल और पट्टिश धारण किया करता है; वह पर्व्वत होके नागकी बनी हुई मौञ्जीमेखला धारण करता है; वह सर्पोंका जनेऊ पहरता और गजाम्बर धारण किया करता है। वह हंसता, गाता, मनोहर रीतिसे नाचता और भूतोंमें घिरकर विचित्र बाजा बजाया करता है। वह बात करता, जमुहाई लेता, रोता और रुलाता है। वह उन्मत्तरूप वा मत्त स्वरूप और उत्तम स्वरसे वार्त्तालाप किया करता है। वह रौद्र रूपसे तीनों नेत्रोंके द्वारा लोगोंको त्रासित करके अत्यन्त भयङ्कर हास्य किया करता है; वह जागता, सोता और सुखपूर्व्वक जमुहाई लेता है। वह जप करता है, और सब लोग उसका जप किया करते हैं; वह तप करता है, और उसके निमित्त लोग तपस्या किया करते हैं। वह दान करता और प्रतिग्रह ग्रहण किया करता है, योग करता और ध्यान करता है। वेदी, यूप गोसमूहके बीच और अग्निमें कभी दीख पड़ता तथा कभी अदृश्य होता है। वही बालक, वृद्ध और युवा है, वही ऋषि-कन्या तथा ऋषिपत्नियोंके सङ्ग क्रीड़ा करता है। वह ऊर्द्धकेश, महालिङ्ग, नग्न और विकृ-तनेत्र है। वह गौर, श्याम, कृष्ण, पाण्डुर, धूम्र और लालवर्णसे युक्त है; वह विकृताक्ष, विशा-लाक्ष, दिगम्बर और सर्व्वाम्बर अर्थात् सबका

आच्छादक है; उस रूपरहित अर्थात् आद्यरूपी, निष्कल, मायावी, अतिरूप, नाशकार्य्यके कारण, आद्यरूप, हिरण्यगर्भ, अनादि, अनन्त, जन्मरहित महेश्वरका अन्त यथार्थ रीतिसे कौन जान सकता है? जो हृदयके बीच प्राण, मन और जीवस्वरूप अर्थात् अन्नमय, मनोमय और विज्ञानमय कोषरूपसे वर्णित होता है। जो योगात्मा तथा आनन्दमय है, वही योगसंज्ञिक योगी कहा जाता है, वह परम शुद्ध योगस्वरूप परमात्मा महेश्वर सूक्ष्म मनोवृत्तिके द्वारा भी मालूम होने योग्य नहीं है। वही वादक, गीतगानेवाला, सहस्रशतलोचन, एकवक्त्र, आनखभुक्, द्विजिह्न, लिङ्गदेह और जीवस्वरूप है, विवक्त स्थूल शरीरके सहित पूर्व्वोक्त दोनों शरीर स्वरूप और अनेक वक्त्र अर्थात् विराट होता है। हे पुत्र! तुम उसहीका भक्त होके उसीमें चित्त लगाओ, उसीमें निष्ठा करो और उसहीमें रत होके महादेवकी ही आराधना करो; तब तुम अभिलषित विषयोंको प्राप्त करोगे।

हे शत्रुनाशन! माताका ऐसा वचन सुनके उस ही समय महादेवके विषयमें मेरी नैष्ठिकी भक्ति उत्पन्न हुई। अनन्तर मैंने तपस्या करके महादेवको सन्तुष्ट किया; बायें अङ्गूठेके सहारे स्थित होकर एक हजार वर्ष बिताये, एक सौ वर्षतक फल भोजन करके रहा; दूसरी बार एक सौ वर्षतक सूखे पत्तोंको खाके रहा, फिर एक सौ वर्षतक जल पीके समय बिताया; अनन्तर सात सौ वर्षतक वायु पीके रहा; इस ही प्रकार दैव परिमाणसे एक सहस्र वर्षतक महेश्वर मेरे द्वारा पूजित हुए। अनन्तर सब लोकोंके ईश्वर प्रभु महादेव प्रसन्न हुए उस समय उन्होंने मुझे अपना मुख्य भक्त समझके जाननेकी इच्छा की। उन्होंने इन्द्रका रूप धरके सब देवताओंके सहित महायशस्वी वज्रधारी सहस्राक्षके वेषसे सुधाकी भांति अवदात, लालनेत्र, स्तब्धकर्ण्ण, मद्य उत्कट विशाल भुजा, घोररूपी चार दांतवाले महा मातङ्गपर चढ़के अपने तेजसे प्रकाशमान होकर हार किरीट और कुण्डल विभूषित शरीरसे आगमन किया। उनके सिरपर पाण्डुर आतपत्र शोभित था, वह दिव्य गन्धर्व्वोंकी सङ्गीतध्वनि और अप्सराओंके द्वारा सेव्यमान थे।

अनन्तर देवराजरूपी भगवानने कहा, हे द्विजोत्तम! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हारे मनमें जो कुछ अभिलाष हो, वह वर मुझसे मांगो। इन्द्रका वचन सुनके मैं प्रसन्नचित्त नहीं हुआ। हे कृष्ण! उस समय मैंने देवराजसे यह वचन कहा, मैं तुमसे तथा महादेवके अतिरिक्त दूसरे किसी देवतासे भी वरको अभिलाष नहीं करता यह मैं तुम्हारे समीप सत्य ही कहता हूं। हे शक्र! मेरा यह भलो भांति निश्चित वचन अत्यन्त सत्य है; क्यों कि महेश्वरके अतिरिक्त मेरी दूसरे किसीके वचनमें भी रुचि नहीं होती है। पशुपतिके वचन अनुसार मैं उस ही समय कृमि अथवा अनेक शाखायुक्त वृक्ष हूंगा और महादेवके अतिरिक्त मैं दूसरेके वर वा कृपासे तीनों लोकके राज्य तथा ऐश्वर्य्यकी भी इच्छा नहीं करता। शिवचरणमें रत होकर मेरा चाण्डालकुलमें जन्म हो, तोभी उत्तम है और अनोश्वर भक्त होके इन्द्रभवनमें भी मेरा जन्म न होवे। सुरासुर गुरु विश्वेश्वरमें जिसकी भक्ति नहीं है, उस पुरुषके वायु भक्षण वा प्राशन करके निवास करनेपर भी किस प्रकार उसका दुःख नष्ट होगा? हरके चरणकी स्मरण विच्छेदमें जिसकी इस समय भी रुचि न हो, उसे दूसरेके वचन तथा अन्य धर्म्मयुक्त वाक्यसे क्या प्रयोजन है? जनाईन कलियुग उपस्थित होनेपर मनुष्योंकी शिवचरणमें सदा रत होना उचित है, हरभक्ति रसायनको पीनेसे मनुष्यको संसारका भय नहीं होता। दिन, दिनका अर्द्ध भाग, मुहूर्त्त, क्षण

और लवमात्र समयमें भी जो शङ्करके प्रसाद पानेमें समर्थ नहीं है, उसकी उनमें भक्ति नहीं होती। महादेवकी आज्ञानुसार चाहे कीट वा पतङ्ग योनिमें भले ही उत्पन्न होऊं। हे देव-राज! परन्तु तुम्हारे दिये हुए तीनों लोकोंको भी मैं कामना नहीं करता; महेश्वरके वचनसे चाहे कुत्ता भलेही बनूं। क्यों कि वेही मेरे परम प्रार्थनीय हैं; और उनकी आज्ञा न पानेसे देवताओंके राज्यकी भी इच्छा नहीं करता। मैं स्वर्गलोककी अभिलाष नहीं करता, देवराज्यकी इच्छा नहीं करता, ब्रह्मलोककी वाञ्छा नहीं है, निष्कलत्वकी स्पृहा नहीं करता और समस्त काम्य विषयोंकी भी कामना नहीं करता; केवल हरके दासत्व-प्राप्तिकी इच्छा करता हूं। जबतक शशाङ्कध-वल, अमल, चन्द्रमौलि भगवान महेश पशुपति प्रसन्न नहीं होते, तब तक जरा मरण और सैकड़ों जन्मोंके अभिघातके देह विहित क्लेशोंको ढोता रहूंगा। सूर्य चन्द्रमा और अग्निके द्वारा प्रकाशमान त्रिभुवन सारभूत और जिससे बढ़के सारभूत और कुछ भी नहीं है, उस एकमात्र आदि पुरुष अजर अमर रुद्रदेवको बिना प्रसन्न किये इस जगत्में कौन पुरुष शान्ति लाभ करनेमें समर्थ होगा? मेरे दोषसे यदि मेरा पुनर्व्वार जन्म हो, तो उन जन्मोंमें भी महादेवके विषयमें मेरी अक्षय भक्ति उत्पन्न होवे।

इन्द्र बोले, जब तुम महेश्वरके अतिरिक्त दूसरे किसी देवताके प्रसन्नताकी इच्छा नहीं करते हो, तब उस कारणके भी कारण ईश्व-रकी सत्ताके विषयमें कौनसी युक्ति है। जो प्रलयकालमें समस्त जगत्का नाश करता है। तापकी शान्तिके निमित्त अग्निके निकट गमन करनेकी भांति उसके निकट वरकी इच्छा करनी तुम्हारा मूढ़ताका कार्य होरहा है।

उपमन्यु बोले, ब्रह्मवादी लोग जिसे सत्प्र-वाह वा अनादि; असत् शून्य, व्यक्त, परमाणु और अव्यक्त प्रकृति कहते हैं, जो नित्य, असं-हत कार्य्य कारणात्मक है, उस परम शिवाख्य परमेश्वरसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिसका आदि मध्य और अन्त नहीं है, जो ज्ञान, ऐश्वर्य्यमय और अचिन्तित परमात्मा है, उसहीसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिससे सब ऐश्वर्य्य उत्पन्न हुए हैं, जो अव्यय है, जिसका बीज नहीं है, इसके अतिरिक्त जिससे सब बीज उत्पन्न हुए हैं, मैं उसहीसे वर पानेकी इच्छा करता हूं। जो अन्धकारको दूर करनेवाला परम ज्योति और अपनेमें निष्ठा-वान लोगोंके निमित्त परम तपस्वरूप है, जिसे जाननेसे पण्डित लोग शोक नहीं करते, उस-हीसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। हे पुर-न्दर! जो आकाश आदि भूतों और जीवोंको उत्पन्न करता है और जो सबके अभिप्रायको जानता है, तथा जो सब प्राणियोंका नाश कर-नेमें समर्थ है, मैं उस ही सर्व्वगत, सर्व्वद देवकी पूजा करता हूं। हे देवराज! पण्डित लोग जिसे मघवात्मा सुरेश्वर कहते हैं, उस गुरुदेवके निकट मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिसने बीजभूत अव्याकृत आकाशमें ब्रह्माख्य रूपसे पूरण करके पहले लोकभावन प्रजापतिको उत्पन्न किया है। अग्नि, जल वायु, अवला, आकाश अहङ्कार, मन और महत्तत्त्व,—इन सबको परमेश्वरके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष उत्पन्न कर सकता है? हे देवराज! मन शब्द वाच्य अव्यक्त और मति शब्दसे अभिधेय मह-त्तत्त्व तथा अहङ्कार तत्त्व पञ्चतन्मात्र और इन्द्रियें, इन सबके परम अवलम्ब शिवके अति-रिक्त दूसरा कौन पुरुष हो सकता है,—उसे तुमही वर्णन करो। इस लोकमें सब कोई पिता-महको जगत् स्रष्टा कहा करते हैं, परन्तु वह प्रजापति देवेश्वर महेश्वरको आराधना करके महती समृद्धि भोग किया करता है, एक एक

गुणके प्रधान उपाधिक ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रदेवके सृष्टिकर्त्ता तुरीय मूर्त्तिवाले भगवानके निकटसे जो उत्तम ऐश्वर्य्य विद्यमान हैं, वह भी उन्हीं महादेवके द्वारा प्राप्त हुए हैं, इसलिये कहो तो सही, परमेश्वरसे श्रेष्ठ और दूसरा कौन ईश्वर है? दैत्य दानवोंके बीच जिन्होंने प्रधानता लाभ की है, उन्हें आधिपत्य प्रदान और शत्रु-ओंको मर्द्दन करके दितिनन्दन हिरण्यकशिपु प्रभृतिको ऐश्वर्य्ययुक्त करनेमें देवेश्वर महादेवके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष समर्थ होसकता है। दिशा, काल, सूर्य्य, तेज, ग्रह, वायु, चन्द्रमा और नक्षत्रों तथा दैत्योंकी जो परपीड़ा और दूसरेको निग्रह करनेकी सामर्थ है, वह सब ही ईश्वरके वशमें जानना योग्य है; इसलिये परमेश्वर महादेवसे श्रेष्ठ दूसरा कौन प्रभु है। यज्ञ और त्रिपुरासुरकी उत्पत्ति तथा विनाशके विषयमें तथा दैत्य दानवोंके बीच मुख्य मुख्य पुरुषोंके आधिपत्य प्रदान करनेमें शत्रुओंको मर्द्दनेवाले परमेश्वरके सिवा दूसरा और कौन समर्थ होसकता है। हे सुरसत्तम पुरन्दर! जब कि महेश्वरकी कृपासे तुम्हें ही देवताओंमें पूजित देखता हूं; हे कौशिक! महादेवकी कृपासे सिद्ध गन्धर्व्व, देवता और ऋषि लोग जब सहस्राक्षकी पूजा किया करते हैं, तब इस विषयमें अधिक हेतु वादका क्या प्रयोजन है? यह सब कार्य्य महादेवके ही कृपासे होरहा है। हे देवराज! चेतन अचेतन समस्त पदार्थोंमें सर्व्वव्यापक ईश्वरका व्याप्य इदमात्मक सब वस्तुओंसें दिखाई देता है। जो कोई जीव जो कुछ भोग्यवस्तु भोग करता है, वह सब वस्तु महेश्वरसे ही प्राप्त हुई जानो। हे भगवन् इन्द्र! भूर्भुवः स्वः महः प्रभृति सब लोकों लोकालोक पर्व्वतके भीतर, दिव्य स्थानों सुमेरुके बीच, द्वीपस्थानों और चन्द्र सूर्य्य आदिसे युक्त ब्रह्माण्डकी अन्तरालमें तत्वदर्शी पुरुष उस देवोंके देवको बन्दना किया करते हैं।

हे शक्र! देवता और असुर लोग यदि महादेवके समान दूसरी आकृति अवलोकन करते, तो वे लोग तथा असुरकुलके द्वारा अर्द्दित असुर लोग क्या उसके शरणापन्न न होते? यक्ष, राक्षस, सर्प और देवताओंके परस्पर विनाशरूप अभिघातके समय महादेव ही यथायोगत्र स्वस्थानस्वरूप ऐश्वर्य्य प्रदान किया करते हैं। भला कहो तो सही; अन्धक, शुम्भ, दुन्दुभी, महर्षि, यक्ष, इन्द्र, बल, राक्षस और निवात कवचोंको वरदान तथा उनके नाश करनेके विषयमें महेश्वरके सिवाय दूसरा कौन समर्थ होसकता है? किस पुरुषके मुखमें पहले समय सुरासुर गुरुके रेत हुत हुए थे? दूसरे किस पुरुषका इस प्रकार रेत है, जिसके द्वारा हिमगिरि निर्म्मित हुआ है। किसके अर्द्धाङ्गमें कान्ता निवास करती है? किस पुरुषके द्वारा अनङ्ग निर्ज्जित हुआ था? हे देवराज! कहो तो सही! किसकी परम स्थानकी देवता लोग प्रशंसा किया करते हैं? श्मशानके बीच क्रीड़ाके निमित्त नृत्य विषयमें कौन अभिभाषित होता है? किसका ऐश्वर्य्य समान भावसे रहता है? कौन पुरुष भूतगणके सङ्ग क्रीड़ा करता है? देवता लोग किसके बलसे बलवान होके ऐश्वर्य्यका अभिमान किया करते हैं? किसके अचल स्थानको त्रैलोक्यपूजित कहके लोग घोषणा करते हैं? उसके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष जल बर्षाता है? कौन तेजसे प्रज्वलित होता है? किसके द्वारा ओषधि सम्पत्ति हुआ करती हैं? कौन वसुको धारण करता है? स्थावर जङ्गमात्मक तीनों लोकके बीच कौन पुरुष यथेष्ट क्रीड़ा करता है? हे देवराज! ऋषि गन्धर्व्व, सिद्ध और योगी लोग ज्ञानसिद्धि और क्रियायोगके सहारे जिसकी सेवा किया करते हैं, उसे ही कारण जानो। सुरासुरोंसे जो पुरुष कर्म्म योग्य क्रियायोगके निमित्त सेव्यमान होता है, उस कर्म्मफल रहितको ही मैं कारण

कहा करता हूं। स्थूल, सूक्ष्म, अनुपम, अज्ञेय, गुणगोचर, गुणहीन, और गुणाध्यक्ष महेश्वर पद ही परमपद है। जो स्थिति और उत्पत्तिका कारण है, जो सब लोकोंका कारण है, जो वर्त्तमान, भूत और भविष्यको जानने-वाला तथा सबका कारण है; जो अक्षय, चर और अव्यक्त है, जिससे विद्या, अविद्या, कृता-कृत, धर्म, प्रवर्त्तित होते हैं,—हे देवराज! मैं उसको ही कारण कहा करता हूं। हे देव-राज! सृष्टि और संहारके हेतु देवोंके देव रुद्रके द्वारा भगाङ्कित लिङ्ग इस समय प्रत्यक्ष अवलो-कन करो। हे शक्र! पहले माताने मुझसे कहा था, "लोक कारण महेश्वर सबके ही कारण हैं, महादेवसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, इसलिये यदि इच्छा हो, तो उनकी शरणमें जाओ।" हे सुरेश्वर! यह भी तुम्हें प्रत्यक्ष मालूम है, कि सविकार निर्गुण गुणयुक्त तीनों लोक, जो कि ब्रह्मादि रेतसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है, वह योनिसंयोग विशिष्ट लिङ्गसे उत्पन्न है; क्योंकि ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि और विष्णुके सहित सब देवता, दैत्य और राक्षस लोग सहस्रों कामनासे हन्दित बुद्धि होकर भी जिससे बढ़के दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसा कहा करते हैं, वह चराचरोंमें विदित विख्यात् देवोत्तम कल्याण दाता महादेवको मैं कामार्थी और सावधान चित्त होकर मोक्षके निमित्त प्रार्थना किया करता हूं। अन्यान्य युक्तियोंका क्या प्रयोजन है? ईश्वर ही सब कारणोंका कारण है, देवताओंके द्वारा दूसरेके लिङ्गका पूजित होना मैंने कभी नहीं सुना। महेश्व-रको छोड़के देवता लोग दूसरे किसी देवताके लिंगकी पूजा करते वा किये हों,—उसे यदि तुमने सुना हो, तो वर्णन करो। ब्रह्मा, विष्णु और समस्त देवताओंके सहित तुम भी सदा जिसके लिङ्गकी पूजा किया करते हो, उससे बढ़के और इष्ट दूसरा कौन है? इसलिये वही सब लोगोंका आत्यन्तिक इष्ट है। जब कि प्रजासमूह पद्म चिन्ह, चक्रचिन्ह और वज्रचि-न्हसे युक्त नहीं है, केवल लिङ्ग हैं, चिन्हित और योनिचिन्हित हुई है, तब अवश्य ही वह महे-श्वर सम्बन्धीय हैं। देवीके कारणरूप भावज-नित समस्त स्त्रियें योनिचिन्हसे युक्त और सब पुरुष महादेवके लिंगके द्वारा प्रत्यक्ष चिन्हित होरहे हैं। जो दुर्बुद्धि मनुष्य ईश्वरके अतिरिक्त दूसरेको कारण कहता है, तथा जो देवी चिन्हसे अङ्कित नहीं है, उसे कारण कहता है वह पुरुष चराचरयुक्त तीनों लोकसे बाहर हुआ करता है। पल्लिंगमात्र ही महादेव और स्त्रीलिंगमात्रको ही भगवती जानो; स्त्री-पुरुष, इन दो शरीरोंके द्वारा स्थावर जंगमात्मक यह जगत् व्याप्त होरहा है।

हे बलनिसूदन सुरराज! मैं उस ही महे-श्वरसे वर अथवा मृत्युकी कामना करता हूं। तुम इच्छानुसार गमन करो अथवा निवास करो। मेरी यह अभिलाषा है, कि महेश्वरके द्वारा मुझे वर मिले अथवा शाप ही प्राप्त होवे परन्तु दूसरे देवताओंके सर्व्वकाम फलप्रद होने-पर भी मैं उनकी आकांक्षा नहीं करता। देव-राजसे ऐसा कहके मैं दुःखपूर्व्वक व्याकुलेन्द्रिय हुआ; महादेव किस लिये मुझपर प्रसन्न नहीं होते हैं, ऐसी ही चिन्ता करके क्षणभरके बीच फिर उस ही ऐरावतको हंसकुन्द और इन्दुस-दृश मृणाल और रजत समान प्रकाशमान साक्षात् क्षीरसागरकी भांति वृषरूपधारी देखा उस महाकाय वृषकी पूंछ कृष्णवर्ण थी, नेत्र मधुकी भांति पिंगल वर्ण थे। वह वृषभ तपाये हुए सुवर्ण समान प्रकाशमान, उत्तम तीखे, मृदु और रक्ताग्र वज्र सारमय था, शृंगसे मानो पृथ्वीको विदीर्ण करता था; वह वृष सुवर्णके बने हुए दावेंसे सब प्रकार अलंकृत था, उसके मुख, कान, नासिका, कटि, कोखे अत्यन्त सुन्दर थे, कन्धा विशाल था। उस सुन्दर

मनोहर वृषभका कुकुद स्कन्धपूरण करके अधिष्ठित था। देवोंके देव भगवान महादेव उमादेवीके सहित उस सिताग्र शिखर तथा तुषार गिरिकूट सदृश बैलपर चढ़के पौर्णमासीकी रात्रिके चन्द्रमाकी भांति शोभित हुए थे। उनके शरीरकी तेज बादलयुक्त अग्नि तथा सहस्र सूर्य्य समान आभा सब दिशाओंमें व्याप्त होरही थी। उस समय ईश्वरका तेज प्रलयकालके सम्वर्त्तक अनलकी भांति मानो सब भूतोंको जलानेका इच्छुक होकर उदित हुआ। उस समय दशों दिशा उसके तेजसे व्याप्त होकर दुर्निरीच्य होगई। मैं उद्विग्नचित्त होकर चिन्ता करने लगा, कि यह क्या है? इतने ही समयमें जो तेज दशों दिशामें व्याप्त हुआ था, महादेवकी मायाके प्रभावसे मुहूर्त्तकालके बीचमें सब दिशाओंमें प्रशान्त हुआ।

अनन्तर मैं धूमरहित अग्निकी भांति सौम्यदर्शन मनोहर सर्व्वाङ्गी पार्व्वतीके सहित सौरभेय बैलपर स्थित नीलकण्ठ महानुभाव अशक्त तेजके निधि अष्टादश भुज सब आभूषणोंसे भूषित सफेद अम्बर और श्वेतमालाधारी, सफेद ध्वजा, अनावृष्ट शुक्लयज्ञोपवीती भगवान स्थाणु महेश्वर परमेश्वरका दर्शन किया। वह आत्मतुल्य पराक्रम, नृत्य, गीत और बाजा बजानेवाले दिव्य अनुचरोंके द्वारा सब भांतिसे परिवृत्त थे, बालेन्दु मुकुटवाले पाण्डुरवर्ण देव मानो शरच्चन्द्रकी भांति उदित हुए। तीन उदित सूर्य्योंकी भांति उनके तीनों नेत्र प्रकाशमान थे। उस देवके सितप्रभायुक्त शरीरमें सुवर्णमय पद्मके द्वारा ग्रथित रत्नभूषित माला थी। हे गोबिन्द! मैंने अमित तेजस्वी महेश्वरके सर्व्वतेजोमय मूर्त्तिमान अस्त्रोंको अवलोकन किया। उस महात्माकी इन्द्रायुध समान वर्णवाला धनुष जो पिनाक नामसे बिख्यात् है, मैंने देखा, कि वह सातसिर महाकाय तीक्ष्णदन्त बिषोल्वणज्या-वेष्टित महाग्रीव पुरुषविग्रह महान् पन्नगरूपसे स्थित है; और प्रलयकालकी अग्नि तथा सूर्य्यके समान प्रकाशमान जो बाण निरीक्षण किया। उसहीका नाम दिव्य महत् पाशुपत अस्त्र है, वह अद्वितीय, अनिर्देश्य, सर्व्वभूत भयावह महाकाय है और मानो अङ्गारके सहित अग्नि बिसर्ज्जन कर रहा था। वह एक चरणवाला महादंष्ट्र सहस्रशिर, सदृश उदर, सहस्रभुज, सहस्र जिह्वा और सहस्राक्षरूपसे अग्नि उद्गीरण कर रहा था। हे महाबाहो! वह ब्राह्म, नारायण ऐन्द्रेय आग्नेय और वारुण अस्त्रसे श्रेष्ठ और सर्व्वशस्त्र बिघातक था। हे गोबिन्द! महादेवने लीलाके क्रमसे एक मात्र जिस बाणके सहारे उस त्रिपुरको जलाके भस्मीभूत किया था, वही अस्त्र यदि महादेवकी भुजासे छूटे तो अर्द्ध निमेषमें चराचर सहित त्रिलोकके सहित समस्त जगत्को निःसन्देह भस्म करे। इस लोकमें ब्रह्मा, बिष्णु आदि देवताओंके बीच जिससे कोई भी अवध्य नहीं है। हे तात! मैंने उस आश्चर्य और अद्भुत अस्त्रको देखा था, उसके समान अथवा उससे श्रेष्ठ गुह्यतर और एक दूसरा परम अस्त्र देखा, जो कि सब लोकोंमें महादेवका त्रिशूल कहके बिख्यात है। वह महादेवके हाथसे छूटनेपर स्वर्ग तथा समस्त पृथ्वीमण्डलको बिदारण, समुद्रको शोषण और समस्त जगत्को नष्ट कर सकता है। पहले समयमें जिस शूलके लवण राक्षसके हाथमें स्थित होनेपर युवनाश्व और त्रिलोकविजयी महातेजस्वी बलवान इन्द्रके समान पराक्रमी चक्रवर्त्ती राजा मान्धाता सेनाके सहित मारे गये थे। अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाला भयङ्कर वह लोमहर्षण शूल, त्रिशिखा भृकुटी करके तर्ज्जन करते हुए स्थित था। हे कृष्ण! प्रलयकालके सूर्य्यकी भांति उदित उस बिधूम अर्चियुक्त अनिर्द्देश्य पाशधारी अन्तक समान सर्प उस अस्त्रको मैंने रुद्रके निकट देखा। हे गोबिन्द!

इसके अतिरिक्त पहिले महादेवने प्रसन्न होके रामको जो क्षत्रियोंका नाशक तीक्ष्ण धारवाला परशु प्रदान किया था, जिसके द्वारा महासंग्राममें चक्रवर्त्ती राजा कार्त्तवीर्य्य मारा गया, उसे भी मैंने उनके निकट देखा। हे गोविन्द! अक्लिष्टकर्म्मा जामदग्न्य रामने जिसके सहारे इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया था, वह तीक्ष्णधारवाला रौद्रमुख सर्प-कण्ठाग्रमें अधिष्ठित जलती हुई अग्निकी शिखा समान परशु महादेवके समीप था। हे अनघ! उस धीमान्‌के निकट और भी अनगिनत अस्त्र थे, मुख्य करके तुमसे मैंने इन तीन अस्त्रोंका विषय वर्णन किया है। उस देवके दाहिनी ओर लोक पितामह ब्रह्मा हंसयुक्त मनोजव दिव्य बिमानमें स्थित थे, बाईं ओर शंख चक्र गदाधारी नारायण गरुड़पर चढ़के बिराजमान थे। देवीके निकट द्वितीय अग्निकी भांति स्कन्द शक्ति और घण्टा धारण करके मयूरपर निवास करते थे। महादेवके सम्मुख द्वितीय शङ्करकी भांति शूल ग्रहण करके खड़े हुए नन्दीको देखा। स्वायम्भुव आदि मुनि, भृगु आदि ऋषि और इन्द्र आदि सब देवता उस स्थानमें उपस्थित थे। समस्त भूत और बिबिध मातृकागण उस महात्माको सब प्रकारसे घेरके और प्रणाम करके स्थित थी। देवताओंने उस समय बिबिध स्तोत्रोंसे महादेवकी स्तुति की थी; अनन्तर ब्रह्मा रथन्तर साम उच्चारण करते हुए महेश्वरकी स्तुति करने लगे। नारायणने देवेश्वरकी अत्यन्त प्रसन्न करनेके लिये जेष्ठ साम गान किया। देवराज उत्कृष्ट शतरुद्रिका पाठ करते हुए परब्रह्मकी स्तुति करने लगे। ब्रह्मा, नारायण और देवराज कौशिक, ये तीनों महानुभाव तीनों अग्निकी भांति शोभित हुए। देवोंके देव भगवान् महेश्वर बीचमें शरदकालके बादलोंसे रहित सूर्य्यकी भांति बिराजमान थे। हे केशव! उस समय मैंने आकाश मण्डलमें दश सहस्रके परिमाणसे चन्द्रमा और सूर्य्य देखे। अनन्तर मैं समस्त जगत्के प्रभु महादेवकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुआ।

उपमन्यु बोले, तुम देवादिदेव हो इसलिये तुम्हें नमस्कार है; तुम शक्ररूप, शक्र, शक्रवेषधारी महादेव हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम कृष्णवासा, कृष्णकुञ्चित केश, कृष्णाजिन बस्त्रधारी, कृष्णाष्टमीरत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम शुक्लवर्ण, शुक्ल, शुक्लाम्बरधर, श्वेतभस्मधारी और शुक्ल कर्म्ममें रत हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम रक्तवर्ण रक्ताम्बरधारी, रक्तध्वज पताका और .लालमालाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम पीताम्बरधारी, पीतवर्ण ध्वजा पताकायुक्त और पीली माला धारण करनेवाले हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम उच्छ्रितच्छत्र, किरीटवरधारी, अर्द्धहार, अर्द्धकेयूर और अर्द्ध-कुण्डलकर्णी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम ही वायुवेग हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है; हे देव! तुम्हें नमस्कार है; तुम सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और महेन्द्र हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम उत्पल मिश्रित, पद्मार्द्ध-मालाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम अर्द्धचन्दन लिप्त, अर्द्धमाल्य अनुलेपी आदित्य वक्त्र, आदित्यतनय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम आदित्य वर्ण, आदित्यप्रतिम हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम सोम, सोमवक्त्रधर, सौम्यरूप मुख, सोमदन्त बिभूषित हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम श्याम गौर, अर्द्धपीत और पाण्डुवर्ण हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; नर नारीरूप, स्त्री-पुरुष स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम वृषभ-वाहन, गजेन्द्रगमन, दुर्गम और अगम्य गमन हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम गणगीत, गणवृन्द रत, गणानुजात मार्ग और गणनित्यव्रत हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम श्वेताद्र वर्ण, सन्ध्यारागप्रभ, अनुद्दिष्टाभिधान स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है;

तुम रक्ताग्रबासा, रक्तसूत्रधर, लालमाला विचित्र, रक्ताम्बरधारी, मणिभूषितमूर्द्धा और अर्द्धचन्द्र भूषित हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम विचित्र मणिमण्डित मस्तकपर अष्टकुसुमधारी, अग्निमुख, अग्निनेत्र और सहस्र शशिनेत्र हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम अग्निरूप कान्त ग्रहण हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम खेचर और गोचराभिरत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम भूचर भुवन, अनन्त, शिव, दिगम्बर, पुष्पादि गन्धबासित और उत्तम वस्त्र धारी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम जगन्निवास, ज्ञान और सुखस्वरूप हो, सदा उद्दृसमुकुट, महाकेयूरधारी सर्व्वकण्ठोपहार, विचित्र आभूषण, लोकयात्रा निर्व्वाहक अग्नि-सूर्य्य चन्द्र रूप तीनों नेत्रोंके नेत्रस्वरूप और सहस्र शतलोचन हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम स्त्री-पुरुष और नपुंसक हो, तुम ही सांख्य योगी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम शम्भुसंज्ञक, यज्ञपाड़ गुण्यकर्वी, देवताओंके प्रसादस्वरूप हो, अथवा तुम सर्व्वार्त्ति नाशकर और शोक हरनेवाले हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम ही बादलोंके बीच गर्ज्जना शब्द और बहु मायाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम बीजपाल, चेत्रपाल और स्रष्टा हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम सब देवताओंके ईश और विश्वेश्वर हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम पवनवेग, पवनरूपी, काञ्चनमाला और गिरिमाल अर्थात् पर्व्वतके बीच क्रीड़ापरायण हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम सुरारिमाल चण्डवेग, ब्रह्माके सिरको हरनेवाले और महिषघ्न हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम मेघनिनाद, बहुमायाधारी हो; इससे तुम्हें नमस्कार है; त्रिमूर्त्तिधारी, सर्व्वरूपधारी, त्रिपुरहर और यज्ञविध्वंशकारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम कामाङ्गनाशक, कालदण्डधारी, स्कन्दविशाख और ब्रह्मदण्ड हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम भव, सर्व्व, विश्वरूप, ईशान, भवघ्न और अन्धकान्तक हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम विश्वमायावी, चिन्त, अचिन्त्य हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम हमारे लिये श्रेष्ठ तथा गतिस्वरूप हो, तुम ही हम लोगोंके हृदयस्वरूप हो, तुम सब देवताओंके बीच ब्रह्मा, रुद्रगणोंके बीच नीललोहित सर्व्व प्राणियोंकी आत्मा और सांख्ययोगमें पुरुषरूपसे वर्णित हुआ करते हो; तुम पवित्र लोगोंके बीच ऋषभ, योगियोंमें निष्कल शिव, आश्रमी पुरुषोंमें गृहस्थ और ईश्वरोंमें महेश्वर हो; तुम यक्षोंके बीच कुवेर हो, यज्ञोंमें विष्णु कहके वर्णित होते हो, तुम पर्व्वतोंमें मेरु और नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमा हो, ऋषियोंमें वसिष्ठ और ग्रहोंके बीच सूर्य्य कहके अभिहित हुआ करते हो; तुम जङ्गली पशुओंके परम ईश्वर हो सिंह और ग्रामवासी पशुओंके बीच लोकपूजित गऊ वृषभस्वरूप हो, तुम आदित्योंके बीच विष्णु बसुओंमें अग्नि, पक्षियोंमें गरुड़, सर्प्पोंके बीच अनन्त, वेदोंमें सामवेद, यजुर्व्वेदके बीच शतरुद्रीय, योगियोंमें सनत्कुमार और सांख्योंके बीच कपिलस्वरूप हो। हे देव! तुम देवताओंके इन्द्र तथा पितरोंके देवराज हो, तुम लोकोंके बीच ब्रह्मलोक और गतियोंके बीच मोक्षरूपसे वर्णित हुआ करते हो। तुम समुद्रोंमें क्षीरसागर, पर्व्वतोंके बीच हिमालय, वर्णोंमें ब्राह्मण, विप्रोंके बीच विद्वान् ब्राह्मण हो; तुम सब लोकोंके आदिकर्त्ता और कालक्रमसे संहर्त्ता हो; लोकमें जो कुछ अधिक तेजसे युक्त वस्तु दीख पड़ती है, वह सब ही भगवानका स्वरूप है,—ऐसा ही मेरी बुद्धिमें निश्चय हुआ है। हे भगवन्! हे देव! तुम्हें नमस्कार है; हे भक्तवत्सल! तुम्हें प्रणाम है; हे योगीश्वर! तुम्हें नमस्कार है। हे जगत्की सृष्टि करनेवाले तुम्हें प्रणाम करता हूं; मैं दीन कृपण तुम्हारा भक्त हूं, आप मुझपर प्रसन्न होइये। हे सनातन!

इस अनेश्वर्य्ययुक्त भक्तके पति छोड़दी। हे परमेश्वर! हे देवेश! मैंने अज्ञानके वशमें होकर जो कुछ अपराध किया है, आपको मुझे अपना भक्त समझकर उन अपराधोंको क्षमा करना उचित है। हे देवेश्वर! मैं तुम्हारे रूपविपर्य्यय वशसे मोहित हुआ था, इसही निमित्त मैं तुम्हें पाद्य अर्घ प्रदान नहीं कर सका। इस ही प्रकार मैंने महादेवको स्तुति करके भक्ति भावसे हाथ जोड़के पाद्य अर्घ आदि प्रदान किया। हे तात! अनन्तर मेरे शिरपर शीतल जलसे पूरित दिव्य गन्धयुक्त शुभ पुष्पवृष्टि होने लगी। देवताओंके सेवक दिव्य दुन्दुभी बजाने लगे। पवित्र गन्धवाला सुखदायक पुण्यजनक वायु बहने लगी। उसके अनन्तर सपत्नीक वृषभध्वज महादेव प्रसन्न होकर उस समय मानो मुझे हर्षित करते हुए देवताओंसे बोले, हे देव वृन्द! मेरे विषयमें महात्मा उपमन्युकी एकाग्र भावसे स्थित परम भक्ति अवलोकन करो।

हे कृष्ण! जब शूलपाणि देवताओंसे ऐसा कहा, तब वे लोग हाथ जोड़के वृषभध्वजको नमस्कार करके बोले, हे भगवन्! हे देवदेवेश जगत्पति लोकनाथ! यह द्विजवर आपके निकटसे सब काम्यमान फल लाभ करें। भगवान् शङ्कर ब्रह्मा प्रभृति देवताओंका ऐसा वचन सुनके हंसकर मुझसे कहने लगे।

भगवान् बोले, हे पुत्र मुनि पुङ्गव उपमन्यु! मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम मेरा दर्शन करो। हे विप्रर्षि! तुम मेरे दृढ़ भक्त हो, इस ही निमित्त मैं तुमसे पूछता हूं। तुम्हारी भक्तिके वशमें होकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं, इसलिये इस समय तुम्हारी जो कुछ अभिलाष होगी, उन सब काम्य विषयोंको प्रदान करूंगा। धीमान् महादेवका ऐसा वचन सुनके हर्षपूर्व्वक मेरे नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे और रोएं खड़े होगये। उस समय मैं दोनों जानु पृथ्वीपर स्थापितकर उस देवको बार बार प्रणाम करके हर्षित होकर गद्गद वचनसे कहने लगा, कि जब सुरासुर गुरु महादेव मेरे अगाड़ी निवास करते हैं, तब आज मेरा जन्म ग्रहण करना सफल हुआ। देवता लोग आराधना करके भी जिस देवेश्वरका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते मैंने उसका दर्शन किया; इसलिये मेरे समान और कौन धन्य पुरुष है? विद्वान् लोग इस ही सम्मुखवर्त्ती मूर्त्तिरूप सनातन परम तत्त्वका ध्यान किया करते हैं। यह मूर्त्ति ही देवान्तर अपेक्षा विशिष्ट मूर्त्ति होके भी नित्य अक्षर उत्पत्तिरहित ज्ञान स्वरूपसे विख्यात् है। यह वही भगवान् सत्त्वादि अव्यय देव, सर्व्वतत्त्व विधानज्ञ-प्रधान परम पुरुष है, जिसने दक्षिण अङ्गसे लोक-विधाता पितामहको और वाम-अंगसे लोकरक्षाके निमित्त विष्णुको उत्पन्न किया है और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर ईश्वर रुद्रको उत्पन्न करता है, वही रुद्र स्थावर जंगममय समस्त जगत्को संहार करते हुए सम्वर्त्तक अग्निकी भांति महा तेजस्वी काल स्वरूपसे युगके अन्तमें सब भूतोंको ग्रास करके स्थित होता है। यह महादेव सचराचर जगत्की सृष्टि करता और कल्पान्तमें सबकी स्मृति लोप करके निवास करता है। यही सर्व्वग, सर्व्वभूतात्मा, सर्व्वभूत, प्रभवोद्भव, सदा सर्व्वगत होके भी सब देवताओंको नहीं दीख पड़ता। हे देव! हे सुरेश्वर! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हुए हो और मुझे वरदान करना उचित समझते हो, तो मैं यही वर मांगता हूं, कि तुम्हारे ऊपर मेरी सदा भक्ति बनी रहे। हे विभु! हे सुरसत्तम! भूत, वर्त्तमान और जो कुछ भविष्य विषय हैं, उसे मैं तुम्हारी कृपासे जान सकूं, यही मेरी प्रार्थना है और मैं बान्धवोंके सहित अक्षय क्षीरोदन भोजन करूं तथा मेरे आश्रमके निकट आपका निवास रहे। लोक पूजित चराचर गुरु महातेजस्वी भगवान् महेश्वर मेरी ऐसी प्रार्थना सुनके मुझसे बोले।

भगवान् बोले, हे द्विजवर ! तुम मेरी कृपासे अजर अमर दुःख रहित, यशस्वी और दिव्य ज्ञानसे संयुक्त होकर ऋषियोंमें आदरणीय होगे। तुम शीलवान् गुणवान्, सर्व्वज्ञ और प्रियदर्शन होगे। तुम्हारा अग्निके समान तेज और यौवन अक्षय होवे। तुम जिस स्थानको प्रिय समझोगे, उस ही स्थानमें तुम्हारी इच्छाके अनुसार चीरोदसागर निकटवर्त्ती होगा, तुम बान्धवोंके सहित अमृत समान चीरोदन भक्षण करो। अनन्तर कल्पान्तकालमें मेरे निकट गमन करोगे। हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे बान्धवोंका कुल और गोत्र सदा अक्षय होगा और मुझमें तुम्हारी शाश्वती भक्ति रहेगी। हे द्विजोत्तम ! मैं सदा तुम्हारे आश्रमके निकट रहूंगा। हे पुत्र ! तुम इच्छानुसार निवास करो, उत्कण्ठित न होना। पनर्व्वार स्मरण करनेसे भी मैं तुम्हें दर्शन दूंगा। कोटिसूर्य्य समान प्रकाशसे युक्त भगवान ईशान ऐसा कहके वरदान देकर उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये।

हे कृष्ण ! इस ही प्रकार समाधिके द्वारा मैंने देवोंके देव महादेवका दर्शन किया था। उन्होंने जो कुछ कहा था, मुझे वह सब प्राप्त हुआ है। हे कृष्ण ! प्रत्यक्ष देखो ; सिद्ध, ऋषि, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व्व और अप्सरावृन्द स्थित हैं। सर्व्वपुष्प फलप्रद वृक्ष, लता और गुल्म अवलोकन करो, ये सब ऋतुओंमें ही पुष्प युक्त सुखपत्र और सुगन्धमय होरहे हैं। हे महाबाहो ! महानुभव देवोंके देव ईश्वरकी कृपासे ये सब दिव्य भावसे सम्पन्न हैं।

श्रीकृष्ण बोले, मैंने प्रत्यक्ष दर्शनकी भांति उस महामुनिका वाक्य सुनके अत्यन्त विस्मय युक्त होकर उनसे कहा, हे विप्रेन्द्र ! तुम ही धन्य हो, तुम्हारे अतिरिक्त और पुण्यवान् दूसरा कौन है ? क्यों कि देवोंके देव तुम्हारे आश्रमके निकटवर्त्ती हैं। हे मुनिपुङ्गव ! कल्याणदाता भगवान शङ्कर प्रसन्न होके मुझे भी दर्शन दे सकते हैं ?

उपमन्यु बोले, हे अनघ पुण्डरीकाक्ष ! मैंने जिस प्रकार दर्शन किया था, तुम भी थोड़े ही समयमें उस ही भांति महादेवका दर्शन करोगे। हे अमितविक्रम पुरुषोत्तम ! मैं दिव्य नेत्रके सहारे देखता हूं, कि तुम छठवें महीने महादेवका दर्शन करोगे। हे यदुश्रेष्ठ ! सप्तलोक महादेवके निकट तुम चौबीस वर पाओगे, यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं। हे महाबाहो ! उस महेश्वरके प्रसादसे भूत, वर्त्तमान और भविष्य विषय सदा मुझे विदित होते हैं। हे माधव ! भगवान् भवानीपतिने इन सब तथा दूसरे सहस्रों पुरुषों पर कृपा की है, तब तुम पर कृपा क्यों न करेंगे ? विशेष करके तुम्हारे समान पुरुषके सङ्ग समागम होना देवताओंमें श्लाघनीय है। मैं तुम्हें ब्रह्मण्य अनृशंस और श्रद्धाके सहित जपका फल प्रदान करता हूं, उसहीके द्वारा तुम महादेवका दर्शन करनेमें समर्थ होगे।

विष्णु बोले, मैंने उनसे कहा, हे ब्रह्मन् ! हे महामुनि ! मैं आपकी कृपासे दितिज दलको मर्द्दनेवाले त्रिदशेश्वरका दर्शन करूंगा। हे भारत ! अनन्तर इस ही प्रकार महादेवाश्रित कथा कहते कहते मुहूर्त्तकालकी भांति आठ दिन बीत गया। आठवें दिन मैंने उस विप्रसे विधिपूर्व्वक दीक्षा पाई। दण्डधारी, मुण्डितसिर, कुशचीरधारी और घृताक्त होकर मेखला धारण किया। एक महीनेतक फलाहार करके रहा, दूसरे महीनेमें जल पीके और तीसरे चौथे तथा पांचवें महीनेतक वायु पीके निवास किया। हे भारत ! मैं उर्द्धबाहु और अतिन्द्रिय होकर एक पदसे स्थित था, अनन्तर मैंने आकाशमण्डलमें सहस्र सूर्य्यका तेज अवलोकन किया। हे पाण्डुनन्दन ! उस तेजके बीचमें इन्द्रायुध-पिनद्धाङ्ग विद्युन्माला रूपगवाक्ष समन्वित नीलगिरिके निकट बकपंक्ति विभूषित मेघमण्डल स्थित था। महातेजस्वी भगवान्

महेश्वर देवीके सहित उस ही नीरदमण्डलमें स्थित रहके तपोतेज कान्ति और दीप्यमान उमाके सहित मेघमण्डलमें स्थित चन्द्रमासे युक्त सूर्य्यकी भांति विराजते थे। हे कुन्तीनन्दन! मैंने लोमाञ्चित शरीर और विस्मयोत्फुल्ल नेत्रसे देवताओंकी गति तथा अर्त्तिहर महादेवका दर्शन किया। मैंने देखा, कि ये ही किरीट मण्डित हाथमें लिये हुए, शूलपाणि, बाघाम्बरधारी जटिल दण्डपाणि पिनाकी बज्री तीक्ष्णदन्त शुभाङ्गद व्याल यज्ञोपवीती देव वर्णोंके समाप्तिमें सन्ध्याके सहित घिरे हुए चन्द्रमाकी भांति वक्षःस्थलमें गुल्फ पर्य्यन्त अनेक वर्णकी दिव्यमाला धारण करके निवास करते हैं। शरदकालमें निर्म्मल दुष्प्रेक्ष्य प्रकाशमान सूर्य्यकी भांति भूतगणोंसे सब प्रकार घिरे हुए थे, ग्यारह सौ रुद्रगण मन और कर्म्मसे सदा शुभ कर्म्मशील उस वृषभवाहन महेश्वरकी स्तुति करते थे। आदित्यगण, वसु, साध्य, विश्वदेव और दोनों अश्विनीकुमार विश्वस्तुतिके सहारे उस विशेश्वरकी आराधना करते थे। अदिति-नन्दन इन्द्र, विष्णु और ब्रह्मा महादेवके निकट रथान्तर सामगान करते थे। हे राजन्! बहुतेरे योगीश्वरवृन्द पुत्रोंके सहित ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र, ग्रह, मास, पक्ष, सब ऋतु, रात्रि, सम्वत्सर, क्षर, मुहूर्त्त, निमेष, युगपर्य्याय, दिव्य विद्या और सत्यवित् सब प्राणी उस योगदाता, पिता तथा गुरुको नमस्कार करते थे। सनत्कुमार, समस्त वेद, इतिहास, मरीचि, अङ्गिरा अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु; सप्तमनु, सोम, अथर्व्वा, वृहस्पति, भृगु, दक्ष, काश्यप, वसिष्ठ, काश्य, समस्त छन्द, दीक्षा, यज्ञ, दक्षिणा, अग्नि, हवि, मूर्त्तिमत यज्ञके उपकरण तथा सब सामग्री, समस्त प्रजापालगण, नदियें, पन्नग और नागगण, देवगणोंकी माता, कन्या और समस्त स्त्रियें, सहस्र अयुत और अर्व्वुद संख्यक मुनिवृन्द, पर्व्वत, समुद्र और सब दिशा, गीतवाद्यके जाननेवाले गन्धर्व्व तथा अप्सरागण दिव्य तानके सहित गान करती हुई शान्त विभुभवको प्रणाम और अद्भुतभावसे स्तुति कर रही थीं। हे महाराज! विद्याधर, दानव, गुह्यक, राक्षस और स्थावर जङ्गम समस्त प्राणी वचन मन और कर्म्मसे उस महेश्वरको प्रणाम करते थे; देवेश्वर महादेव मेरे अगाड़ी स्थित थे। हे भारत! मेरे अगाड़ी महादेवको खड़े हुए देखके ब्रह्मा और इन्द्र पर्य्यन्त सब लोग मुझे देखने लगे। उस समय महादेवकी ओर देखनेमें मेरी सामर्थ न हुई। अनन्तर महेश्वर मुझसे बोले, हे "कृष्ण! तुम मेरा दर्शन करो और जो कुछ अभिलाष हो, वह मुझसे कहो; तुमने सैकड़ों सहस्रों बार मेरी आराधना की है, तीनों लोकोंके बीच तुम्हारे समान प्रियपात्र मेरा कोई भी नहीं है।" मैंने जब सिर नीचा करके महादेवकी वन्दना की, तब उमादेवी प्रसन्न हुईं। अनन्तर मैंने ब्रह्मादि देवताओंके स्तवनीय महादेवसे कहा।

विष्णु बोले, हे अपरिणामिन् सर्व्वयोनि शङ्कर! तुम्हें प्रणाम है, ऋषि लोग तुम्हें सब वेदोंके स्तवनीय कहते हैं, साधु लोग तुम्हें ही तप, सत्त्व, रज, तम और सत्यस्वरूप कहा करते हैं। तुम ही ब्रह्मा, रुद्र, वरुण, अग्नि, मनु, भव, धाता (ईश्वर,) त्वष्टा (रूप निर्म्माता) विधाता (धर्म्माधर्म्मरूपी कर्म्मफल देनेवाले) और तुम सर्व्वतोमुख प्रभु हो। स्थावर जङ्गम समस्त प्राणी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, ये चराचरोंके सहित तीन लोक तुमसे प्रकट हुए हैं। इस शरीरमें जो सब इन्द्रियें, मन और प्राण आदि पञ्चवायु हैं, और गार्हपत्य, दक्षिण, आवहनीय, सभ्य, आवसथ्य, ये पांचों श्रौत, छठवीं स्मार्त्त, सातवीं लौकिक, ये सात प्रकारकी अग्नि और देव अर्थात् सूत्रात्मामें जिनकी समाप्ति हुई है, तथा जो स्तुतिके योग्य

देवता हैं, उन सबके नेत्र और वचनसे ऋषि लोग तुम्हें गोचर कहा करते हैं। सब वेद, यज्ञ, सोम दक्षिणाग्नि, हवि तथा जो कुछ यज्ञकी सामग्री हैं, भगवान् ही निःसन्देह उन सबके स्वरूप हैं। इष्टदत्त अधीन व्रत, नियम, लज्जा, कीर्त्ति, श्री, द्युति, तुष्टि और सिद्धि, ये सभी तुम्हारे स्वरूप प्राप्तिके कारण हैं। हे भगवन्! काम, क्रोध, भय, लोभ, मद, स्तम्भ, मत्सरता, आधि और व्याधि, ये सब तुम्हारे पुत्र हैं। क्रिया विकार अर्थात् क्रिया फलभूत हर्ष आदि उसके भाव प्रबल बासनाबीज प्रधान मनकी परमयोनि शाश्वत प्रभाव अज्ञान अव्यक्त पवन अचिन्त्यचित्तमें ज्योतिरूपी सूर्य्य तथा अव्यक्त तत्वोंकी आदि हो, आप ही उन सबके जीविताश्रय अर्थात् नदियोंके निमित्त समुद्रकी भांति प्राप्य स्थान; महान् आत्मा, मति, ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, स्वयम्भु, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, संवित्ख्याति, धृति, स्मृति, आदि पर्य्यायवाचक शब्दोंके द्वारा वेदार्थ जाननेवाले पुरुषोंसे तुम ही वेदमें महान् आत्मा कहके वर्णित हुआ करते हो। विद्वान् ब्राह्मण लोग तुम्हें जानके मोहजनक अज्ञान निवारण करते हैं। तुम सब प्राणियोंके हृदयमें बास करनेवाले क्षेत्रज्ञ और मन्त्रोंके स्तवनीय हो। तुम्हारे पाणि और पादका अन्त सर्व्वत्र विद्यमान है। तुम्हारे नेत्र, सिर और मुख सब ठौर बिराजमान है; तुम सर्व्वत्र श्रुतिमान होकर सारे जगत्‌को परिपूर्ण कर रहे हो, तुम ही सूर्य्यकी प्रभा तथा किरण और निमेष आदि कर्म्मोंके फल हो, तुम सबके हृदयस्थ पुरुष हो। तुम अणिमा (दुर्लक्ष्यत-मात्र) हो, तुम लघिमा (विविध परिच्छेदसे रहित) हो, तुम प्राप्तिस्वरूप ईशान और अव्यय ज्योति हो, तुममें बुद्धि, मति और समस्त लोक स्थित होरहे हैं। जो लोग ध्यान-निष्ट नित्ययोगमें रत सत्यसन्ध और जितेन्द्रिय हैं, वे तुममें ही संश्रित होरहे हैं। जो तुम्हें निश्चल गुहाशय प्रभु पुराण, पुरुष विशिष्टानुभव स्वरूप निष्कलतृप्ति मात्र हिरण्यमय और बुद्धिमान पुरुषोंकी परम गतिको जानते हैं, अथवा जानके शिष्योंको जनाते हैं, वे महा बुद्धिमान पुरुष बुद्धिको अतिक्रम करके निवास किया करते हैं। विद्वान् पुरुष सातों सूक्ष्म विषयों अर्थात् महत् अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्र और षडङ्ग अर्थात् सर्व्वज्ञता, तृप्ति, अनादि, बोध, स्वतन्त्रता, नित्य, अलुप्तशक्ति और अत्यन्त शक्तियुक्त तुम्हें मूर्त्तिमान रूपसे जानके और चित्तसत्वके आत्मा भिन्नत्व रूपसे ज्ञापनरूपो विधिके अनुसार योगयुक्त होकर तुममें ही प्रवेश करते हैं। हे पार्थ! आर्त्ति विनाशन महादेवसे जब मैंने ऐसा कहा, उस समय चरा-चरोंसे युक्त समस्त जगत् सिंहनाद करने लगा। उस समय ब्राह्मण, देवता, असुर, सर्प, पिशाच, पितर, पक्षीवृन्द राक्षसों, समस्त प्राणियों तथा महर्षियोंने उन्हें प्रणाम किया। मेरे सिरपर दिव्य सुगन्धियुक्त फूलोंको वर्षा हुई, और महा सुखस्पर्श वायु बहने लगा। जगद्धित कर भगवान शङ्कर और उमादेवी, मुझे और इन्द्रको देखके स्वयं मुझसे कहने लगे। हे शत्रुनिसूदन कृष्ण! यह मैं जानता हूं कि मुझपर तुम्हारी परमभक्ति है, तुम अपना कल्याण साधन करो, तुमपर मेरी परम प्रीति उत्पन्न हुई है। हे सत्तम कृष्ण! तुम वर मांगो मैं तुम्हें आठ वर दूंगा। हे यादवश्रेष्ठ! तुम जिन सब दुर्लभ वरोंके निमित्त इच्छा करते हो उन्हें मांगो।

१४ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, अनन्तर मैंने परम हर्षसे सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया और तेजपुञ्जसे स्थित भगवान्‌से कहा। हे भगवन्! मैं धर्म्ममें दृढ़बन्धन, युद्धमें शत्रुहनन, श्रेष्ठ यश, अत्यन्त बल, योगके सहित प्रियत्व और सैकड़ों पुत्र

पानेके लिये आपके निकट प्रार्थना करता हूं। महादेव मेरी ऐसी प्रार्थना सुनके बोले, "ऐसा ही होवे।" अनन्तर जगन्माता सर्व्वधारिणी सर्व्वपावनी तपस्याकी निधि सर्व्वाणी उमादेवीने मुझसे कहा, हे पापरहित कृष्ण! भगवानने तुम्हें शाम्ब नामक पुत्र प्रदान किया। अब तुम निज अभिलषित आठ वर मुझसे मांगो, मैं तुम्हें वर देती हूं। हे पाण्डुनन्दन! मैंने उस समय सिर झुकाके देवीको प्रणाम करके कहा, हे माता! ब्राह्मणोंके विषयमें अक्रोध पिताकी प्रसन्नता, शतपुत्र, परम भोग, कुलमें प्रीति माताकी कृपा, शमप्राप्ति और दक्षताकी मैं प्रार्थना करता हूं।

उमा बोली, हे परमप्रभाव! तुमने जो वर मांगा वह तुम्हें प्राप्त होगा; इसके अतिरिक्त मैं और भी आठ वर देती हूं, मैं कदापि मिथ्या नहीं कहती इसलिये तुम भी महाप्रभावयुक्त होगे और मिथ्या न कहोगे, तुम्हारे सोलह हजार भार्य्या होंगी, उनपर तुम्हारा प्रियत्व और धनधान्य आदिका अक्षयत्व रहेगा, तुम बान्धवोंके निकट परम प्रीति प्राप्त करोगे; तुम्हारे शरीरकी कमनीयता होगी और तुम्हारे गृहमें प्रतिदिन सत्तर सौ अतिथि भोजन करेंगे, मैंने तुम्हें यह आठ वर और प्रदान किया।

श्रीकृष्ण बोले, हे भीमाग्रज भारत! महादेव और देवी इस ही प्रकार चौबीस वर देके उस ही समय निजगणके सहित अन्तर्द्धान हुए। हे नृपवर! यह अत्यन्त अद्भुत समस्त विषय पहले मैंने ब्राह्मणश्रेष्ठ तेजस्वी उपमन्युके समीप वर्णन किया। हे सुव्रत! उन्होंने महादेवको नमस्कार करके कहा।

उपमन्यु बोले, महादेवके समान देवता नहीं है, न महादेवके समान गति है, दानविषयमें महादेवके समान कोई नहीं है और न कोई पुरुष संग्राममें ही महादेवके समान है।

१५ अध्याय समाप्त।

उपमन्यु बोले, हे तात! सत्ययुगमें तण्डि नामसे विख्यात् एक ऋषि था, उस भक्तने दश हजार वर्षतक ध्यान योगके सहारे एकाग्र होकर महादेवकी आराधना की थी, तपस्या पूर्ण होनेपर उन्हें जो फल प्राप्त हुआ उसे सुनो, उन्होंने विभु महादेवका दर्शन करके स्तुतियुक्त वचनसे उनका स्तव किया था, तण्डि मुनि तपोयोग निबन्धनसे अव्यय महात्मा परमात्माका इस ही प्रकार ध्यान करके अत्यन्त विस्मय युक्त होकर यह वक्ष्यमाण वचन बोले, सांख्यवादी लोग जिस परमप्रधान पुरुष अधिष्ठाता ईश्वरकी स्तुति किया करते हैं, योगीजन जिसका सदा ध्यान करते हैं, ज्ञानी लोग जिसे उत्पत्ति और विनाशका कारण कहते हैं; देवता, असुर और मुनियोंके बीच जिससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, मैं उस जन्मरहित अनादि निदान सर्व्व शक्तिमान अत्यन्त सुखी पापरहित रुद्रदेवका शरणागत होता हूं। तण्डि मुनिने ऐसा वचन कहते कहते उस अव्यय तपोनिधि अनुपम अचिन्तनीय शाश्वत कूटस्थ निष्कल और निर्गुण गुणगोचर ब्रह्मका दर्शन किया। वही योगियोंका परम आनन्द अविनाशी और मोक्ष संज्ञित है; वही मनु, इन्द्र अग्नि, वायु, जगत् और देवताओंका अवलम्ब है। वह अग्राह्य अचल, शुद्ध बुद्धिसे मालूम होने योग्य और मनोमय है। वह दुर्व्विज्ञेय असंख्येय और अकृतात्म लोगोंको दुष्प्राप्य है; वह समस्त जगत्की योनि है, तमोगुणके परे स्थित पुराण पुरुष और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ देवता है, जो आत्माको प्राणविशिष्ट करके उसमें आवृत जीव तथा मनोरूप ज्योति स्वरूपसे स्थित रहता है, उस ही देवके दर्शनकी इच्छा करके तण्डि ऋषि अनेक वर्ष पर्य्यन्त उग्रतपस्या करनेके अनन्तर ईश्वरका दर्शन करके स्तुति करने लगे।

तण्डि बोले, हे मतिमताम्बर! तुम गङ्गा आदि पवित्र पदार्थोंसे भी पवित्र और श्रेष्ठ-

गति हो, नेत्र आदि तेजस्वी पदार्थोंके तेज अर्थात् प्रकाशक और समस्त तपस्याकी भी परम तपस्या हो। तुम विश्वावसु हिरण्याक्ष और पुरुहूतके नमस्कार हो; हे मोक्षदाता विभु! तुम परम सत्य हो इससे तुम्हें प्रणाम है। हे विभु! तुम जन्म मरण-भीरु यतमान यतियोंके निर्व्वाणदाता हो। हे सहस्रांशु! हे सुखाश्रय। तुम्हें प्रणाम है। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वदेव और महर्षि लोग तुम्हें यथार्थ रूपसे नहीं जानते तब मैं तुम्हें किस प्रकार जान सकूंगा? तुमसे ही जगत् उत्पन्न होता और उत्पन्न होके तुमहीमें प्रतिष्ठित रहता है। तुम हो काल, तुम ही पुरुष और तुम ही ब्रह्म हो। पुराण जाननेवाले देवर्षि लोग तुम्हारा कालाख्य, पुरुषाख्य और ब्रह्माख्य अथवा ब्रह्मा विष्णु और रुद्राख्य इन तीनों रूपोंको स्मरण किया करते हैं। शिरश्चरणादि मान देह पर अधिकार करके जो विज्ञान प्रवृत्त होता है, तुम ही वह अपिपौरुष विज्ञान स्वरूप हो; देहमें अधर और स्तनुरूप वाकसन्धिको अधिकार करके विवेक उत्पन्न होता है, तुम ही वह अध्यात्म स्वरूप हो। देहारम्भक भूतगण और प्राण तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंको अवलम्बन करके जो विज्ञान होता है, तुम ही वह अधिभूत और अधिदैवत हो; तुम ही अधिलोकमें अधिविज्ञान और अधियज्ञ स्वरूप हो; विद्वान् पुरुष तुम्हें जिस शरीरमें देवताओंसे भी दुर्व्विज्ञेय जानके निर्म्मुक्त होके अनामय परम भावको प्राप्त होते हैं। हे विभु! स्वर्ग और मोक्षके द्वारस्वरूप तुम्हें जो लोग जाननेकी इच्छा नहीं करते, तुम उन्हें आकर्षण करके बार बार जन्म और मृत्युके मुखमें प्रेरण किया करते हो। तुम ही स्वर्ग और मोक्ष हो; तुम हो काम और क्रोधस्वरूप हो, तुम ही सत्त्व, रज और तमोगुणस्वरूप हो, तुम ही अध और ऊर्द्ध्वरूप हो। तुम ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, स्कन्द, इन्द्र, सूर्य्य, यम, वरुण, चन्द्रमा, मनु, धाता, विधाता और कुवेर हो। तुम ही पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश, वचन, बुद्धि, स्थिति और मतिस्वरूप हो; तुम ही सत्यानृत दोनों कर्म्म हो और तुम ही रज्जु-सर्पकी भांति मालूम होते हो, परन्तु स्वयं वैसे जगत्कारण अज्ञानरूपसे विद्यमान नहीं हो, तुम ही इन्द्रियोंके इन्द्रिय विषय प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ और निश्चल हो। तुम कार्य्यकारणके भिन्नभाव सत्तामात्र स्वरूप हो; तुम सोपाधिक रूपसे चिन्तनीय और निरुपाधिभावसे अचिन्त्य हो। जिसे परब्रह्म तथा जिसे परम पद कहते हैं और जो सांख्ययोगकी परम गति है, वह तुम ही हो; इसमें सन्देह नहीं है, कि ज्ञानके सहारे जिनकी बुद्धि निर्म्मल हुई है, वे जिस गतिकी अभिलाष करते हैं, मुझे वही साधुओंकी गति प्राप्त हुई है, अब मैं निश्चय ही कृतार्थ हुआ। पण्डित लोग जिसे शाश्वत कहते हैं, मैंने जो इतने समयतक उस परम देवको नहीं जाना, इससे मैं अवश्य ही अचेतन और मूढ़ था। भक्तोंपर कृपा करनेवाले, जिस देवके जाननेसे लोग अमृत लाभ करते हैं, मैंने अनेक जन्ममें उस देवके विषयमें यह भक्ति लाभ की है। देवता, असुर और मुनियोंके हृदय-कन्दरके बीच स्थित जो गुह्य सनातन ब्रह्म मुनियोंका भी दुर्व्विज्ञेय है, यह वही भगवान है। यह देव सर्व्वकृत सत्त्वतोमुख सर्व्वात्मा, सर्व्वदर्शी, सर्व्वग, सर्व्ववेदिका, देहकृत देहभृत, देही, देहभुक् और देहधारियोंकी गति है, यही प्राणकृत, प्राणभृत, प्राणी, प्राणद और प्राणियोंके गति है। अभिलषित विषयोंकी अध्यात्म गति और ध्याननिष्ठ आत्मज्ञ तथा अपुनर्म्मरणकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंकी जो गति है, यह वही ईश्वर है। यही सब प्राणियोंकी शुभाशुभ गतिदाता है और यही सब जीवोंके जन्म मृत्युका विधान करता है।

सम्यक् सिद्ध काम मनुष्योंका जो गम्यस्थान है, यह ईश्वर ही वह गतिस्वरूप है। जो देव देवताओंके सहित पृथ्वी आदि सब लोकोंको उत्पन्न करके आठ मूर्त्तिके द्वारा उसे धारण और पालन करता है, इसहीसे सब जगत् उत्पन्न होके इसहीमें प्रतिष्ठित है और इस-हीमें प्रलयके समय लीन होता है, केवल यह ईश्वर ही नित्य है। अव्यभिचारी सत्य अर्थात् वेदोक्त कर्म्मफल स्वरूप जो स्वर्ग हैं, उन स्वर्ग काम साधुओंके येही केवल सत्यलोक हैं और येही योगियोंके अपवर्ग और आत्मवित् पुरु-षोंके कैवल्य स्वरूप हैं। यह प्रभु देवता और असुरोंके बीच अप्रकाशित रहता है, इस ही लिये ब्रह्मा आदि मन्त्र व्याख्याता सिद्धोंके द्वारा शास्त्र स्वरूप गुहामें स्थित है। देवता असुर और मनुष्य लोग यथार्थ रूपसे इसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं। हृदयस्थ और अप्रकाश इस ईश्वरके द्वारा सभी मोहित होरहे हैं। जो लोग भक्तिभावसे ध्यान करके इसका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं, यह हृदयरूपी गुफामें शयन करनेवाला भगवान उन्हें स्वयं ही दर्शन देता है। जिसे जाननेसे फिर जन्म वा मृत्यु नहीं होती, जिस परम वेद्य परमेश्व-रको जाननेसे फिर कुछ भी जाननेके लिये शेष नहीं रहता, जिसे पाके विद्वान् पुरुष फिर किसी लाभका बाधक नहीं समझते, जिसे सूक्ष्म और परम प्राप्ति समझके विद्वान पुरुष अक्षय तथा अव्यय होते हैं, जिन्होंने ज्ञानके द्वारा लिङ्ग अतिक्रम किया है, येही सांख्य शास्त्र जाननेवाले गुणतत्त्वज्ञ सांख्यमतवाले पण्डित लोग सूक्ष्म पुरुषको जानके बन्धनसे छूट जाते हैं। वेद जाननेवाले विद्वान् लोग जिसे वेद्य कहके जानते हैं, जो वेदान्त शास्त्रके बीच प्रतिष्ठित होरहा है। सदा प्राणायाममें रत रहनेवाले मनुष्य जिसमें प्रवेश करते तथा जिसका जप करते हैं, वे लोग ओंकार रूपी रथमें चढ़के जिस महेश्वरमें प्रवेश किया करते हैं, यह वही देवयान पथका द्वार आदित्यरूपसे कहा गया है; यही पितृयानका द्वार चन्द्रमा-रूपसे अभिहित हुआ करता है। येही काष्ठा, दिशा, सम्वत्सर और युग आदि हैं, येही दिव्या दिव्य अर्थात् इन्द्र और सार्व्वभौम लाभ तथा दक्षिणोत्तर अयन स्वरूप हैं। पहले प्रजापतिने इसे नील लोहित की अनेक भांतिसे आराधना करके प्रजाके निमित्त वर मांगा था। ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण लोग अनारोपित रूप विषयमें ऋक्म-न्त्रोंसे जिसका वर्णन करते हैं; यजुर्व्वेद जान-नेवाले अध्वर्य्यु गण श्रौत स्मार्त्त और ध्यान, इन त्रिविध यज्ञोंसे वेद्य जिसके निमित्त अध्वरमें यजुर्म्मन्त्रके द्वारा होम किया करते हैं; शुद्धबुद्धि सामवेदी ब्राह्मण सामवेदके मन्त्रोंसे जिसका यश गाते तथा अथर्व्ववेदी ब्राह्मण जिस यज्ञके फल सत् स्वरूप परब्रह्मकी स्तुति किया करते हैं,— येही वह यज्ञयोनि और यज्ञ फल कहके स्मृत होते हैं। रात्रि तथा दिन जिसके कर्ण और नेत्र हैं, पक्ष तथा महीना जिसके शिर और भुजा हैं; ऋतु जिसका वीर्य्य तपस्या धैर्य्य और वर्ष जिसके गुह्य, उरु और चरण हैं; येही मृत्यु, यम, अग्नि, संहार वे भगवान काल, कालकी परम योनि और सनातन काल स्वरूप हैं। येही नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य्य वायुके सहित समस्त ग्रह, ध्रुव सप्तर्षि और सातो भुवन स्वरूप हैं। येही प्रधान महत् अव्यक्त, सवैकृत विशे-षान्त ब्रह्मादि स्तम्ब पर्य्यन्त सद्रूप भूमि, जल, अग्नि और असद्रूप वायु तथा आकाश स्वरूप हैं। येही भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहङ्कार, इन अष्ट प्रकृति स्वरूप और प्रकृतिसे भी मायावी तथा मायावीके अंश समस्त प्रपञ्च स्वरूप हैं। येही आनन्दमय ईश्व-रसे भी परम शुद्ध आनन्द स्वरूप और समस्त नित्य वस्तुओंसे भी नित्य हैं; येही विरक्तोंकी गति और साधुओंके परमभाव हैं। येही अनु-

हितपद स्वरूप तथा येही सनातन ब्रह्म हैं। शास्त्र और वेदाङ्ग जाननेवाले पुरुषोंके येही परमपदप्रापक ध्यानस्वरूप हैं। येही श्रुति-प्रसिद्ध परम काष्ठा हैं, येही परम कला हैं, येही परम सिद्धि और येही परम गति हैं। येही परम शान्ति तथा परम निर्व्वृत्ति हैं; योगी लोग जिसे पाके यह समझते हैं, कि "मैं कृतकृत्य हुआ हूं"—ये वही तुष्टि, सिद्धि, श्रुति अर्थात् श्रोत्रादि जनित अनुभूति और स्मृतिस्वरूप हैं। येही योगियोंकी अध्यात्म गति अर्थात् प्रत्यक प्रवणरूपवाली गतिस्वरूप हैं। येही विद्वान् पुरुषोंकी अपुनरावर्त्तिनी प्राप्तिस्वरूप हैं। बहुतसी दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञके सहारे यजनशील कामनावान मनुष्योंका जो गम्यस्थान है, यज्ञ करनेवाले पुरुषोंकी निःसन्देह तुम ही वह गति हो। हे देव! पूरी रीतिसे जप योग शान्ति नियम और देहको तपाते हुए तपस्या करनेवाले मनुष्योंकी जो गति प्राप्त होती है तुम ही वह परम गति हो। हे सनातन! कर्म्म सन्यासकारी विरक्त पुरुषोंकी ब्रह्मलोकमें जो गति होती है, तुम ही वह गमनस्थान हो, जो लोग पुनर्जन्मकी कामना नहीं करते और सदा वैराग्य अवलम्बन किया करते हैं, उन्हें अपुनरावृत्तिरूपी जो गति प्राप्त होती है, हे सनातन! तुम ही वह गतिस्वरूप हो। हे देव! ज्ञान विज्ञानसे युक्त पुरुषोंकी विरूपाख्य निरञ्जन कैवल्यरूपी जो गति हुआ करती है, तुम ही वह परम गतिस्वरूप हो। वेद, शास्त्र और पुराणमें कही हुई ये पांच प्रकारकी गति स्मृत हुआ करती हैं, हे विभु! तुम्हारी कृपासे ही वे सब गति प्राप्त होती हैं, अन्यथा प्राप्त नहीं होतीं। तपस्वी श्रेष्ठ तण्डिमुनिने स्वयं इस ही प्रकार ईशानदेवकी स्तुति की थी। पहिले समयमें प्रजापतिने जिस प्रकार परब्रह्मका यश गाया था, इन्होंने भी उसे ही अवलम्बन करके उस ही प्रकार यश गान किया।

उपमन्यु बोले, देवप्रभु भगवान् महादेव उमाके सहित ब्रह्मवादी तण्डि मुनिके द्वारा इस ही प्रकार स्तुति युक्त होकर अर्थात् ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, विश्वदेव और महर्षि लोग भी तुम्हें नहीं जानते इस ही वचनसे महादेव प्रसन्न होकर तण्डिसे कहने लगे।

भगवान् बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! तुम मेरे प्रसादसे अक्षय, अव्यय, दुःख रहित, यशस्वी और दिव्यज्ञानसे युक्त होगे और तुम्हारा पुत्र ऋषियोंका अभिगमत्र तथा सूत्रकर्त्ता होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे तात! कहो, तुम्हें कौनसी अभिलाषा है, मैं इस समय तुम्हें बरदान करूंगा। तण्डि मुनि हाथ जोड़के उस समय यह वचन बोले, हे देव! तुममें मेरी दृढ़ भक्ति रहे।

उपमन्यु बोले, देवर्षियोंसे बन्दनीय और देवताओंसे स्तूयमान महादेव तण्डि मुनिको यह सब बरदान करके उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये, हे यादवेश्वर! जब भगवान शिवजीके सहित अन्तर्हित हुए तब महर्षि तण्डिने इस आश्रममें आके मुझसे यह सब वृत्तान्त कहा था। पहले जो कुछ विदित हुआ था, तण्डि मुनिने वह सब मुझसे कहा। हे मनुजश्रेष्ठ! उन्होंने भगवानके जिन नामोंका वर्णन किया था, तुम सिद्धिलाभके निमित्त वह सब सुनो। पितामहने देवताओंके समीप भगवान्के दश हजार नामका वर्णन किया था, परन्तु शास्त्रके बीच महादेवके सहस्र नाम विख्यात् हैं। हे अच्युत! हे देवेश! पहिले समयमें ताण्डि मुनिने इस गुप्त नामोंको उन्हींकी कृपासे महानुभाव महेश्वरके निकट कहा था।

१६ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, हे तात युधिष्ठिर! अनन्तर वह विप्रर्षि हाथ जोड़के सावधान होकर मेरे समीप आदिसे नाम संग्रह करने लगे·

उपमन्यु बोले, मैं ब्रह्मा और ऋषियोंके द्वारा वेदवेदाङ्गोंमें वर्णित नामोंसे सब लोकोंमें विख्यात् स्तुतियोग्य महेश्वरकी स्तुति करूंगा। जो सब स्तुतिके वचन सर्व्वार्थ साधक, सिद्ध, सत्य, महत् और सुविहित हैं, जिसे तण्डि महर्षिने वेदोंसे विभिन्न करके ग्रथित किया है; तत्त्वदर्शी विख्यात साधु और मुनियोंके द्वारा जो वर्णित हुआ है, सर्व्वत्र प्रसिद्ध ब्रह्मलोकसे प्रकट उस अन्वर्थ वचनसे सबमें श्रेष्ठ प्रथम स्वर्गत्र सब भूतोंके हितैषी शुभ स्वरूप शंकरकी स्तुति करूंगा। हे यदुकुल श्रेष्ठ! वेदमें वर्णित उस सनातन परब्रह्मके नामोंका वर्णन करता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। तुम परमेश्वरमें भक्ति करते हो, इसलिये उस भवानीपति महादेवको वरण करो। तुम उसके भक्त हो, इसहीसे मैं तुम्हें उस सनातन परब्रह्मका नाम सुनाऊंगा, कोई पुरुष भी महादेवकी समस्त महिमा विस्तारपूर्व्वक वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है। हे माधव! विभूतियुक्त पुरुष एक सौ वर्षमें भी उसे नहीं जान सकता। देवता लोग जिसको आदि मध्य और अन्त जाननेमें असक्त हैं, उसके सब गुणोंको वर्णन करनेमें कौन समर्थ होगा? परन्तु उस बुद्धिशक्तिसे युक्त महादेवकी कृपासे मैं निज शक्तिके अनुसार संक्षिप्तार्थ पद और अक्षरयुक्त चरित वर्णन करूंगा। विना उसकी कृपासे कोई उसकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं होता, जब मैं उससे अनुज्ञात हुआ हूं, तभी स्तुति किया है। मैं आदि अन्तसे रहित जगद्योनि महानुभाव अव्यक्त योनिके नामोंका किञ्चित उद्देश्य कहूंगा। हे कृष्ण! वरदाता वरणीय विश्वरूपी धीमान् शङ्करके जो सब नाम ब्रह्माके द्वारा वर्णित हुए हैं उसे सुनो। पितामह ब्रह्माने जो दश सहस्र नाम कहा है, वह सब मनहीमन मंथके उसके बीचसे यह सार रूपसे इस प्रकार निकाला गया है, जैसे दहीसे घृत, पहाड़से सुवर्ण, फूलसे मधु और दूधसे मक्खन निकाला जाता है। यह सब पापोंको दूर करनेवाला चारोंवेदोंसे युक्त नामोंको सावधान चित्त होकर लोगोंको जानना तथा धारण करना उचित है। इन मङ्गलजनक पुष्टिकर रक्षोघ्न महत् पावन नामोंको श्रद्धावान् आस्तिक भक्तोंको सुनाना चाहिये; अश्रद्धावान् नास्तिक और अजितेन्द्रिय पुरुषोंको कदापि उपदेश करना उचित नहीं है। हे कृष्ण! कारण स्वरूप देवोंकेदेव ईश्वरके विषयमें जो लोग असूया करते हैं, वे पूर्व्व पुरुषों तथा पुत्रोंके सहित नरकमें डूबते हैं। इन नामोंका जप कर सकनेसे ही ध्यान आदिके फल प्राप्त होते हैं, यह योग और अनुत्तम ध्येय है, यही जप, यही ज्ञान तथा यही श्रेष्ठ रहस्य है। अन्तकालमें जिसके जाननेसे परम गति प्राप्त होती है, यह पापनाशक अभ्युदयकारी यज्ञ फलदायक और परमानन्द स्वरूप है। पहले समयमें सर्व्वलोक पितामह ब्रह्माने इस स्तोत्रको समस्त दिव्य स्तोत्रोंके राजत्व पर अभिषिक्त किया। उस ही समयसे महानुभाव देवताओंसे पूजित यह स्तोत्र जगत्में स्तवराज रूपसे विख्यात् हुआ है। यह स्तवराज ब्रह्म लोकसे स्वर्गमें उतरा और स्वर्गसे पहले समयमें इसे तण्डि मुनिने पाया, इस ही निमित्त यह तण्डिकृत कहके प्रसिद्ध हुआ है। तण्डिके द्वारा यह स्वर्गसे भूलोकमें उतरा है।

हे महाबाहो! समस्त मङ्गलोंका मङ्गलकारी सर्व्व पापोंका नाश करनेवाला सब स्तोत्रोंके बीच उत्तम स्तोत्र वर्णन करूंगा। जो वेदोंका भी वेद अर्थात् वाक्यका भी वाक्य स्वरूप है, सब श्रेष्ठ वस्तुओं अर्थात् इन्द्रियार्थ मन बुद्धि महत् अव्यक्तसे भी श्रेष्ठ पुरुष, तेजस्वी पदार्थों अर्थात् नेत्र आदिका तेज स्वरूप है, तपस्या गङ्गा आदि पुण्य तीर्थोंका भी पुण्यस्व-

रूप है, शान्तोंका भी शान्त है, उपरति आत्यन्तिक द्युतिमण्डलीका भी तेजस्वरूप है, जो दान्त पुरुषोंके तथा अत्यन्त जितेन्द्रिय, ज्ञानियोंके बीच आत्मानुभव रूपी ज्ञानस्वरूप है, जो देवताओंका देवता ऋषियोंका भी ऋषिस्वरूप है, जो यज्ञोंका यज्ञ और कल्याणस्वरूप है, जो रुद्रगणोंका रुद्र और प्रभायुक्त वस्तुओंमें प्रभारूप है। जो योगियोंका योगी और सब कारणोंका कारण है, जिससे सब लोग उत्पन्न होते हैं और जिसमें लीन होनेसे पुनर्जन्म नहीं होता, उस सब भूतोंके आत्मभूत अमिततेजस्वी सर्व्वव्यापी हरके अष्टोत्तर सहस्र नाम मेरे समीप सुनो। हे मनुज श्रेष्ठ! उसे सुननेसे समस्त कामना प्राप्त होंगी। वह अचञ्चल है इस ही निमित्त उसका नाम स्थिर है १, कूटस्थ नित्य है इसहीसे स्थाणु २, अन्तर्य्यामी ईश्वर है इसहीसे प्रभु ३, जगत्संहर्त्ता है, जगत उससे भीत होता है, इस ही लिये उसका नाम भीम है ४, भोग मोक्ष और कामकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंका वरणीय है, इस ही निमित्त प्रवर ५, अभिलषित वस्तु प्रदान करता है, इसहीसे वरद ६, समस्त जगतको परिपूरित कर रहा है, इस ही लिये वर ७, सर्व्वात्मा ८, सर्व्वविख्यात ९, प्रत्येक रूपसे सबमें व्याप्त होरहा है, इसहीसे सर्व्व १०, विश्वकर्त्ता है, इस ही निमित्त सर्व्वकर ११, सबकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण है इस ही निमित्त सर्व्वकर १२, जटा धारण करनेसे जटी १३, व्याघ्र वा गज चर्म्म पहरनेसे चर्म्मी १४, मयुरशिखाकी भांति जटा बांधनेसे शिखण्डी १५, समस्त जगत् उनका अवयव स्वरूप है, इसहीसे सर्व्वाङ्ग १६, विश्वकर्त्ता होनेसे सर्व्वभावन १७, सर्व्वसंहारकारी होनेसे हर १८, मृगके नेत्रकी भांति नेत्रविशिष्ट है, इसहीसे हरिणाक्ष १९, सर्व्वभूत हर २०, सर्व्व भोक्ता होनेसे प्रभु २१, प्रकृष्टरूप कुर्व्वतभावसे वर्त्तमान हैं, इस ही निमित्त प्रवृत्ति २२, निरुद्यमभावसे निवास करता है, इस ही लिये निवृत्ति २३, विषय ग्रहण करनेके लिये स्वयं प्रवृत्त होता है, इस ही निमित्त नियत २४, नित्य होनेसे शाश्वत २५, अचल है, इसलिये ध्रुव २६, पुनरुत्थानसे रहित होके लोग जिस स्थानमें शयन करते हैं, उस वाराणसी क्षेत्रमें वास करता है, इस ही लिये श्मशानवासी २७, समस्त ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, यश, श्री, ज्ञान और समग्र वैराग्यविशिष्ट होनेसे भगवान् २८, हार्दाकाशचारी होनेसे खेचर २९, इन्द्रियोंमें विषयरूपसे विचरता है, इस ही लिये गोचर ३०, पापियोंको पीड़ित करता है, इस ही निमित्त अर्द्दन ३१, सबके नमस्कार योग्य और स्तवनीय होनेसे अभिवाद्य ३२, पृथ्वी आदि महत् कार्य्योंका कर्त्ता है, इस ही लिये महाकर्म्मा ३३, तपरूप निजधनसे युक्त है, इसीसे तपस्वी ३४, आकाश आदि भूतोंको सङ्कल्प मात्रसे उत्पन्न करता है, इसहीसे भूतभावन ३५, दिगम्बर रूपसे दुर्ज्ञेय होनेसे उन्मत्त वेश प्रच्छन्न है ३६, समस्त भुवन तथा समस्त प्रजाका स्वामी है, इसहीसे सर्व्व लोक प्रजापति ३७, उसका रूप अपरिच्छेद्य है, इसलिये महारूप ३८, वैराज स्थूल देहधारी है, इसहीसे महाकाय ३९, धर्म्मस्वरूप होनेसे वृषरूप ४०, महत यशस्वरूप है, इसहीसे महायशा ४१, महामना है इसहीसे महात्मा ४२, उसके रक्षण मात्रसे सब भूत प्रकट हुए हैं, इस ही निमित्त सर्व्वभूतात्मा ४३, जगतके बीच प्रकाशित है, इसीसे विश्वरूप, ४४, उसका हनु विश्व ग्रास करनेमें समर्थ है, इस ही लिये महाहनु ४५, इन्द्रादि स्वरूप होनेसे लोकपाल ४६, अविद्याकल्पित अहंकारादिसे तिरोहितात्मा अखण्ड एक रस स्वभाव है, इस ही निमित्त अन्तर्हितात्मा ४७, आनन्द स्वरूप होनेसे प्रसाद ४८, रथस्थ होनेपर अग्निरूपी

देवेश्वरी अश्वतरी उसके रथको खींचती हैं, इस ही कारणसे हयगर्द्दभी ४९, संसार वज्र-पातसे त्राण करता है, इस ही निमित्त पवित्र ५०, पूज्य है, इसलिये महान् ५१, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि नियमके सहारे वह प्राप्त होता है, इस ही निमित्त नियम ५२, और उक्त नियमोंके आश्रित है, इस ही लिये नियमाश्रित ५३, समस्त शील्प कार्य्य विश्वकर्म्मा है, इसहीसे सर्व्वकर्म्मा ५४, नित्य सिद्ध होनेसे स्वयम्भूत ५५, सबसे प्रथम होनेसे आदि ५६, हिरण्यगर्भ-स्रष्टा है, इसीसे आदिकर ५७, पद्म शंख प्रभृति अक्षय ऐश्वर्य्यरूप है, इस ही निमित्त निधि ५८, अनन्त कर चरण नयनादिमान् अर्थात् देवेन्द्र स्वरूप होनेसे सहस्राक्ष ५९, अतीत अनागतके प्रकाशक नेत्रसम्पन्न है, इसहीसे विशालाक्ष ६०, चन्द्र वा यज्ञीय स्वरूप होनेसे सोम ६१, आका-शमें प्रकाशमान शरीरसे नक्षत्रोंके कारण होनेसे नक्षत्रसाधक ६२, चन्द्र ६३, सूर्य्य ६४, शनि ६५, केतु ६६, राहु ६७, ग्रहपति (क्रूरल-निवन्धन) मङ्गल ६८, वर (वरणीय पूज्य वृहस्पति) ६९, अत्रि अर्थात् अत्रिगोत्रापत्य बुध है, इसलिये सर्व्व ग्रहस्वरूप ७०, दुर्व्वासा-रूपसे अत्रिपत्नी अनुसूयाका पुत्र होके उसे नमस्कार करनेसे अत्रग्नमस्कर्त्ता ७१, मृगरू-पधारी यज्ञमें बाण चलाया था, इसीसे मृगवा-णार्पण ७२, यज्ञघ्न होनेपर भी तेजस्वी और स्वतन्त्र होके निष्पाप है, इसहीसे अनघ ७३, जगत्सृष्टिक्षम आलोचना की थी, इसहीसे महातपा ७४, विश्वसंहार क्षम आलोचनावि-शिष्ट है, इसलिये घोरतपा ७५, महामना होनेसे अदीन ७६, शरणागतोंका इष्टसाधक है, इसलिये दीनसाधक ७७, कालचक्रके प्रवर्त्तक ध्रुव आदि ज्योतिर्गणस्वरूप है, इसहीसे सम्वत्सरकर ७८, मननहेतु त्राणकारी प्रणवा-दिरूप है, इसहीसे मन्त्र ७९, वेदशास्त्रादिरूप होनेसे प्रमाण ८०, और योगके द्वारा आत्मद-र्शनस्वरूप होनेसे परमतप ८१, योगनिष्ठ है, इसलिये योगी ८२, योगके सहारे ब्रह्ममें प्रवि-लापनीय है, इस ही निमित्त योज्य ८३, कार-णका कारण है, इसलिये महाबीज ८४, अव्य-क्तको स्फूर्त्ति सत्ताप्रद है, इसलिये महारेता ८५, श्रेष्ठ सामर्थवान है, इसीसे महाबल ८६, हिरण्मय ब्रह्माण्डका स्रष्टा है, इस ही निमित्त सुवर्णरेता ८७ मायावृत्तिसे सबको ही जानता है इसलिये सर्व्वज्ञ ८८, अधिकारी होके बीजभूत है, इसहीसे सुबीज ८९, अविद्या काम कर्म्मात्मक बीज ही उसका इस लोक और पर-लोक सञ्चारके निमित्त वाहनस्वरूप है, इस ही लिये बीजवाहन ९०, दशबाहु ९१, अनिमिष ९२, नीलकण्ठ ९३, उमापति ९४, विश्वरूप ९५, स्वयं श्रेष्ठ ९६, सामर्थके सहारे विक्रान्त होनेसे बलवीर ९७, विना चेतन प्रयोगके चलनेकी सामार्थसे युक्त है, इसलिये अबल ९८, अव्यक्त, महत् अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र, ग्यारह इन्द्रिय और पञ्च महाभूत, ये चौबीस तत्व, पचीसवां भोक्ता तथा स्वयं षड्विंश है, इसहीसे गण, ९९, इस ही भांति गणोंका कर्त्ता है, इसी कारण गण कर्त्ता वा गणपति १००, कहके वर्णित होता है दारुकावनमें मुनिपत्नियोंको मोहित करनेके लिये दिगम्बर हुए थे अथवा अनन्त दिशाओंके आच्छादक है, इसही लिये दिग्वासा १०१, अभि-लाष स्वरूप होनेसे काम १०२ पाठ और अर्थके अनुसार मन्त्रोंको जानता है, इस ही लिये मन्त्र वित १०३, आत्मतत्वानुशोचनरूप विचार स्वरूप होनेसे परम मन्त्र १०४ अखिलकारण होनेसे सर्व्व भावकर १०५, सबके नाशके कारण होनेसे हर १०६, कमण्डलुधर १०७, धन्वी १०८, बाण हस्त १०९, कपालवान ११०, अशनी १११, शतघ्नी ११२, खड्गी ११३, पट्टिशी ११४, आयुधी ११५, महान् ११६, हाथमें यज्ञपात्र धारण किया करते हैं, इस ही निमित्त स्रुवहस्त ११७, शोभा-

यमानरूपसे युक्त हैं, इस ही लिये सुरूप ११८, तेजस्वी होनेसे तेजनिधि ११९, भक्तोंको कान्ति-प्रद होनेसे तेजस्कर निधि १२०, उष्णीषी १२१, सुवक्र, १२२, उच्छ्रित रूप होनेसे उदग्र १२३, विनयवान् है, इसीसे विनत १२४, दीर्घ १२५, इन्द्रियोंके द्वारा तत्तदर्थका प्रकाशक है, इस ही निमित्त हरिकेश १२६, उत्तम तीर्थ स्वरूप है, इस ही निमित्त सुतीर्थ १२७, भूवाचक कृषि शब्द और निर्वृति वाचक ण शब्द है, इन दोनोंके ऐक्यसे परब्रह्म अर्थ होता है, इस ही निमित्त कृष्ण १२८, बणिकके द्वारा अवमानित ब्राह्मणके योगयुक्त होके मरनेके लिये बैठनेपर उसे धीरज देनेके लिये इन्द्रने जो सियारका रूप धरा था, उसके सङ्ग अभिन्न होनेसे शृगा-लरूप १२९, सिद्धगण ही उसके अर्थनीय पदार्थ हैं, इस ही निमित्त सिद्धार्थ १३०, परिब्राट् होनेसे मुण्ड १३१, सर्व्व शुभङ्कर १३२, जन्म रहित होनेसे अज १३३, बहुरूप १३४, कुसुम कस्तुरी प्रभृति सुगन्धित वस्तु धारण करते हैं, इस ही निमित्त गन्धधारी १३५, जटाजूट धारण करनेसे कपर्द्दी १३६, अखण्डित ब्रह्मचर्य्य करनेसे ऊर्द्धरेता १३७, ऊर्द्धलिङ्ग १३८, उत्तान-शयन करनेसे उत्तानशायी १३९, नभ अर्थात् आकाश संज्ञक शक्ति ही उसका स्थल है, इस ही निमित्त नभस्थल १४०, त्रिजटी १४१, चीरवासा १४२, प्राणरूपसे सबको रुलाता है, अर्थात् सबका प्राण स्वरूप है। इस ही निमित्त रुद्र १४३, सेनापति १४४, सर्व्वव्यापी होनेसे बिभु १४५, देवादि स्वरूप होनेसे अहचर १४६, राक्षसादि स्वरूप है, इसीसे नक्तचर १४७, तीक्ष्णक्रोध है, इसलिये तिग्ममन्यु, १४८, जीवोंके अध्ययन और तपस्याका तेज स्वरूप है, इस ही निमित्त सुवर्चस १४९ बाराणसीमें गजासुरको मारा था, इससे गजहा १५०, दैत्यहा १५१, मृत्यु अथवा सम्वत्सर स्वरूप होनेसे काल १५२, सब लोकोंका ईश्वर है, इस ही लिये लोक बिधाता १५३, दीन दयालुता और ज्ञाने-श्वर्य्य प्रभृतिकी खान है, इस ही लिये गुणाकर १५४, समस्त हिंसक पशु स्वरूप होनेसे सिंह शार्द्दूल रूप १५५, आर्द्र गजचर्म्मधारी है, इस ही निमित्त आर्द्रचर्म्माम्बरावृत १५६, काल बञ्चक योगी है, इसही निमित्त कालयोगी १५७, अनाहत ध्वनि स्वरूप होनेसे महानाद १५८, सर्व्वकामना उसमें समाप्त होती हैं, इसलिये सर्व्वकाम १५९, उसकी उपासनाके लिये विश्व, तैजस, प्राज्ञ और शिव ध्यानरूपी चार उपाय हैं इस ही निमित्त चतुष्पथ १६०, वेतालादि स्वरूप होनेसे निशाचर १६१, प्रेतोंके सङ्ग बिचरनेसे प्रेतचारी १६२, भूतचारी १६३, इन्द्र आदि ईश्वरसे भी महान् है, इस ही निमित्त महेश्वर १६४, सदसत् रूपसे अनेक हुआ है, इस ही लिये बहुभूत १६५, महत् प्रपञ्च धारण कर रहा है, इस ही लिये बहुधर १६६, मूलाज्ञान-रूप तम शब्दसे युक्त राहु होनेसे स्वर्भानु १६७, परिमाण नहीं है, इस ही निमित्त अमित १६८, मुक्त पुरुषोंके प्राप्य होनेसे गति १६९, नृत्यप्रिय १७०, सदानृत्यमें रत रहता है, इस लिये नित्यनर्त्त १७१, नर्त्तक १७२, बिश्वबन्धु होनेसे सर्व्वलालस १७३, महादेवकी दो प्रका-रकी मूर्त्ति है, एक क्षुधातृष्णारूपी घोर और दूसरी सन्तोषादि रूप अघोर है इसलिये घोरा मूर्त्तिबिशिष्ट होनेसे घोर १७४, उसकी दृष्टि संहाररूपी आलोचना है इसलिये महातपा १७५, अपनी मायासे सबको बांधता है, इस ही कारण पाश १७६, नाश रहित है, इसलिये नित्य १७७, कैलास शैलवासी होनेसे गिरिरुह १७८, आकाशकी भांति असंग है, इसलिये नभ १७९, सहस्र हस्त १८०, विजय १८१, जयके हेतु होनेसे व्यवसाय १८२, प्रवृत्तिको रोकनेवाली मोहमयी वृत्तिसे रहित है, इस-लिये अतन्द्रित १८३, अप्रकम्प है इस निमित्त अधर्षण १८४, भयरूप है, इसलिये धर्षणात्मा

१८५, बौद्धावतार रूपसे यज्ञघ्न है, इस ही निमित्त यज्ञहा १८६, कामनाशक १८७, दक्षयज्ञापहारी १८८, प्रियदर्शन होनेसे सुसह १८९, मृदुप्रिय दर्शन है, इसलिये मध्यम १९०, तेजापहारी १९१, इन्द्ररूपसे बलनामक असुरको पराजित करते हैं, इसीसे बलहा १९२, कारणरूपसे नित्य आनन्दयुक्त है, इस ही लिये मुदित १९३, धनरूपसे अर्थनीय है, इस ही निमित्त अर्थ १९४, अजित १९५, उससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, इसलिये अवर १९६, गम्भीरघोष १९७, गम्भीर १९८, गम्भीर बलवाहन १९९, उर्द्ध मूल नीचीशाखावाला अश्वत्थ रूपसे संसार वृक्ष स्वरूप है, इस ही निमित्त न्यग्रोधरूप २००, वट निकटवासी दक्षिण मूर्त्ति अथवा मारकण्डेय दृष्ट समुद्रमें वट पत्रपर शयन करनेवाले बालक रूपधारी महाविष्णु स्वरूप है, इस ही निमित्त न्यग्रोध २०१, वृक्षके कर्णकी भांति पत्रपर प्रलय कालमें स्थित था, इस ही लिये वृक्ष कर्णास्थिति २०२, हरि हर दुर्गा गणेश आदि विविध रूपसे भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त उत्पन्न होता है, उस ही निमित्त विभु २०३, अनेक ब्रह्माण्ड चणक चर्व्वण क्षम दांतोंसे युक्त है, इस ही निमित्त सुतीक्ष्ण दर्शन २०४, महाकाय २०५, महानन २०६, उसके प्रयाण करने पर समस्त दैत्यसेना सब भांतिसे पालन करती है, अर्थात् उसकी सारीसेना सब प्रकारसे पूज्य है, इस ही निमित्त विष्वक्सेन २०७, वह आपदोंको हरता है, अथवा सर्व्व संहारक है, इसलिये हरि २०८, सृष्टिका बीज स्वरूप है, इस ही निमित्त यज्ञ २०९, संग्राममें ध्वजभूत वृष ही उसका वाहन है, इसलिये संयुग पीड़ वाहन २१०, अग्निस्वरूप होनेसे तीक्ष्णताप २११, सूर्य्य स्वरूप होनेसे हर्य्यश्व २१२, जीवका सखा है, इसलिये सहाय २१३, दश आदि कर्म्मोंका समयज्ञ है, इस निमित्त कर्म्म फलवित् २१४, चक्र पानेके निमित्त विष्णुने उसे प्रसन्न किया था, इस ही लिये विष्णु प्रसादित २१५, विष्णुरूपी होनेसे यज्ञ २१६, सागर स्वरूप है, इसलिये समुद्र २१७, जो अग्नि समुद्रके जलको प्रतिदिन भस्म कर रही है, तत्स्वरूप होनेसे बाड़वामुख २१८, वायु स्वरूप होनेसे हुताशन सहाय २१९, निस्तरङ्ग सागरके सदृश होनेसे प्रशान्तात्मा २२०, अग्निरूप होनेसे हुताशन २२१, दुःसह स्पर्श है, इसलिये उग्रतेजा २२२, सब ठौर प्रकाशित है, इसलिये महातेजा २२३, संग्राम निपुण होनेसे जन्य २२४, विजयकालवित् २२५, जिस शास्त्रमें ग्रह-नक्षत्रोंका गमन वर्णित है, उसका नाम ज्योतिष हैं, उस शास्त्रके आश्रय होनेसे ज्योतिषामयनं २२६, नाम है। जयरूपी है, इसलिये सिद्धि २२७, काल प्रभृत सभी उसका शरीर है, इस निमित्त सर्व्व विग्रह २२८, शिखावान गृहस्थ है, इसलिये शिखी २२९, शिखारहित सन्न्यासी है, इसलिये मुण्डी २३०, जटावान् बाणप्रस्थ है, इसलिये जटी २३१, ज्वालावान् अर्च्चिरादि मार्ग है, इस ही निमित्त ज्वाली २३२, मूर्त्तिमें प्रकट होता है, इसलिये मूर्त्तिज २३३, सहस्रारमें गमन करनेसे मूर्द्धग २३४, बलवान् होनेसे बली २३५, बांसुरी ढोल तानाख्य वाद्यविशेष विशिष्ट है, इसलिये वैणवी २३६, पणवी २३७, ताली २३८, धान्यस्थान सम्पन्न हैं, इसलिये खली २३९, कालको आवरण करनेवाली ईश्वरी माया है, उसे भी आवरण कर रहा है, इसलिये कालकटङ्कट २४०, उसकी मति ग्रहतारा प्रभृति विग्रहविशिष्ट कालचक्रानुसारिणी है, इसलिये नक्षत्रविग्रह मति २४१, गुणकाढ्य बुद्धि विशिष्ट जीव रूपी है, इस ही लिये गुणबुद्धि २४२, उसमें सब वस्तु लय होती हैं, इस ही निमित्त लय २४३, अचञ्चल कूटस्थ चिन्मात्र है, इसलिये अगम २४४, विराट है, इसलिये निमित्त प्रजा-

पति २४५, जगत्के प्राणियोंकी भुजा हो उसके बाहु हैं, इसहीसे विश्ववाहु २४६, व्यष्टिकार्य्य रूप होनेसे बिभाग २४७, समष्टि कार्य्य खरूप है, इसलिये सर्व्वग २४८, भोग साधन रहित अभोक्ता है, इसलिये अभोग २४९, संसार मोचक होनेसे बिमोचन २५०, अनायास ही प्राप्य है, इस ही निमित्त सुशरण २५१, जो रहता है, वह हिरण्य है अर्थात् मायासे बिकारभूत कवचकी भांति आवरक शरीरमें उसकी उत्पत्ति होती है, इस ही लिये हिरण्य कवचोद्भव २५२, मेढ्र अर्थात् लिङ्गमें उसकी उत्पत्ति होती है, इस ही निमित्त मेढ्रज २५३, शवररूपसे बल शब्द बाची बनमें बिचरता है, इसलिये बलचारी २५४, समस्त पृथ्वीपर बिचरता है, इसलिये महीचारी २५५, सर्व्वत्र गत है, इस निमित्त स्तुत २५६, सर्व्वतूर्य्यानिनादी २५७, सब जीव ही उसके कुटुम्ब हैं, इसलिये सर्व्वतोद्य परिग्रह अर्थात् पशुपति २५८, शेषनागरूप होनेसे व्यालरूप २५९, योगीरूपसे गुहावासी २६०, कार्त्तिकेय स्वरूपसे गुह २६१, बनमालाधारी होनेसे माली २६२, बिषय सुखोंको तरङ्गसमान जानता है, इस ही लिये तरङ्गवित् २६३, प्राणियोंकी जन्म स्थिति और नाश, ये तीनों दशा उसहीसे प्रकट होती है, इसीसे त्रिदश २६४, त्रिकालजात बस्तुओंको धारण करता है, इसलिये त्रिकालधृक् २६५, सञ्चित क्रियमाण और अविद्या कामात्मक कर्म्मोंके बन्धनको बिमोचन करता है; इसीसे सर्व्व-कर्म्म-बन्धबिमोचन २६६, असुरेन्द्रगणोंके बन्धन २६७, युद्धमें शत्रुबिनाशन २६८, आत्मानात्म बिवेकसे प्रसन्न होता है, इस निमित्त सांख्यप्रसाद २६९, रुद्रांशरूपसे उत्पन्न दुर्व्वासा २७०, सर्व्वसाधु निषेवित २७१, ब्रह्मादि देवताओंके भी प्रच्यु तिकारक होनेसे प्रस्कन्दन २७२, प्राणियोंके कर्म्मफलोंको यथोचित बिभक्त करता है, इसलिये बिभागज्ञ २७३, उसके समान कोई भी नहीं है, इसलिये अतुल्य २७४, यज्ञीय हवि प्रभृतिके बिभागाभिज्ञ है, इस ही कारण यज्ञभागवित २७५, उसका सर्व्वत्र वासस्थान है, इसलिये सर्व्ववास २७६, सर्व्वत्र बिचरता है, इस ही निमित्त सर्व्वचारी २७७, दुःख आर्द्र गजचर्म्म उसका वस्त्र है, इस ही कारण दुर्व्वासा २७८, इन्द्रस्वरूप होनेसे वासव २७९, अमर २८०, हिमालयरूपी है, इसलिये हैम २८१, सुवर्णकर्त्ता है, इसलिये हेमकर २८२, निष्कर्म्मा है, इसलिये अयज्ञ २८३, समस्त कर्म्म फलोंको धारण करता है, इस ही निमित्त सर्व्वधारी २८४, दिग्गज कूर्म्म और शेष प्रभृतिको धारण करनेवाला है तथा स्वयं अनन्याधार है, इस ही निमित्त धरोत्तम २८५, लोहिताक्ष २८६, महाक्ष २८७, बिजयके उपलक्षित रथविशिष्ट है, इसलिये बिजयाक्ष २८८, पण्डित है, इस ही निमित्त बिशारद २८९, बाणासुर प्रभृतिको दासरूपसे स्वीकार किया था, इसीसे संग्रह २९०, इन्द्र आदि देवताओंको उल्लिक्त होनेपर दण्ड करता है, इसलिये निग्रह २९१, कर्त्ता २९२, सर्पचीर निवासन २९३, देवताओंके बीच अष्टम अग्नि और नवम बिष्णु रूपसे सर्व्वदेवमय है, इसलिये मुख्य २९४, अमुख्य २९५, अत्यन्त पुष्ट हैं, इस निमित्त देह २९६, काहल नाम बाद्य बिशेषबिशिष्ट है, इसलिये काहली २९७, सर्व्वकामद २९८, सर्व्वफलप्रसाद २९९, सुबल ३००, बलरूप धृक् ३०१, सर्व्वकामवर ३०२, सर्व्वद ३०३, सर्व्वतोमुख ३०४, आकाशवत् है, उससे बिबिध बिचित्ररूप प्रकट होते हैं, इस निमित्त निर्व्विरूप ३०५, देहगर्त्तमें आत्माको निपातित करता है, इसलिये बिपाती ३०६, देहसम्बन्धनिबन्धन अपरिहार्य्य होनेसे दुःखादि सम्बन्धबशसे अवश ३०७, हार्द्दकाशमें शुद्ध चैतन्यरूपसे स्थित रहनेसे खग ३०८, रौद्ररूप ३०९, देवभेदसे अंश ३१०, आदित्य ३११, बहुरश्मि ३१२, उत्तम तेजशाली है, इसलिये सुवर्चसी ३१३, वायुको भांति बेगवान है,

इस निमित्त वेग ३१४, महावेग ३१५, मनोवेग ३१६, अविद्याकी भांति विषय भोग करता है, इसलिये निशाचर ३१७, सर्व्वशरीरमें वास करता है, इसहीसे सर्व्ववासी ३१८, ऋगमन्त्रों में निवास करता है, इसलिये श्रियावासो ३१९, उपदेश-कर ३२०, मौनभावसे स्थित होकर उपदेश करता है, इसलिये अकर ३२१, मुनि ३२२, आत्माकोही निश्चय करके देहादि उपाधिसे निकलकर अवलोकन करता है इसलिये आत्म-निरालोक ३२३, सम्यक् सेचित होनेसे सम्भग्न ३२४, अनन्त धनदाता होनेसे सहस्रद ३२५, गरुड़स्वरूप है इसीसे पक्षी ३२६, मित्ररूपसे सहाय है, इस ही निमित्त पक्षरूप ३२७, शक्र तेज अभिभवके कारण कोटि सूर्य्य सदृश है इस-लिये अतिदीप्त ३२८, प्रजासमूहका पति है, इसलिये विशाम्पति ३२९, उन्मत्तकारक हैं, इस ही लिये उन्माद ३३०, मोहक होनेसे मदन ३३१, कामप्रमान है, इसलिये काम ३३२, संसार वृक्ष है, इस निमित्त अश्वत्थ ३३३, धनप्रद है, इसलिये अर्थकर ३३४, कीर्त्तिदाता है, इसलिये यश ३३५, कर्म्मफलोंका विभाजक है, इसलिये वामदेव ३३६, कर्म्मफलरूप है, इसलिये वाम ३३७, सबका आदि होनेसे प्राक् ३३८, तीनोलोकोंको आक्रमण करनेमें समर्थ हैं, इस ही निमित्त दक्षिण ३३९, बलिके ध्वंस करनेवाले होनेसे वामन ३४०, सनत्कुमार आदि रूपसे सिद्ध योगी ३४१, वशिष्ठ आदि रूपसे महर्षि ३४२, दत्तात्रेय आदि रूपसे सिद्धार्थ ३४३, याज्ञवल्क्य आदि रूपसे विद्वत्स-न्यासी है, इसलिये सिद्ध साधक ३४४, लिंग-धारी हंस है, इसलिये भिक्षु ३४५, लिंगहीन परमहंस है, इसलिये भिक्षुरूप ३४६, निर्व्यव-हार है, इसहीसे विपण ३४७, सब प्राणियोंको अभयदाता है, इसलिये मृदु ३४८, निर्व्विकार अर्थात् मान अपमानमें हर्ष विषादसे रहित है, इसलिये अव्यय ३४९, देव सेनापति कार्त्तिकेय स्वरूप होनेसे महासेन ३५०, विशिख ३५१, पष्टितत्त्व उसके भोज्य हैं, इसलिये षष्टिभाग ३५२, इन्द्रियोंका चालक है, इसलिये गवांपति ३५३, इन्द्रस्वरूप है, इस निमित्त वज्रहस्त ३५४ विस्तारवान होनेसे विष्कम्भी ३५५, दैत्यसे-नाकी स्तम्भन करनेवाला है, इसलिये चमूस्त-म्भन ३५६, युद्धमें रथके द्वारा मण्डली करण-वृत्त और परसेनाको भेद करके अक्षत शरी-रसे उसमेंसे आगमन करनेमें प्रवृत्त, इन दोनोंका कर्त्ता है, इसलिये वृत्तावृत्तकर ३५७, संसार सिन्धुतल अथवा आधार है, इस ही कारण ताल ३५८, वसन्तरूप होनेसे मधु ३५९, मधुकी भांति पिङ्गल नेत्र है, इसलिये मधुक-लोचन ३६०, वृहस्पतिकी भांति पुरोहित कर्म्म-कर्त्ता है, इसलिये वाचस्पत्य ३६१, शाखा विशेषका प्रवर्त्तक अध्वर्य्यु कर्म्म कर्त्ता है इस ही कारण वाजसन ३६२, नित्य आश्रम पूजित ३६३, ब्रह्मचारी ३६४, लोकचारी ३६५, सर्व्व-चारी ३६६, विचारवित् ३६७, अन्तर्य्यामी रूपसे नियन्ता है, इस ही निमित्त ईशान ३६८, सर्व्व-व्यापी होनेसे ईश्वर ३६९, लोगोंके पुण्य-पापके फल देनेके लिये गिनती करता है इसलिये काल ३७० ब्राह्मीनिशा महा प्रलयकालमें प्रत्य-गानन्द अनुभव करता है, इस ही निमित्त निशाचारी ३७१, रक्षाकारी धनुर्द्धारी होनेसे पिनाकधिक् ३७२, दैत्यरूप लक्ष्यमें अन्तर्य्यामी रूपसे स्थित है, इसलिये निमित्तस्थ ३७३, विश्वरूप होनेसे लक्ष्य स्वरूप है, इस ही लिये निमित्त ३७४, ज्ञान-सम्पत्तियुक्त है, इसलिये नन्दी ३७५, सम्पत्ति कार होनेसे नन्दिकर ३७६, हनुमान रूपसे रामके सहाय होनेसे हरि ३७७, निजवाहन नन्दीका ईश्वर है, इसलिये नन्दी-श्वर ३७८, गण रूपसे नंदी ३७९, आनंददाता होनेसे नंदन ३८०, दी हुई सम्पत्तिकी वृद्धि करता है, इसलिये नंदिवर्द्धन ३८१, इन्द्रादि-कोंका भी ऐश्वर्य्य हरण करता है, इस ही

लिये भगदारी ३८२, सत्य् रूप होनेसे निहन्ता ३८३, चौंसठ कलाके आश्रय होनेसे काल ३८४, अत्यन्त वृहत् है इसलिये ब्रह्मा ३८५, जगत्पिता विष्णुका भी पिता है, इस ही निमित्त पितामह विधातरूप चतुर्म्मुख है ३८६, सुरासुर प्रभृति समस्त महत् प्राणी उसके लिङ्गकी पूजा करते हैं, इस ही लिये महालिङ्ग ३८७, रमणीय वेषधारी होनेसे चारुलिङ्ग ३८८, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंका अध्यक्ष अर्थात् प्रवृत्ति निवृत्तिका नियामक है, इस ही लिये लिङ्गाध्यक्ष ३८९, सुराध्यक्ष ३९०, योगाध्यक्ष ३९१, पुण्य-पापके तारतम्यविशिष्ट सत्य त्रेता द्वापर और कलियुगका प्रवर्त्तक है इसलिये युगावह ३९२, धर्म्माधर्म्मका फलदाता है, इसहीसे बीजाध्यक्ष ३९३, बीजकर्त्ता ३९४, आत्माको अधिकार करके प्रवृत्त शास्त्रोंका अनुसरण करनेसे साधक है, इस ही निमित्त अध्यात्मानुगत ३९५, धृति प्रभृति सब बल उसमें बर्त्तमान रहते हैं, इसलिये बल ३९६, भारतादि रूपी होनेसे इतिहास ३९७, यज्ञकल्प प्रयोग बिधिके सहित सम्बन्धविशिष्ट है, इसलिये सङ्कल्प ३९८, तर्कशास्त्रका प्रणेता होनेसे गौतम ३९९, चन्द्ररूप है; इसलिये निशाकर ४००, शत्रुओंको दमन करता है, इसलिये दम्भ ४०१, अदम्भ ४०२, धर्म्मध्वजिलसे रहित है; इसलिये वैदम्भ ४०३, भक्ताधीन होनेसे वश्य ४०४, दूसरेको वशीभूत करनेमें समर्थ है, इसलिये वशकर ४०५, देवासुर परस्परके वैरकर्त्ता होनेसे कलि ४०६, चौदहों भुवनोंकी सृष्टि करनेवाला है, इसलिये लोककर्त्ता ४०७, ब्रह्मादि स्तम्बपर्य्यन्त बीज और पशुओंका पालक है, इस निमित्त पशुपति ४०८, पञ्चभूतोंका स्रष्टा होनेसे महाकर्त्ता ४०९, अभोक्ता होनेसे अनौषध ४१०, चरणहीन होनेसे अक्षर ४११, अनादि और ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ आनन्दमय है, इसलिये परब्रह्म ४१२, बलके अभिमानी देवतारूप होनेसे बलवत् ४१३, शतक्रतु रूप होनेसे शक्र ४१४, नीति ४१५, अनीति ४१६, शुद्धात्मा ४१७, शुद्ध ४१८, मान्य ४१९, गमनशील संसारस्वरूप है, इसलिये गतागत ४२०, बहुप्रसाद ४२१, सुस्वप्न ४२२, बिम्ब प्रतिबिम्ब दर्शनास्पद है, इस ही निमित्त दर्पण ४२३, अमित्रजित् ४२४, बेदकार ४२५, मन्त्रकार ४२६, बिद्वान् ४२७, समरमर्द्दन ४२८, प्रलयकालके महामेघमण्डलमें अधिष्ठात्री रूपसे बास करता है, इस ही लिये महामेघनिवासी ४२९, प्रलय कर्त्तृत्वके निमित्त महाघोर ४३०, सभी उसके वशमें हैं, इसलिये वशी ४३१, संहारकर्त्ता है, इसलिये हर ४३२, अग्निकी भांति तेजस्वी है, इसलिये अग्निज्वाल ४३३, महाज्वाल ४३४, कालाग्नि रूपसे सबको जलानेके समय अत्यन्त धूम्रमय होनेसे अतिधूम ४३५, होमसे प्रसन्न होता है, इसलिये हुत ४३६, पय प्रभृतिस्वरूप है, इसलिये हवि ४३७, कर्म्म फल बरसानेवाला धर्म्म है, इस निमित्त बृषण ४३८, सुखदाता होनेसे शङ्कर ४३९, नित्यवर्चस्वी ४४०, बह्निरूप होनेसे धूमकेतन ४४१, मरकत वर्ण होनेसे नील ४४२, नील वा अनील लिङ्गमें नित्य सन्निहित रहता है, इसलिये अङ्गलुब्ध ४४३, कल्याणका हेतु है, इसलिये शोभन ४४४, प्रतिबन्धरहित मनोरथोंकी वृष्टि करनेवाला है, इस ही लिये निरवग्रह ४४५, स्वस्तिद ४४६, अस्तिभाव है, इस ही लिये स्वति भाव ४४७, यज्ञमें भगवान कहाता है, इसलिये भागा ४४८, भागकर ४४९, लघु ४५०, असंगरूप होनेसे उत्संग ४५१, महांग ४५२, प्रजानात्मक कन्दर्प है, इस ही लिये महागभपरायण ४५३, बिष्णु रूप है, इसलिये कृष्णवर्ण ४५४, साम्बरूप होनेसे श्वेतवर्ण और सुवर्ण ४५५, समस्त प्राणियोंकी इन्द्रिय ४५६, महापाद ४५७, महाहस्त, ४५८ महाकाय ४५९, महायशा ४६०, महामूर्द्धा, ४६१ महाप्रमाण है, इसलिये महामात ४६२, महानेत्र ४६३, निशाको

भांति अविद्या उसमें लीन होती है, इस ही कारण निशालय ४६४, महान्तक ४६५, महाकर्णा ४६६, महोष्ट ४६७, महाहनु ४६८, महानाश ४६९, महाकम्बु ४७०, महाग्रीव ४७१, श्मशानभाक् ४७२, महारक्षा ४७३, महोरस्क ४७४, अन्तरात्मा ४७५, अङ्काधिरोपित मृगचन्द्र रूपसे मृगालय ४७६, जैसे वृक्षोंके फल लटके रहते हैं, वैसे ही ब्रह्माण्ड उसे अवलम्बन कर रहा है, इस ही निमित्त लम्बन ४७७, प्रलयकालमें विश्वग्रास करनेके निमित्त लम्बित ओष्ठ ४७८, महामाय ४७९, क्षीरोदसमुद्र रूप होनेसे पयोनिधि ४८०, महादन्त ४८१, महादंष्ट्र ४८२, महाजिह्वा ४८३, महामुख ४८४, नृसिंह रूप होनेसे महानख ४८५, वराहरूप होनेसे महारोमा ४८६, महाकेश ४८७, महाजट ४८८, प्रसन्न ४८९, प्रसाद ४९०, प्रत्यय ४९१, युद्धमें पर्व्वत ही उसके जयके कारण हैं इस ही लिये गिरिसाधन ४९२, पिताकी भांति प्रजासमूहके ऊपर स्नेह करता है, इसलिये स्नेहन ४९३, स्नेह न करनेसे अस्नेहन ४९४, अजित ४९५, महामुनि ४९६, संसार वृक्ष ही उसका आकार है, इसलिये वृक्षाकार ४९७, वृक्षकेतु ४९८, अनल ४९९, वायुवहन ५००, क्षुद्र पर्व्वतोंमें गमनशील होनेसे गण्डली ५०१, मेरुधामा ५०२, देवाधिपति ५०३, आथर्व्वशीर्ष ५०४, सामास्य ५०५, ऋक्सहस्रामितेक्षण ५०६, यजु ५०७, पाजभुज-गुह्य ५०८, (उपनिषद्देश) कर्म्मकाण्ड रूपसे प्रकाश ५०९, मनुष्य पशु आदि रूप है, इसलिये जंगम ५१०, उसके निकट प्रार्थना करनेसे निष्फल नहीं होती, इस ही निमित्त अमोघार्थ ५११, दयालु है, इस ही लिये प्रसाद ५१२, सुखप्राप्त होनेसे अभिगम्य ५१३, सुदर्शन ५१४, प्रीणन रूप होनेसे उपकार ५१५, सुखदायी रूप होनेसे प्रिय ५१६, सम्मुख आगमन करनेसे सर्व्व ५१७, स्वर्गादि प्रियवस्तु रूप होनेसे कनक ५१८, काञ्चनच्छवि ५१९, जगत्का मध्यस्थल होनेसे नाभि ५२०, यज्ञ फलकी वृद्धि करता है, इसलिये नन्दिकर ५२१, यज्ञश्रद्धा रूपसे भाव ५२२, ब्रह्माण्डकी रचना करता है, इसलिये पुष्करस्थ पति ५२३, पर्व्वतादि स्थावररूप होनेसे स्थिर ५२४, मनुष्योंके गर्भवासादि ५२५, दश प्रकारकी अवस्थाके बीच मृत्यु दशम है, स्वर्ग एकादश और मोक्ष द्वादश है, तत्स्वरूप होनेसे द्वादश ५२६, त्रासन ५२७, आद्य ५२८, जीव ब्रह्मकी संगति करणरूपी योग है, इसलिये यज्ञ ५२९, योगके द्वारा प्राप्त होता है, इसलिये यज्ञ समाहित ५३०, अप्रकाश इसलिये नक्त ५३१, कलिके कार्य्य काम क्रोधादि रूप होनेसे कलि जन्म मरण प्रवाहको सञ्चालन करता है, इसलिये काल ५३२, मकराकार शिशु मार चक्रकालके व्यापक और तत्स्वरूप होनेसे मकर ५३३, मृत्युके द्वारा पूजित है, इसलिये काल पूजित ५३४, प्रमथादियुक्त होनेसे सगण ५३५, बाणादिको अपना भक्त किया था, इसलिये गणकर ५३६, भूतगणोंके योगक्षेम निर्व्वाह कर्त्ता ब्रह्मा उसका सारथि कहा जाता हैं, इस ही निमित्त भूतवाहनसारथि ५३७, पापोंका भक्षन करता है, इस ही लिये भषनीय ५३८, भस्मसे जगत्की रक्षा करता है, इस ही निमित्त भस्मगोप्ता ५३९, मरकणक नामक मुनि निज हाथसे बाहर हुए शाक रसको देखकर नाचने लगे, उनके नृत्यकी शान्तिके लिये महादेवने अपनी अङ्गुली काटके उसमेंसे भस्म दिखाया था, इसलिये उसका शरीर केवल भस्ममय होनेसे भस्मभूत ५४०, कल्पवृक्ष स्वरूप है, इसलिये तरु ५४१, भृंगिरिट नान्दिकेश्वर प्रभृति गण स्वरूप, है, इसलिये गण ५४२, चौदहों भुवनोंका पालक होनेसे लोकपाल ५४३, लोकातीत होनेसे अलोक ५४४, पूर्ण है; इस ही निमित्त महात्मा ५४५, सर्व्व पूजित ५४६, शुद्ध है इसलिये शुक्ल ५४७, काय मन और वचन, ये तीनों ही उसके पवित्र हैं इस ही कारण त्रिशुक्ल

५४८, कैवल्य प्राप्त होनेसे सम्पन्न ५४९, असङ्ग होनेसे शुचि ५५०, पूर्व्वाचार्य्योंसे सेवित है, इस लिये भूतनिषेवित ५५१, चारों आश्रमोंमें धर्म्म रूपसे स्थित है, इस ही निमित्त आश्रमस्थ ५५२, धर्म्मके पूर्व्वरूप यज्ञादिकर्म्म और अवस्थासे युक्त होनेसे क्रियावस्थ ५५३, विश्वकर्म्माका कौशलस्वरूप है, इसलिये विश्वकर्म्ममति ५५४, लक्ष्मी स्वरूपसे प्रार्थनीय है, इसलिये वर ५५५, दीर्घबाहु होनेसे विशालशाख ५५६, ताम्रोष्ट ५५७, जलस्वरूप होनेसे अम्बु जाल ५५८, पर्व्वतादिरूप है, इसलिये सुनिश्चल ५५९, कपिल ५६०, कपिश ५६१, शुक्ल ५६२, जीवन कालस्वरूप होनेसे आयु ५६३, प्राचीनरूपसे पर ५६४, अर्व्वाचीन रूपसे अपर ५६५, चित्ररथ आदि रूपसे गन्धर्व्व ५६६, देवमाता वा पृथिवी रूपसे अदिति ५६७, गरुड़रूपसे तार्च्य ५६८, सुविज्ञेय ५६९, शोभनवाक् होनेसे सुशारद ५७०, परश्वधायुध ५७१, देव ५७२, अनुकारी ५७३, सुवान्धव ५७४, तुम्ववीण ५७५, महाक्रोध ५७६, उर्द्धरेता ५७७, जलेशय ५७८, उग्र ५७९, बंशकर ५८०, बंश ५८१, बंशनाद ५८२, अनिन्दित ५८३, सर्व्वङ्गरूप ५८४, मायावी ५८५, सुहृद ५८६, अनिल ५८७, अनल ५८८, बन्धन ५८९, बन्धकर्त्ता ५९०, सुबन्धन विमोचन ५९१, यज्ञशत्रु दैत्योंके संग वास करता है, इस लिये सनच्चारी ५९२, कामविजयी योगियोंके संग निवास करता है, इस निमित्त सकामारी ५९३, महादंष्ट्र ५९४, महायुध ५९५, दारुकावनमें अत्यन्त मनोहर रूप धरके दिगम्बर होकर ऋषिपत्नियोंके चित्तको मोहित करनेमें प्रवृत्त होनेपर ऋषियोंने उसको अनेक प्रकारसे निन्दा की थी, इस ही निमित्त बहुधानिन्दित ५९६, मुनियोंको मोहित किया था, इस ही निमित्त सर्व्व ५९७, मुनियोंका कल्याण उसकी मुट्ठीमें था, इसलिये शङ्कर ५९८, उन लोगोंकी शङ्का हरण की थी, इस ही कारण शङ्कर ५९९, अधन ६००, अमरेश ६०१, महादेव ६०२, विश्वदेव ६०३, सुरारिहा ६०४, पातालमें शेषरूपसे वर्त्तमान है, इसलिये अहि ६०५, वायुकी भांति अप्रत्यक्ष है, इसलिये अनिलाभ ६०६, अत्यन्त ज्ञानवान् है, इसलिये चेकितान ६०७, भोक्ताकी भोग्यवस्तुस्वरूप है, इस निमित्त हवि ६०८, एकादश रुद्रोंके बीच अन्यतम है, इस ही कारण अजेकपात् ६०९, ब्रह्माण्डके अधीश्वर होनेसे कापाली ६१०, सर्व्व जीवस्वरूपसे त्रिशङ्कु ६११, अजित ६१२, शिव ६१३, धन्वन्तरि ६१४, धूमकेतु ६१५, स्कन्द ६१६, वैश्रवण ६१७, धाता ६१८, शक्र ६१९, विष्णु ६२०, मित्र ६२१, त्वष्टा ६२२, ध्रुव ६२३, धर ६२४, प्रभाव ६२५, सर्व्वग ६२६, वायु ६२७, अर्य्यमा ६२८, सविता ६२९, रवि ६३०, नृपति विशेषरूपसे उषंगु ६३१, विधाता ६३२, मान्धाता (नृपविशेष) ६३३, भूतभावन ६३४, विभु ६३५, श्वेत पीत आदि वर्णोंको विविधरूपसे उत्पन्न किया है, इसलिये वर्ण-विभावी ६३६, सर्व्वकामवह ६३७, पद्म नाभ ६३८, महागर्भ ६३९, चन्द्रवक्र ६४०, अनिल ६४१, अनल वायु और अग्निके अधिष्ठाती देवतास्वरूप ६४२, बलवान् ६४३, उपशान्त ६४४, पुराण ६४५, पुण्यचञ्चु ६४६, लक्ष्मीरूप ६४७, कुरुक्षेत्रके निर्म्माता होनेसे कुरुकर्त्ता ६४८, कुरुवासी ६४९, कुरुभूत ६५०, ऐश्वर्य्यज्ञान वैराग्य प्रभृतिके भी औषधका उद्दीपक है, इस ही निमित्त गुणौषध ६५१, सबका सुषुप्ति स्थान है, इसलिये सर्व्वाशय ६५२, अन्तर्व्वेदिस्थ कुशरूपसे हवि भक्षण करता है, इसीसे दर्भचारी ६५३, समस्त प्राणियोंका पति ६५४, देवदेव ६५५, सुखासक्त ६५६, कारण और कार्य्यरूपसे सदसत ६५७, सर्व्वरत्नवित् ६५८, कैलास गिरवासी ६५९, हिमवत् गिरिसंश्रय ६६०, महाप्रवाह रूपसे कुलहारी ६६१, पुष्कर आदि महातड़ागोंका कर्त्ता है, इसलिये कुलकर्त्ता ६६२, बहुविध

६६३, बहुप्रद ६६४, वणिज ६६५, तक्ष रूपसे वर्द्धकी ६६६, तक्षणीय संसारवृक्ष है, इसलिये वृक्ष ६६७, वकुल (वृक्षविशेष) ६६८, चन्दन ६६९, छद (सप्तपर्णा) ६७०, सारग्रीव (दृढ़ कन्धर) ६७१, महावक्र ६७२, आलोल ६७३, व्रीह्यियवादि रूपसे महौषध ६७४, सिद्धार्थकारी ६७५, सिद्धार्थ ६७६, सिंहनाद ६७७, सिंह-दंष्ट्र ६७८, सिंहग ६७९, सिंहवाहन ६८०, प्रभावात्मा ६८१, जगत्काल (जगत् ग्रासकर्त्ता) ६८२, लोकहित ६८३, तारण कर्त्ता होनेसे तरु ६८४, सारंग (पक्षिविशेष) ६८५, नवचक्रांग (नवीनहंस) ६८६, केतुमाली (मयूर कुक्कट आदि पक्षिरूप) ६८७, धर्म्मपरीक्षाके स्थानकी रक्षा करता है, इसलिये सभावन ६८८, भूतालय ६८९, भूतपति ६९०, अहोरात्र ६९१, अनिन्दित ६९२, समस्त भूतोंको वहन करता है, इसही निमित्त सर्व्वभूतवाहिता ६९३, सर्व्वभूत निलय ६९४, विभु ६९५, वर्त्तमान है, इसलिये भव ६९६, अमोघ (नैष्फल्य रहित) ६९७, संयत (धारणा ध्यान समाधिमान्) ६९८, उच्चैश्रवादि स्वरूपसे अश्व ६९९, भोजन (अन्नदाता) ७००, प्राणधारण ७०१, धृतिमान् ७०२, मतिमान् ७०३, दक्ष (उत्साही) ७०४, सत्कृत (आदरयुक्त) ७०५, धर्म्माधर्म्मका फल देनेवाला है, इस ही निमित्त युगाधिप ७०६, इन्द्रियोंका पालयिता है, इसलिये गोपाली ७०७, किरणोंका पति सूर्य्यादि है, इस ही निमित्त गोपति ७०८, ग्राम (समूह) ७०९, गोचर्म्मवसन ७१०, भक्तोंके दुःख हरनेसे हरि ७११, हिरण्यबाहु ७१२, योगियोंके शरीरकी रक्षा करता हैं, इस ही निमित्त गुहापाल ७१३, प्रकृष्टारि (उत्तम साधक) ७१४, महाहर्ष ७१५, जितकाम ७१६, जितेन्द्रिय ७१७, गान्धार (स्वरविशेष) ७१८, सुवास ७१९, तपःसक्त ७२०, रति (प्रीतिरूप) ७२१, नर (विराटरूपसे ब्रह्माण्डप्रापक) ७२२, महागीत ७२३, महानृत्य ७२४, अप्सराओंसे सेवित ७२५, वृष ही उसका केतु अर्थात् ध्वजा है, इस ही निमित्त महाकेतु ७२६, मेरु पर्व्वतरूपी महाधातु ७२७, अनेक शिखर प्रचारी होनेसे नैकसानुचर ७२८, दुर्गम है, इसलिये चल ७२९, वचनके अगोचर होनेसे भी गुरुओंके द्वारा उपदेशके योग्य है, इसलिये आवेदनीय ७३०, साक्षात् उपदेश स्वरूप है, इसलिये आवेश ७३१, सर्व्वगन्ध सुखावह ७३२, पुरद्वार आदि रूपसे तोरण ७३३, तारण ७३४, वात ७३५, परिविध दुर्गादि स्वरूप ७३६, पति तथा खेचर गरुड़ आदि रूप ७३७, संयोगवर्द्धन-वृद्ध (स्त्रीपुरुषोंका सम्बन्ध) ७३८, ज्ञानैश्वर्य्य आदि गुणाधिक होनेसे अतिवृद्ध ७३९, नित्य आत्मसहाय ७४०, देवासुरपति ७४१, पति ७४२, समरमें सन्नद्ध है, इसलिये युक्त ७४३, शत्रुमर्द्दन बाहु-विशिष्ट है, इसलिये युक्तबाहु ७४४, स्वर्गमें इन्द्रका आराधनीय है, इसलिये देव ७४५, सर्व्वसहन सामर्थ्यप्रद है, इस ही लिये आषाढ़ ७४६, सुषाढ़ ७४७, ध्रुव (अचञ्चल) ७४८, श्वेत है इससे हरिण और संहार कर्त्ता होनेसे हर ७४९, स्वर्गच्युत पुरुषोंको वपुप्रदाता है, इसलिये वपुः ७५०, धनसे भी अधिक प्रिय है, इसलिये वसुश्रेष्ठ ७५१, शिष्टाचार स्वरूप वा महापद्म ७५२, विचारपूर्व्वक ब्रह्माका सिर हरण किया था, इस ही निमित्त शिरोहारी ७५३, सर्व्व लक्षण लक्षित (सामुद्रिकमें कहे हुए सब लक्षणोंसे युक्त) ७५४, रथ सन्धान दारु होनेसे अक्ष ७५५, रथयोगी ७५६, महाबल ७५७, देवस्वरूप होनेसे समाम्नाय ७५८, स्मृति इतिहास पुराण और आगम आदि रूपसे असम्नाय ७५९, तीर्थदेव ७६०, महारथ ७६१, अचेतन प्रपञ्च रूपसे निर्ज्जीव ७६२, अचेतन देहादिके चैतन्यप्रदाता होनेसे जीवन ७६३, प्रणवादि रूपसे मन्त्र ७६४, शान्तदृष्टि है, इसलिये शुभाक्ष ७६५, संहर्त्ता रूपसे बहुकर्कश

प्रचुर रत्न समन्वित हैं, इसलिये रत्नप्रभूत रत्नाङ्ग ७६८, महार्णव निपातवित् ७६९, संसार वृक्षका मूल ७७०, अत्यन्त शोभायमान है, इसलिये विशाल ७७१, अमृत ७७२, कार्य्य कारण रूपसे व्यक्ताव्यक्ति ७७३, तपोनिधि ७७४, परम पदमें आरोहण करनेके वास्ते इच्छुक है, इसलिये आरोहण और उसमें अधिरूढ़ होनेसे अधिरोहन ७७५, सदाचार सम्पन्न है, इसलिये शीलधारी ७७६, महायशा ७७७, समस्त सेनाका अलङ्कार स्वरूप है, इसलिये सेनाकल्प ७७८, दिव्यभूषण है, इसलिये महाकल्प ७७९, योग (चित्तवृत्ति-निरोध) ७८०, सब युग उसके हाथमें विद्यमान हैं, इसलिये युगकर ७८१, पदाभिमानी देवता होनेसे हरि ७८२, युगरूप ७८३, महारूप ७८४, महानागहन (गजासुरघ्न) ७८५, बध (मृत्यु) ७८६, न्याययुक्त दाता होनेसे निर्व्वाण ७८७, त्रिविक्रम है, इस ही लिये पाद ७८८, परोक्ष ज्ञानी है, इसलिये पण्डित ७८९, अचलोपम (निश्चल) ७९०, बहुमान ७९१, महामान ७९२, शशीहर सुलोचन ७९३, विस्तीर्ण लवण समुद्र रूप होनेसे विस्तार लवणकूप ७९४, कलिके बहिर्भूत होनेसे त्रियुग ७९५, सफलोदय ७९६, शास्त्र आचार्य्य ध्यान, ये तीनों उसके नेत्र सदृश हैं, इसलिये त्रिनेत्र ७९७, भूम्यादि अष्टमूर्त्तियोंका विशेष रूपसे निरन्वय है, इस ही निमित्त विषणाङ्ग ७९८, कानमें कुण्डल धारण करता है, इस ही लिये मणिविद्ध ७९९, जटाधर ८००, विन्दुविसर्ग रूपसे व्यक्ति-वर्ण है, इसलिये सुमुख ८०१, शर ८०२, सर्व्वायुध ८०३, सब कुछ सहता है, इसलिये सह ८०४, निवेदन ८०५, सुखाजात ८०६, सुगन्धार ८०७, महाधनु ८०८, गन्धपाली भगवान् ८०९, समस्त कर्म्मोंके उत्थान ८१०; जगत्को आलोड़ित करनेमें समर्थ होनेसे महाप्रलयानिल है, इसलिये सत्थान बहुलवायु ८११, पूर्ण है, इसलिये सकल ८१२, सर्व्वलोचन ८१३, तरन्ताल (करतल वाद्य विशेष) ८१४, करस्थाली (हाथ ही भोजनका पात्र है) ८१५, दृढ़ शरीर है, इसलिये ऊर्द्ध-संहनन ८१६, महान् ८१७, छत्र ८१८, सुछत्र ८१९, विख्यात लोक ८२०, त्रिविक्रम इससे पदके सहारे तीनों लोकोंको आक्रमण किया था, इस ही निमित्त सर्व्वाश्रयक्रम ८२१, मुण्ड ८२२, विरूप ८२३, विकृत ८२४, दण्डी ८२५, कुण्डी ८२६, कर्म्मके द्वारा अप्राप्य है, इसलिये विकुर्व्वाण ८२७, सिंहरूपसे हर्य्यक्ष ८२८, सर्व्वदिक् रूपसे ककुभ ८२९, बज्री ८३०, शतजिह्व ८३१, सहस्रपात् ८३२, सहस्रमूर्द्धा ८३३, देवेन्द्र ८३४, सर्व्वदेवमय ८३५, गुरु ८३६, सहस्रबाहु ८३७, वह सर्व्वत्र प्राप्त हो सकता है, इसलिये सर्व्वांग ८३८, शरण्य ८३९, सर्व्वलोककृत ८४०, पवित्र ८४१, ककुद उच्च स्थानोंकी भांति बीज शक्ति और कीलक, ये तीनों ही उसके मन्त्र हैं, इस ही निमित्त त्रिककुन्मन्त्र ८४२, अदितिके कनिष्ट पुत्र वामनरूपी विष्णु स्वरूप है, इसलिये कनिष्ट ८४३, हरिहर मूर्त्ति रूपसे कृष्ण पिंगल ८४४, ब्रह्मदण्ड विनिर्म्माता ८४५, शतघ्नी-पाश शक्तिमान ८४६, ब्रह्मारूपसे पद्मगर्भ ८४७, महागर्भ ८४८, ब्रह्मगर्भ ८४९, वह समुद्रसे प्रकट हुआ था इसलिये जलोद्भव ८५०, रश्मि स्वरूपसे गभस्ति ८५१, वेदकर्त्ता होनेसे ब्रह्मकृत ८५२, वेदध्यायी है, इसलिये ब्रह्मा ८५३, वेदार्थवित् है, इसलिये ब्रह्मवित् ८५४, ब्रह्मनिष्ठ है, इसलिये ब्राह्मण ८५५, ब्रह्मनिष्ठोंका परम अयन है, इसलिये गति ८५६, अनन्तरूप ८५७, अनेकात्मा ८५८, ब्रह्माके विषयमें दृष्टि रखता है, इसलिये तिग्मतेजा ८५९ ऊर्द्धगात्मा ८६०, पशुपति ८६१, वातरंहा ८६२, मनोजव ८६३, शरीरमें चन्दन लगानेसे चन्दनी ८६४, किसी समयमें ब्रह्मा निज आश्रय पद्मनालकी जड़ देखनेकी इच्छासे उस मार्गसे गमन करके उसकी आदि न देख

सकी, इसलिये उसका अनन्तरूप होनेसे पद्मनाभाग्र ८६५, किसी समय ब्रह्माने विष्णुके विषयमें स्पर्द्धा करके गऊसे कहा तुम साची दो, कि मैंने महादेवका शिरस्थल देखा है, सुरभीने ब्रह्माके भयसे मिथ्या साची दी थी। अनन्तर महादेवने उसे यह कहके शाप दिया, कि तेरी सब सन्तति अपवित्र वस्तु भचण करेगी,— इस ही शापके कारण कामधेनुकी ऊर्द्ध पदसे अधःपदमें लेआनेसे सुरभ्युत्तरण ८६६, सब जीवोंका नाश करता है, इसलिये नर ८६७, कर्णिका महा स्रग्वी ८६८, नीलमौलि (नीलमणिमय किरीट शोभित मौलि) ८६९, पिनाकधृक् ८७०, उमानाम्नी ब्रह्मविद्याके यथेष्ट विनियोगके हेतु स्वामी है, इसलिये उमापति ८७१, ब्रह्मविद्यासे प्रकाशीकृत होनेसे उमाकान्त ८७२, जाह्नवीधृक् ८७३, पार्व्वतीका पति है, इसलिये उमाधव ८७४, आद्यभूमिका उद्धारकर्त्ता है, इस ही निमित्त वरवराह ८७५, अनेक अवतारोंके द्वारा जगत्‌को पालन करता है, इस ही निमित्त जगत्पालन ८७६, वरद होनेसे वरेण्य ८७७, हयग्रीव रूपसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण किया था, इस ही लिये सुमहास्वन ८७८, महाप्रसन्न ८७९, दमन, ८८० शत्रुहा अर्द्धनारी नटेश्वर रूपसे दचिणार्द्धमें कर्पूरगौर और वामार्द्धमें कनकपिंगल है, इस ही निमित्त श्वेतपिंगल ८८१, प्रीतात्मा अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय, इन पांचो आत्मासे पृथक् आनन्द मात्र स्वरूप है, इस ही निमित्त परमात्मा ८८२, निर्म्मल शुद्धचित्त होनेसे प्रयतात्मा ८८३, त्रिगुणात्मक जगत्कारण प्रधानाख्य अज्ञानका अधिष्ठान है, इसलिये प्रधानधृक् ८८४, पञ्चवक्र रूपसे सर्व्व पार्श्व मुख ८८५, चन्द्र सूर्य्य और अग्निरूप तीनों नेत्रोंसे युक्त है, इसलिये त्र्यच ८८६, पुण्यानुरूप प्रसाद स्वरूप है, इसहीसे सर्व्वसाधारण वर ८८७, चराचरात्मा ८८८, सूक्ष्मात्मा ८८९, अमृत ८९०, पृथ्वीपति धर्म्मका ईश्वर है, इस ही निमित्त गो-वृषेश्वर ८९१, देवोंका देवता और साध्योंका ऋषि है, इसलिये साध्यर्षि ८९२, अदितिके पुत्र वसु स्वरूप होनेसे आदित्यवसु ८९३, अंशुजालवान होनेसे विवस्वान ८९४, जगत्प्रसव कर्त्ता होनेसे सविता और यज्ञीय सोम स्वरूप है, इसलिये अमृत ८९५, पुराण इतिहासोंका कर्त्ता है, इसलिये व्यास ८९६, उसके बनाये हुए पुराण आदिमें सर्ग सूत्र तथा भाष्यादि रूपसे सुसंचेप वा विस्तर ८९७, समष्टिरूप वैश्वानर है, इसलिये पर्य्ययनर ८९८, ऋतु ८९९, सम्वत्सर ९००, मास ९०१, पच ९०२, ऋतुओंकी संख्या समाप्त करनेवाली संक्रान्ति दर्शपौर्णमासादि रूपसे संख्यासमापन ९०३, कला ९०४, काष्ठा ९०५, लव ९०६, मात्रा ९०७, मुहूर्त्त अहःचपा ९०८, चण ९०९, विश्वचेत्र ९१०, प्रजाबीज ९११, लिंग ९१२, आद्यनिर्गम (अङ्कुर रूपी) ९१३, सत् ९१४, असत् ९१५, व्यक्त (इन्द्रिये ग्राह्य) ९१६, मैं नहीं जानता,— यह अनुभव वेद्य अज्ञान होनेसे अव्यक्त ९१७, पिता ९१८, माता ९१९, पितामह ९२०, तपरूपसे स्वर्गद्वार ९२१, राजरूपसे प्रजाद्वार ९२२, वैराग्य रूपसे मोच द्वार ९२३, स्वर्ग स्वरूपसे त्रिपिष्टप ९२४, मोचरूपसे निर्व्वाण ९२५, आनंद जनक होनेसे ह्लादन ९२६, ब्रह्मलोक ९२७, सत्यलोक परागति ९२८, देवसुर विनिर्म्माता ९२९, देवासुर परायण ९३०, देवासुर गुरु ९३१, देव ९३२, देवासुर नमस्कृत ९३३, देवासुर महामात्र ९३४, देवासुर गणाश्रय वा देवासुर गणाध्यच ९३५, देवासुरगणाग्रणी ९३६, इन्द्रादिको अतिक्रमकरके स्वयं प्रकाशमान है, इसलिये देवातिदेव ९३७, देवर्षि ९३८, देवासुर वरप्रद ९३९, अन्तर्य्यामी रूपसे देवासुरेश्वर ९४०, जगत् गर्भमय होनेसे विश्व ९४१, अन्तर्य्यामी ईश्वरका अधिष्ठान है, इसलिये देवासुर महेश्वर ९४२, सर्व्व देवमय ९४३, अचिन्त्य, ९४४, देवतात्मा ९४५

आत्मसम्भव (स्वतःसिद्ध) ६४६, उद्भिद ६४७, त्रिविक्रम ६४८, विद्यावान है, इसलिये वैद्य ६४६, निर्म्मल होनेसे विरज ६५०, रजोगुणसे रहित है, इसलिये नीरज ६५१, अविनाशी होनेसे अमर ६५२, स्तवनीय होनेसे इड्य ६५३, कालहस्तीश्वर नाम वायव्यलिंग रूपसे हस्तीश्वर ६५४, व्याघ्रेश्वर नामक लिंग स्वरूपसे व्याघ्र ६५५, देवताओंके बीच पराक्रमी है, इस ही निमित्त देवसिंह ६५६, मनुष्योंके बीच श्रेष्ठ है, इस ही लिये नरर्षभ ६५७, विशेष प्राज्ञ है, इसलिये विबुध ६५८, सबसे अगाड़ी यज्ञ भाग वरण करता है, इस ही लिये अग्रवर ६५६, दुर्लच्य रूपसे सूक्ष्म ६६०, सर्व्वदेव ६६१, तपोमय ६६२, सुयुक्त ६६३, शोभन ६६४, वज्री ६६५, प्रास आदि अस्त्रोंकी उत्पत्तिका कारण है, इसलिये प्रास प्रभाव ६६६, अव्यय ६६७, कुमार रूपसे गुह ६६८, आनंदकी पराकाष्ठा स्वरूप है, इसलिये कान्त ६६६, अपनेसे अभिन्न है, इसलिये निजसर्ग ६७०, मृत्युके क्लेशसे परित्राण करता है, इस निमित्त पवित्र ६७१, सर्व्वपावन ६७२, वृषादि रूपसे शृंगी ६७३, शैल शृंगाश्रय है, इसलिये शृंगप्रिय ६७४, शनैश्चर होनेसे वभ्र ६७५, राजराज (कुवेर) ६७६, निर्दोष है, इस लिये निरामय ६७७, अभिराम ६७८, सुरगण ६७६, सर्व्वोपरम रूपसे विराम ६८०, सर्व्वसाधन ६८१, ललाटाक्ष ६८२, विश्वदेव ६८३, मृगरूप होनेसे हरिण ६८४, दिव्य तपसे युक्त तेजस्वी है, इसलिये ब्रह्मवर्चस ६८५, हिमाचल आदि रूपसे स्थावर पति ६८६, नियमेन्द्रिय बर्द्धन ६८७, सिद्धार्थ ६८८, सिद्ध भूतार्थ (द्विविध मोक्ष स्वरूप) ६८६, साधारण उपास्यसे पृथक् है, इसलिये अचिन्त्य ६६०, ब्रह्मनिष्ठ होनेसे सत्य व्रत ६६१, निर्म्मलचित्त है, इसलिये शुचि ६६२, समस्त व्रतोंका फलदाता है, इस निमित्त व्रताधिप ६६३, विश्वतेजस प्राज्ञ नाम अपर ब्रह्मसे श्रेष्ठ तुरीय सिवाश्च श्रुति-प्रसिद्ध है, इसलिये पर ६६४, देशकाल और वस्तुओंसे परिच्छेद रहित अखण्ड एक रस तन्मात्र रूपसे ब्रह्म है ६६५, भक्तोंकी परमगति ६६६, सुक्ततेजा होनेसे विमुक्त (लिङ्ग शरीरसे रहित) ६६७, श्रीमान् ६६८, श्रीवर्द्धन ६६६, नित्य रूपान्तर प्राप्त होनेसे जगत् १०००, मैंने प्रधानताके अनुसार भक्ति पूर्व्वक इस ही प्रकार भगवान्‌की स्तुति की थी ब्रह्मादि देवता और महर्षि लोग जिसे यथार्थ रूपसे नहीं जानते, उस स्तवनीय बन्दनीय और पूजनीय जगदीश्वरकी दूसरा कौन स्तुति कर सकेगा? मैंने भक्तिपूर्व्वक यज्ञपति मतिमतास्वर विभुको पुरस्कार करके उनसे सब भांतिसे अनुज्ञात होके स्तुति की थी। नित्य युक्त शुद्धचित्तवाले, भक्तजन यदि इन पुष्टिवर्द्धन नामोंसे महादेवकी स्तुति करें, तो वे स्वयं ही आत्मलाभ करनेमें समर्थ होवें। यही ब्रह्मप्राप्तिके विषयमें श्रेष्ठ साधनयुक्त विद्या है, इसे जपनेसे कैवल्य प्राप्ति होती है, इस ही लिये ऋषि तथा देववृन्द इन नामोंसे महादेवकी स्तुति किया करते हैं। आत्मसंस्थावर अर्थात् मोक्षदाता भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान् विभु महादेव एकाग्र चित्तवाले भक्तोंके द्वारा इस स्तोत्रसे स्तुतियुक्त होके प्रसन्न होते हैं। मनुष्योंके बीच जो लोग आस्तिक तथा श्रद्धावान् हैं, वे अनेक जन्ममें इस स्तवके द्वारा असन्य साधारण सनातन परम देवको बचन मन कार्य्यसे सब प्रकार आराधना करनेसे अत्यन्त तेजस्वी होते हैं। सोने, जागने, चलने, बैठने पलक खोलने और बन्द करनेके समय वे लोग महेश्वरका बार बार ध्यान करके उनके गुणोंको सुनने कहने और गाकर स्तुति करनेपर स्तूयमान होकर सन्तुष्ट और सुखी होते हैं। सहस्र कोटि जन्म तक अनेक संसार योनिमें भ्रमण करनेसे जब जीवके पाप दूर होते हैं, तब महादेवमें भक्ति उत्पन्न होती है। सब साधनोंसे युक्त मनुष्योंमें भाग्यवशसे सब

प्रकार महेश्वरमें अनन्यभक्ति अर्थात् भवसे आत्माको अभिन्न जानके उनमें जो भक्ति हुआ करती हैं, वही उत्पन्न होती है। रुद्रमें अव्यभिचारी निर्विघ्न और निर्म्मल भक्ति देवताओंको भी दुर्लभ है, वह मनुष्य मण्डलमें नहीं प्राप्त होती; उसकी कृपासे ही मनुष्योंमें भक्ति उत्पन्न होती है, जिसके सहारे उसके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले पुरुष परम सिद्धि पाते हैं। जो लोग सब प्रकारसे अनुगत होकर महेश्वरके शरणापन्न होते हैं, भक्तवत्सल महादेव उन्हें संसारसे पार करते हैं। संसारसे मुक्त करनेवाले महादेवके अतिरिक्त अन्यदेवता मनुष्योंके तपोबलको नष्ट किया करते हैं, क्यों कि मनुष्योंकी तपस्याके अतिरिक्त और दूसरी कोई भी शक्ति नहीं है। हे कृष्ण! इस ही प्रकारसे वह इन्द्र कल्प शब बुद्धि तण्डि मुनिने सदा रुद्रपति भगवान् शङ्करकी स्तुति की थी और उन्होंके द्वारा महादेवके निकट यह स्तव गाया गया था, तुम ब्राह्मणहो इसलिये इसे समझ सकोगे। यह स्तोत्र पुण्यप्रद पवित्र सदा पापोंको नष्ट करनेवाला योगद मोक्षद स्वर्ग और सन्तोषप्रद है; इस ही प्रकार जो लोग एकमात्र महादेवमें भक्ति करके इसका पाठ करते हैं, उन्हें सांख्य योगियोंकी गति प्राप्त होती है। यदि भक्त लोग एक वर्षतक महादेवके समीप इस स्तोत्रका पाठ करें, तो इच्छित फल प्राप्त कर सकते हैं। यह परम रहस्य ब्रह्माके हृदयमें स्थित था, अनन्तर ब्रह्माने इन्द्रसे कहा, इन्द्रने मृत्युसे कहा और मृत्युने रुद्रगणोंके निकट वर्णन किया, रुद्रगणोंके द्वारा यह स्तोत्र तण्डिमुनिको मालूम हुआ। तण्डिने ब्रह्म स्थानमें महत् तपस्याके सहारे इसे पाया। हे माधव! तण्डिने शुक्रसे कहा, शुक्रने गौतमसे और गौतमने वैवस्वत मनुके निकट इसे वर्णन किया; वैवस्वत मनुने नारायण नामक बुद्धिमान् प्रियपात्र साध्यको इस स्तोत्रका उपदेश किया, अच्युत साध्य नारायणने यमसे कहा, सूर्य्य पुत्र भगवान् यमने नचिकेतासे कहा। हे वृष्णिवंश प्रसूत! नचिकेताने मारकण्डेय मुनिके समीप वर्णन किया। हे जनार्द्दन! यह स्तोत्र नियमपूर्व्वक मुझे मार्कण्डेय ऋषिके समीप प्राप्त हुआ है।

हे शत्रुनाशन! मैं तुम्हें यह अभिश्रुत स्तोत्र प्रदान करूंगा। यह स्वर्ग और आरोग्य जनक आयुष्कर धनप्रद तथा वेद तुल्य हैं; यक्ष, राक्षस, दानव, पिशाच यातुधान वा सर्पादि इसमें विघ्न नहीं कर सकते। हे पार्थ! जो पुरुष पवित्र ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और अखण्डित योगसे युक्त होकर एक वर्षतक सदा इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है।

१७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महायोगी कृष्णद्वैपायन मुनि कहने लगे, हे तात! तुम स्तोत्र पाठ करो, तुम्हारा कल्याण होगा और महादेव तुमपर प्रसन्न होंगे। हे तात महाराज! पहले जब मैंने पुत्रके निमित्त सुमेरु पर्व्वतपर परम तपस्याकी थी, उस समयमें इस ही स्तोत्रका पाठ किया था। हे पाण्डुनन्दन! मैंने इस ही स्तोत्रका पाठ करके अभिलषित वस्तुओंको पाया था, वैसे ही तुम्हारी भी सब कामना महादेव पूरी करेंगे।

अनन्तर सांख्य शास्त्र बनानेवाले देवसत्तम कपिल मुनि बोले, मैंने अनेक जन्मतक भक्तिपूर्व्वक महादेवकी आराधना की थी, तब भगवान्ने मुझपर प्रसन्न होकर संसार विनाशन ज्ञान दान किया।

अनन्तर इन्द्रके प्रियमित्र आलम्बायन गोत्री करुणामय विख्यात् चारुशीर्ष बोले, हे पाण्डुनृपनन्दन! पहले समयमें मैंने गोकर्ण तीर्थमें जाके एक सौ वर्षतक तपस्या करके महादेवसे

अयोनिज दान्त धर्म्मज्ञ अत्यन्त तेजस्वी अजर और दुःख रहित सौ हजार वर्षकी परमायु विशिष्ट एक सौ पुत्र प्राप्त किया था।

भगवान् बाल्मीकि मुनि राजा युधिष्ठिरसे बोले, वेद विपरीत बाद विषयमें साग्निक मुनियोंने मुझे "ब्रह्म हत्यारा" कहा था। हे भारत! चणभरमें मैं उस अधर्म्मसे आविष्ट हुआ था, अनन्तर ब्रह्म हत्या पापसे युक्त होकर उस समय मैं अनघ अमोघ ईशान देवका शरणागत हुआ उनका शरणागत होके मैं पापसे छूटा, उसहीसे मेरा दुःख नष्ट हुआ। उस समय महादेवने मुझसे कहा, तुम्हें श्रेष्ठ यश प्राप्त होगा।

धार्म्मिक प्रवर जामदग्न्य (परशुराम) ऋषियोंके बीच प्रकाशमान सूर्य्यकी भांति निवास करते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे बोले, हे पाण्डवाग्रज! मैं पितृतुल्य ब्राह्मणोंका वध करनेसे अत्यन्त आर्त्त हुआ था। हे राजन्! अनन्तर पवित्र होकर महादेवकी शरणमें गया और इन्हीं नामोंसे उनकी स्तुतिकी अनन्तर महादेव मुझपर प्रसन्न हुए और मुझे दिव्य अस्त्रोंमें श्रेष्ठ परशु प्रदान किया फिर बोले, कि तुम्हें पाप न होगा तुम सबसे अजेय होगे, शिवविग्रह शिखण्डि मुझे ऐसा ही कहते हैं, उस धीमान्की कृपासे मैंने यह सब पाया है।

अनन्तर विश्वामित्र मुनि बोले, मैं जब चत्रिय था, तब ब्राह्मण बननेकी इच्छासे महेश्वरकी आराधना की थी, उनकी कृपासे मैंने अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाया है।

असित-देवल मुनि पाण्डु पुत्र युधिष्ठिरसे बोले, हे विभु कौन्तेय! पहले धर्म्म शास्त्रके किसी विषयकी अन्यथा करनेसे इन्द्रने क्रुद्ध होकर मुझे शाप दिया, शापके प्रभावसे मेरा धर्म्म नष्ट होगया, अनन्तर प्रभु महादेवने मुझे वह धर्म्म उत्तम यश और परमायु प्रदान किया।

वृहस्पतिके समान तेजस्वी इन्द्रके प्रियमित्र भगवान् गृत्समद अजमीढ़ वंशीय राजा युधिष्ठिरसे बोले, चाक्षुष मनुके पुत्र भगवान् वरिष्ठ अचिन्तनीय शतक्रतुके सहस्र वार्षिक यज्ञके वर्त्तमान कालमें मैंने विपरीत रीतिसे साम उच्चारण किया, तब वह मुझसे बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! यह रथान्तर साम पूर्णरूपसे उच्चारित नहीं हुआ। हे द्विजोत्तम! तुम मिथ्याभिनिवेश पाप परित्याग करके फिर बुद्धिके सहारे विचार करो। रे अत्यन्त नीच बुद्धिवाले! तैंने अयज्ञवाही पाप अर्थात् अन्यथा रीतिसे साम पाठ रूपी अपराध किया है। वह ऐसा कहके महाक्रोधसे रुष्ट होकर फिर बोले, 'तुम बुद्धिहीन, दुःखयुक्त भीत बनचारी क्रूर मृग होकर जल और वायुसे रहित अन्य हरिनोंसे वर्ज्जित अयज्ञीय वृक्षोंसे युक्त रुरु मृग तथा सिंहोंसे निसेवित बनके बीच महा दुःखसे संयुक्त होकर दश हजार तीन सौ अस्सी वर्षतक बास करोगे' हे पार्थ! उनका बचन शेष होते ही मैं मृग हुआ। अनन्तर जब मैं शिवका शरणागत हुआ तब महायोगी महेश्वर मुझसे बोले, तुम अजर अमर और दुःख रहित होगे। इन्द्रके सङ्ग तुम्हारा अवैषम्य तथा सुख समृद्धि प्राप्त हो और यज्ञ भी वर्द्धित होता रहे। भगवान् महेश्वर इस ही प्रकार अनुग्रह किया करते हैं। वेही सदा सुख दुःखके विधाता हैं, ये भगवान् बचन मन और कर्म्मसे अगोचर हैं। हे तात युधिष्ठिर! उसकी कृपासे विद्या विषयमें मेरे समान पण्डित कोई भी नहीं है।

अनन्तर मतिमताम्वर श्रीकृष्णचन्द्र फिर कहने लगे, कि मैंने सुवर्णाच महादेवको तपस्याके सहारे सन्तुष्ट किया था। हे धर्म्मराज! अन्तमें सर्व्वज्ञाता भगवान् प्रसन्न होकर मुझसे बोले, हे कृष्ण! धर्म्मका फल और कामका मूल अर्थ ही सबसे प्रिय है, तुम उस अर्थसे भी सबको अधिक प्रिय होगे, अर्थात् मेरे प्रसादसे तुम सबकी अन्तरात्माकी भांति प्रिय हुआ

करोगे और तुम युद्धमें पराजित न होगे, तुम्हारा तेज अग्निकी भांति होगा। इस ही प्रकार महादेवने मुझे सहस्र बार वर दान किया है; पहिले अवतारमें मणिमन्त पर्व्वतपर अयुत सहस्र और सौ हजार वर्षतक महादेव मेरे द्वारा पूजित हुए थे। अनन्तर भगवान्‌ने प्रसन्न होकर मुझसे यह बचन कहा, कि तुम्हारा मङ्गल हो, तुम्हारे अन्तःकरणमें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो। तब मैंने सिर झुका कर उन्हें प्रणाम करके कहा, हे सर्व्वभूत संयोगी महादेव! आप यदि मेरी परम भक्तिसे प्रसन्न हुए हैं। तो यही वर दीजिये कि सदा तुम्हारे विषयमें मेरी भक्ति स्थिर रहे, भगवान् "एव मस्तु" कहके उसही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये।

जैगीषव्य बोले, हे युधिष्ठिर! पहिले समयमें काशीपुरीमें बलशालियोंमें श्रेष्ठ भगवान्‌ने यत्न-पूर्व्वक मुझे अष्टगुण ऐश्वर्य्य दान किया था।

गार्ग बोले, हे पाण्डव! भगवानने सरस्वती नदीके तट पर मेरे मनोयज्ञके द्वारा सन्तुष्ट होकर मुझे चौंसठ अंगविशिष्ट अद्भुत कलाज्ञान दान किया और मेरे समान ब्रह्मवादी एक हजार पुत्र तथा पुत्रोंके सहित दश हजार एक सौ वर्षकी परमायु प्रदानकी है।

पराशर बोले, हे महाराज! पहिले मैंने महेश्वरको प्रसन्न करनेके लिये मन ही मन ध्यान किया था, कि महातपस्वी महातेजस्वी महायोगी महायशस्वी वेदव्यास महादेवकी कृपासे मेरा अभीप्सित पुत्र हो। अनन्तर सुर-सत्तम महादेव मेरे हृदयका अभिप्राय जानके बोले, मुझमें जो तुम भक्ति रखते हो, उसके फलसे तुम्हारे कृष्ण नामक पुत्र होगा, वह सावर्णिक मनुका सप्तर्षि होगा, वेदोंका बक्ता और कुरुवंशका रक्षाकर्त्ता होगा; जगत्‌का हितैषी तुम्हारा वह पुत्र इन्द्रका दयित वा महामुनि होगा। हे पराशर! तुम्हारा पुत्र अजर तथा अमर होगा। हे युधिष्ठिर! वह महायोगी वीर्य्यवान अक्षय और अव्यय भग-वान इस ही प्रकार कहके उसी स्थानमें अन्त-र्द्धान होगये।

माण्डव्य बोले, मैं चोर न होनेपर भी चोरोंशंकाके हेतु शूलीपर चढ़ाया गया था, उस समय शूलीपर रहके भी मैंने महेश्वरकी स्तुति की तब वह मुझसे बोले, हे विप्र! तुम शूलीसे छूट जाओगे और अर्ब्बुद वर्षतक जीवित रहोगे, तथा तुम्हें इस शूलीसे कुछ भी पीड़ा न होगी, तुम आधि व्याधिसे रहित होगे। हे मुनि! तुम्हारा यह शरीर जब धर्म्मके चौथे चरण सत्यसे उत्पन्न हुआ है, तब तुम अवश्य ही अनुपम होगे, इसलिये अपना जन्म सफल करो। तुम बिना विघ्नके सब तीर्थोंके अभिषेक जनित फल पाओगे। हे विप्र! तुम्हारे निमित्त उर्ज्जस्वल अक्षय स्वर्गका विधान करता हूं। हे महाराज! कृत्तिवास महातेजस्वी देवश्रेष्ठ वृष वाहन वरणीय भगवान् महेश्वर ऐसा कहके उस ही स्थानमें अपने गणोंके सहित अन्तर्द्धान हुए।

गालव मुनि बोले, मैंने विश्वामित्रकी आज्ञा पाके पिताके समीप गमन किया; अनन्तर माता अत्यन्त दुःखित होके रोदन करती हुई मुझसे बोली, हे निष्पाप पुत्र! तुम विश्वामित्रकी आज्ञा पाके घर आये हो, परन्तु तुम्हारे पिता तुम्हें नहीं देखते हैं। मैंने माताका बचन सुनके पितृदर्शनसे निराश होकर संयतचित्तसे महादेवका दर्शन किया, वह मुझसे बोले, हे पुत्र! तुम पितामाताके सहित मृत्यु रहित होगे इसलिये शीघ्र गृहमें प्रवेश करो। हे तात युधिष्ठिर! मैंने भगवान्‌की आज्ञानुसार फिर गृहमें जाके देखा। पिता यज्ञ करके कुशकाठ लेकर तथा हचके स्वयं गिरे हुए फलोंको स्पर्श करते हुए गृहसे आ रहे हैं। हे पाण्डव! पिताको देखके मैंने प्रणाम किया, उन्होंने हाथमें स्थित कुशकाठ

परित्याग करके आखोंमें आंसू भरके मुझे आलिङ्गन किया और मेरा मस्तक सूंघके बोली, हे पुत्र! भाग्यसे ही मैंने तुम्हें कृतविद्य होकर घरमें आया हुआ देखा।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुनियोंके कहे हुए महानुभाव महादेवके यह सब अत्यन्त अद्भुत कर्म्म सुनके विस्मित हुए अनन्तर सर्व्वनियन्ता मतिमताम्वर श्रीकृष्णचन्द्र महेन्द्र सदृश धर्म्मनिधि युधिष्ठिरसे फिर कहने लगे।

श्रीकृष्ण बोले, तपनशील सूर्य्यकी भांति उपमन्यु मुझसे कहने लगे, कि जो सब पापी मनुष्य अशुभ कर्म्मोंसे दूषित हुए हैं, वे तामस तथा राजस वृत्तिसे युक्त पुरुष महादेवको नहीं पाते और जो सब ब्राह्मण सदा उनका ध्यान किया करते हैं, वेही ईश्वरको पाते हैं; जो भक्त परमेश्वरमें सब प्रकारसे चित्त लगाता है, वह शुद्धचित्तवाले बनवासी मुनियोंके सदृश है। रुद्रदेव प्रसन्न होनेपर ब्रह्मत्व, केशवत्व, देवताओंके सहित इन्द्रत्व अथवा तीनों लोकोंका राज्य प्रदान करते हैं। जो मनुष्य मनसे भी शिवके शरणापन्न होते हैं, वे सब पापोंसे छूटके देवताओंके सङ्ग निवास किया करते हैं। जो लोग गृह तड़ाग आदि भेदके तथा समस्त जगत् विध्वंश करते हुए विरूपाक्ष देवकी पूजा करते हैं, वेभी पापमें लिप्त नहीं होते। सब लक्षणोंसे रहित तथा समस्त पापोंसे युक्त होकर भी यदि कोई मन ही मन महेश्वरका ध्यान करे, तो वह ध्यान ही उसके पापोंको खण्डन करता है। हे केशव! कीट पक्षी, पतंग आदि तिर्य्यग् योनिवाले भी यदि महादेवके शरणागत हों तो उन्हें भी कहींपर भय न हो। भूमण्डलके बीच जो लोग एकमात्र महेश्वरमें भक्ति करते हैं, वे संसारके वशगामी नहीं होते, यही मेरे मनमें निश्चय है। अनन्तर श्रीकृष्ण धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरसे कहने लगे।

विष्णु बोले, हे महाराज! सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, वसुगण, विश्वगण, धाता, अर्य्यमा, शुक्र, वृहस्पति, रुद्रगण, साध्य, ब्रह्मा, इन्द्र, मरुद्गण, सत्य स्वरूप ब्रह्मा, वेद, यज्ञ, दक्षिणा, वेद पढ़नेवाले, सोम, यजमान, हव्य वाहवि, रक्षा, दीक्षा तथा जो कोई संयमशील हैं, स्वाहा वौषट् ब्राह्मणवृन्द सौरभेयी, श्रेष्ठ धर्म्म, कालचक्र, बल, यश, दम, बुद्धिमानोंको स्थिति और शुभाशुभ, सप्तर्षि, उत्तम बुद्धि, मन दर्शन, स्पर्श कार्य्य सिद्धि, देवगण, उष्मप, सोमप, मेघ, उत्तम साम, ऋषितगण, ब्रह्मकायगण, आभासुरगण, गन्धपगण, वाणी और मनके अविरुद्ध, शुद्ध निर्म्माणरत, देवगण, स्पर्शासन, दर्शप और आज्यपगण, हे आजमीढ़ वंशीय महाराज! इनके अतिरिक्त जो सब चिन्ताद्योत अर्थात् सङ्कल्प मात्रसे जिनके सम्मुख सब वस्तु प्रकाशित होती हैं, देवताओंके बीच जो ऐसे मुख्य देवता हैं और गरुड़ गन्धर्व्व, पिशाच, दानव, यक्ष, चारण, पन्नगगण स्थूल अतिसूक्ष्म, मृदु, असूक्ष्म, दुःख सुख, अनन्तर दुःख तथा श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ सांख्ययोग इत्यादि जो कुछ वर्णित हुए हैं, वे सभी महेश्वरसे उत्पन्न भये हैं। भूत सृष्टिकारी आकाश आदि उस आनन्दमात्र शरीरवाले महेश्वरसे उत्पन्न हुए हैं; ये शुद्धतत्त्व-प्रेप्सु उपाशकोंके वरणीय हैं, येही देव स्वरूपसे जगत्का पालन किया करते हैं। जो इस पृथ्वीमें आविष्ट होकर उस देवके इस पुरातनी सृष्टिकी रक्षा करते हैं, तपस्याके सहारे जिनकी आलोचना की जाती है, वह उनसे भी वृद्ध और प्राणका हेतु है, मैं उस होको प्रणाम करता हूं; वह सर्व्व शक्तिमान अविनाशी महेश्वर मुझसे सन्तुष्ट होकर हमें सदा अभिलषित वर प्रदान करे।

जो मनुष्य संयतेन्द्रिय, योगयुक्त और पवित्र होकर एक महीनेतक सदा इस स्तोत्रका पाठ

करते हैं, वे अश्वमेध यज्ञका फल पाते हैं। हे पार्थ! ब्राह्मण इस स्तोत्रका पाठ करनेसे समस्त वेद पाठका फल पाते, क्षत्रिय अखण्ड भूमण्डलको जय करते वैश्योंको लाभ-निपुणता प्राप्त होती और शूद्र मरनेके अनन्तर सद्गति तथा सुख लाभ करनेमें समर्थ होता है। यशस्वी पुरुष इस सर्व्व दोष नाशक पवित्र और पुण्य युक्त स्तवराज पाठ कर रुद्रके विषयमें मन स्थिर करते हैं। हे भारत! इस शरीरमें जितने रोमकूप हैं, इस स्तवराजको पाठ करनेसे मनुष्य उतने ही सहस्र वर्षके परिमाणसे स्वर्ग लोकमें निवास करता है।

१८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! स्त्रियोंके पाणिग्रहणके समय जो सहधर्म्म शब्द उच्चारित होता है, यह क्या ऋषियोंके बनाये हुए मन्त्रके द्वारा प्रकाशित धर्म्म है अथवा प्रजापतिके सहारे सन्तानके लिये प्रसिद्ध हुआ है, अथवा आसुर अर्थात् केवल इन्द्रिय प्रीतिके निमित्त साहित्य है। पहले महर्षियोंने जिसे सहधर्म्म कहा है, वह मेरे विचारमें विरुद्ध मालूम होनेसे उसमें मुझे बहुत ही सन्देह हुआ है। इस लोकमें जो सहधर्म्म शब्दसे वर्णित होता है, परलोकमें वह किस प्रकार विहित हुआ करता है? हे पितामह! सहधर्म्माचरणके द्वारा मृतलोगोंको स्वर्ग मिलता है, पहले एक व्यक्तिके मरनेसे दूसरा कहां रहता है? जब कि मनुष्य धर्म्मके अनेक फलों तथा अनेक भांतिके कर्म्मोंसे युक्त हैं और अन्तमें अनेक निरयनिष्ठ होते हैं; इसके अतिरिक्त धर्म्मप्रवक्ता ऋषियोंने स्त्रीको अनृत कहके वर्णन किया है, इसलिये जब स्त्रियां अनृत (मिथ्या) हुईं, तब सहधर्म्म किस प्रकार हो सकता है? और वेदमें भी स्त्रियां अनृतरूपसे वर्णित हुई हैं, धर्म्म प्रथम संज्ञामात्र है, पाणिग्रहण आदि विधि वेदविहित होनेपर भी पुरुषकी इच्छाके अनुरोधसे ही हुआ करती है, यथार्थमें वह धर्म्म नहीं, केवल उपचार मात्र है। हे महाप्राज्ञ पितामह! सदा इस विषयकी चिन्ता करनेसे यह मुझे अत्यन्त गहन बोध होता है, इसलिये आपने जिस प्रकार सुना हो, निसन्दिग्ध रूपसे वह सब वृत्तान्त तथा यह विषय जिस प्रकार प्रवर्त्तित हुआ है, वह मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें अष्टावक्र और दिग्भिमानी देवीके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पहले समयमें महातपस्वी अष्टावक्रने दारपरिग्रह करनेकी अभिलाष करके महानुभाव वदान्य नामक ऋषिकी सुप्रभा नामी कन्या पानेके लिये प्रार्थना की थी, वह कन्या पृथ्वीमण्डलमें अत्यन्त सुन्दरी और गुण, प्रभाव, शील तथा चरित्रके द्वारा परम श्रेष्ठ थी। बसन्तकालमें पुष्पयुक्त बनशोभाकी युक्त उस उत्तम नेत्रवाली कन्याने अष्टावक्रकी ओर दृष्टि करते हो उनके मनको हरण किया था। वदान्य ऋषि उनसे बोले, मैं जिस प्रकार तुम्हें अवश्य कन्या प्रदान करूंगा, उसे सुनो। इस समय तुम पवित्र उत्तर दिशामें गमन करो, तब तुम देखोगे।

अष्टावक्र बोले, वहां मैं क्या देखूंगा? आप मुझसे वह विषय वर्णन करिये; आप मुझे जो कहेंगे इस समय मुझे वही करना योग्य है।

वदान्य ऋषि बोले, हिमालय पर्व्वत और कुवेरकी अतिक्रम करके सिद्धचारणोंसे सेवित रुद्रका स्थान देखोगे। वह स्थान हर्षयुक्त नाचनेवाले अनेक मुखवाले पार्श्वदों और दिव्याङ्गरागसे संयुक्त पिशाच तथा दूसरे अनेक प्रकारके प्रमथगणोंसे परिसेवित है। पाणिताल, सुताल अर्थात् कांसमय भाण्ड, शम्पा ताल अर्थात्

बिद्युतकी भांति अत्यन्त चपल भ्रमणादि-घटित नृत्यक्रियामान विशेष और भ्रमणादि रहित समताके द्वारा प्रसन्नचित्त नृत्य करनेवालोंसे महादेव वहांपर सेवित होते हैं। उस पहाड़पर निवास करना ईश्वरको अभिलषित है, इसीसे वह दिव्य लोक कहाता है, मैंने ऐसा ही सुना है। महादेव सदा वहांपर उपस्थित रहते हैं और उनके पारिषद लोग सदा उस स्थानमें निवास किया करते हैं। देवीने वहां महादेवके निमित्त अत्यन्त दुश्चर तपस्या की थी, मैंने सुना है, उस ही लिये वह महादेव और उमादेवीका इष्टस्थान है। पहले समयमें वहांपर देवके उत्तर भागमें महापार्श्व पर्व्वतपर समस्त धातु कालरात्रि और दिव्य मनुष्य इत्यादि सबकी ही मूर्त्ति धारण करके महादेवकी उपासना करती थीं, तुम उस स्थानको अतिक्रम करके गमन करोगे। अनन्तर मेघवर्ण मनोहर रमणीय बन देखोगे। वहां महाभाग-तपस्विनी दीक्षानुष्ठानकारिणी एक बर्षीयसी स्त्रीका दर्शन करोगे। वह तुम्हारी यत्नपूर्व्वक दर्शनीय और पूजनीय है। जब उसे देखके तुम निवृत्त होगे, तब मेरी कन्याका पाणिग्रहण कर सकोगे, तुम यदि ऐसा नियम करना चाहते हो, तो वहां जाके सब विषयोंको साधन करो।

अष्टावक्र बोले, हे साधु! ऐसा ही होगा, आपने जिस प्रकार कहा है, मैं अवश्य ही वहां जाके सब बिषयोंको साधन करूंगा, आपका बचन सत्य होवे।

भीष्म बोले, अनन्तर भगवान्ने उत्सर्षशाली उत्तर दिशामें सिद्ध चारणोंसे सेवित हिमालय पहाड़पर गमन किया। उस द्विजश्रेष्ठने महागिरि हिमालयपर जाके बाहुदानामी धर्म्मशालिनी पवित्र नदीमें प्रवेश किया। अनन्तर शोकरहित विमल तीर्थमें स्नान और तर्पण करके वहांपर सुख पूर्व्वक कुशशय्यापर निवास करने लगे। अनन्तर रात्रि बीतनेपर उस द्विजवरने प्रातःकालमें उठके स्नान किया और वेदमन्त्रोंसे स्तुति करके अग्नि प्रकट की। महादेव और पार्व्वतीकी पूजा करके उस ह्री ह्रदपर बिश्राम करने लगे। बिश्राम करनेके अनन्तर उठके कैलास पर्व्वतकी ओर गमन किया। वहां जाके परम शोभासे दीपमान एक काञ्चनद्वार देखा और महानुभाव कुवेरकी नलिनी तथा मन्दाकिनीका दर्शन किया। अनन्तर मणिभद्र आदि राक्षस जो कि उस नलिनीकी सदा रक्षा करते हैं, वे लोग भगवान् अष्टावक्रको देखके उठ खड़े हुए, उन्होंने भी उन भीमबिक्रमी राक्षसोंको प्रत्यभिनन्दित करके कहा, कि कुवेरके निकट जाके शीघ्र मेरे आनेका समाचार दो। हे राजन्! उन राक्षसोंने भगवान अष्टावक्रसे कहा, ये राजाओंके राजा, धनके स्वामी स्वयं ही आपके समीप आरहे हैं, भगवान कुवेरको आपके आगमनका कारण मालूम है। आप इस तेजस्विताके द्वारा प्रज्वलित महाभागको अवलोकन करिये। अनन्तर धनेश्वर अनिन्दित ब्रह्मर्षि अष्टावक्रके निकट आके बिधिपूर्व्वक कुशल प्रश्न करके बोले, हे द्विजवर! आपने सुखसे आगमन किया है न? मेरे समीप आप क्या अभिलाष करते हैं, आप जो कहेंगे, मैं उसे पूर्ण करूंगा। हे द्विजोत्तम! आप इच्छापूर्व्वक मेरे गृहमें प्रवेश करिये, यहांपर सत्कृत और कृतकार्य्य होकर निर्ब्बिघ्नताके सहित गमन करना, कुवेरने उस द्विजवरको सङ्ग लेकर निज गृहमें प्रवेश किया और वहां जाके उन्हें आसन पाद्य और अर्घ प्रदान किया। उन दोनोंके बैठनेके अनन्तर मणिभद्र प्रभृति यक्ष राक्षस और किन्नर आदि कुवेरके सब गण बैठ गये। अनन्तर सबके बैठनेपर कुवेरने कहा, यदि आपको इच्छा हो, तो अप्सरावृत्त नृत्य करनेमें प्रवृत्त हों, आपको सेवा तथा आतिथ्य करना मेरा

कर्त्तव्य कार्य्य है। तब मुनिने मृदु वचनसे कहा, "नृत्य आरम्भ होवे।" अनन्तर उर्व्वरा, मिश्रकेशी, रम्भा, उर्व्वशी, अलम्बुषा घृताची, मित्रा, चित्रांगदा, रुचि मनोहरा, सुकेशी, सुमुखी, हासिनी, प्रभा, विद्युता, प्रशमी, दान्ता, विद्योता, रति और दूसरी अनेक अप्सरा नृत्य करनेमें प्रवृत्त हुईं। गन्धर्व्वगण विविध बाजे बजाने लगे। दिव्य गीतवाद्य आरम्भ हुआ, महात्मा महातपस्वी अष्टावक्र देव परिमाणके एक वर्ष तक वहां बैठे रहे और अत्यन्त आनन्दित हुए। अनन्तर राजा वैश्रवण भगवान अष्टावक्रसे बोले, हे विप्र! देखते देखते इस स्थानमें ही आपको कुछ अधिक एक वर्ष बीत गया, हे ब्रह्मन्! इसलिये अब यह नृत्य-गीतादि परित्याग करना उचित है, इस समय आप इच्छानुसार निवास करिये; अथवा आप जैसा कहें, वैसा ही होवे। आप पूजनीय अतिथि हैं, और यह गृह भी आपका है, इसलिये आपकी जैसी आज्ञा हो, वैसा ही किया जाय, हम सब कोई आपके अधीन हैं।

अनन्तर भगवान् अष्टावक्र प्रसन्न होके कुवेरसे बोले, हे धनेश्वर! मैं यथायोग्य पूजित हुआ; अब यहांसे गमन करूंगा। हे धनाधिप! मैं तुमसे प्रसन्न हुआ हूं, तुमने जो किया है, वह तुम्हारे ही योग्य है, तुम्हारी कृपा और महानुभाव भगवान् वदान्य ऋषिके आज्ञानुसार अब मैं जाता हूं तुम बुद्धिमान और समृद्धिमान बने रहो। अनन्तर भगवान अष्टावक्र कुवेरके स्थानसे बाहर होके उत्तर दिशाकी ओर चले। कैलास, मन्दर और सुमेरु पर्व्वतपर विचरते हुए उन सब महापर्व्वतोंको अतिक्रम करके अत्यन्त उत्कृष्ट करातस्थलमें पहुंचे। उन्होंने प्रयत और नतशिर होके उस स्थानकी प्रदक्षिणा की। अनन्तर पृथ्वीपर उतरके वह उस समय हर्षित हुए और उस पर्व्वतकी तीन बार प्रदक्षिणा करके प्रसन्न चित्तसे उत्तरकी ओर समतल भूमिपर चलने लगे। अनन्तर उन्होंने और एक वनस्थल देखा। वह वन सब ऋतुओंके फूल, फल, मूल और पक्षियोंसे युक्त था और जगह जगह रमणीय शोभासे विभूषित था। भगवान अष्टावक्रने उस स्थानमें एक दिव्य आश्रम देखा। वहांपर विविध रत्नोंसे भूषित सुवर्णमय पर्व्वत और मणिमय भूमिपर मनोहर तालाव विद्यमान थे; तथा दूसरे बहुतेरे विषयोंको देखकर वह शुद्धचित्त महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उस स्थानमें कुवेरके गृहसे भी श्रेष्ठ अद्भुत सब्बाश सब्ब रत्नमय एक दिव्य सुवर्णसे बना हुआ भवन देखा। जिस स्थानमें उत्तम महत् मणिकाञ्चनमय विविध पर्व्वत अनेक प्रकारके रत्न और समस्त रमणीय विमान विद्यमान थे मन्दार पुष्पोंसे परिपूरित मन्दाकिनी नदी, स्वयं प्रभायुक्त मणियों और हीरोंसे सब भूमि भूषित थी। अनेक प्रकारके मुक्ताजालसे खचित मणिरत्नोंसे विभूषित मणिमय तोरणों और मनोहर दर्शनीय रमणीय पवित्र वस्तुओंसे युक्त तथा वह मनोहर आश्रम ऋषियोंसे आवृत था अनन्तर अष्टावक्रके अन्तःकरणमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि कहां "निवास करूं?" अन्तमें वह उस गृहके द्वारपर जाके खड़े होकर बोले, इस स्थानमें जो हो, उसे मालूम होवे, कि "मैं अतिथि यहांपर आया हूं।" हे विभु! अनन्तर अनेकरूपधारिणी मनको हरनेवाली सात कन्या उस घरसे बाहर हुईं। उन्होंने जिस कन्याको देखा, उसीने उनके मनको हरण किया। निवारण करनेमें अशक्त होनेसे उनका मन अवसन्न हुआ। अनन्तर उस धीमान् विप्रके धृति उत्पन्न हुई, तब प्रमदागणोंने उनसे कहा, हे भगवान! भीतर चलिये।' उन्होंने उन सुन्दरियों तथा भवनको देखके कौतूहलयुक्त होकर गृहके भीतर प्रवेश किया। भीतर जाके उन्होंने जरायुक्त अरक्षिण अम्बरधारिणी सब आभूष-

णोंसे भूषित एक वर्षीयसी स्त्रीको पलङ्गपर बैठी हुई देखा ; देखते ही उन्होंने उससे कहा, "स्वस्ति है", उसने भी उस समय वैसा ही प्रत्युत्तर दिया और उठके उस विप्रवरको बैठनेको कहा।

अष्टावक्र बोले, सब कोई अपने अपने स्थानपर जावें जो अत्यन्त ज्ञानवती और प्रशान्त चित्तवाली हो, वही अकेली मेरे निकट उपस्थित रहे ; शेष सब अपने अभिप्राय और इच्छानुसार स्थानान्तरमें गमन करें, अनन्तर वे सब कन्या उस समय ऋषिको प्रदक्षिणा करके घरसे निकल गईं, केवल वह बुढ़ा वहांपर निवास करने लगी, ऋषि सफेद शय्यापर शयन करके बूढ़ासे बोले, हे भद्रे ! रात्रि बीती जाती है, इसलिये तुम भी शयन करो। परस्पर कथा प्रसंगसे जब ब्राह्मणने ऐसा कहा, तब वर्षीयसीने प्रकाशमान दूसरी शय्यापर शयन किया। अन्तमें वह शीतज्छलसे कांपती हुई महर्षिकी शय्यापर जा चढ़ी। हे राजन् ! भगवानने उस आगत अबलासे स्वागत प्रश्न किया, उसने प्रीतिपूर्व्वक दोनों भुजासे ऋषिको आलिङ्गन किया। ऋषिको काष्ठकी भांति निर्व्विकार देखके दुःखित होकर उस बूढ़ाने उनके संग उस समय बर्त्तालाप आरम्भ किया। वह बोली, हे विप्रवर ! पुरुषको पाके स्त्रियोंको स्वभावसे ही धैर्य्य नहीं रहता, इसलिये कामसे मोहित होकर मैं तुम्हें आलिंगन करती हूं, तुम मेरा मनोरथ सफल करो। हे विप्रर्षि ! तुम प्रसन्न होके मेरे संग संगत होकर मुझे आलिङ्गन करो, मैं तुम्हें देखके अत्यन्त ही कामार्त्त हुई हूं। हे धर्म्मात्मन्! यह तुम्हारी तपस्याका प्रार्थित फल प्रशंसनीय है, कि देखतेही मैं तुम्हारी सेवामें तत्पर हुई हूं, इसलिये मुझे अङ्गीकार करो। मेरा यह सब धन तथा दूसरी वस्तु जो देख रहे हो, तुम उन सबके स्वामी तथा मेरे भी निःसन्देह स्वामी हो, तुम मेरे सङ्ग सङ्गम करो, मैं तुम्हारी सब कामना पूरी करूंगी। हे विप्र ! सर्व्वकाम फलप्रद इस रमणीय वनमें तुम मेरे सङ्ग क्रीड़ा करोगे, मैं तुम्हारे वशमें होकर रहूंगी और दिव्य मानुषकाम विषयोंको उपभोग करोगे, पुरुषके संसर्गसे हमें जैसा परम फल है, स्त्रियोंको इससे बढ़के कदाचित और कुछ भी सुख नहीं है। काम प्रेरित स्त्रियें सुखस्वच्छन्दतासे निवास करती हैं, वे सन्तप्त पांशुमय मार्गमें गमन करनेपर भी नहीं जलतीं।

अष्टावक्र बोले, हे भद्रे ! मैं कदापि परस्त्री गमन नहीं करता ; धर्म्मशास्त्रज्ञ पण्डितोंके द्वारा परदाराभिगमन अत्यन्त दूषित कहके वर्णित हुआ है। हे कल्याणि ! मैं सत्यके द्वारा शपथ करता हूं, कि इस संसार-आश्रममें प्रवेश करनेकी मैंने इच्छा की है। मैं विषयसे अनभिज्ञ हूं, केवल धर्म्मार्थ सन्ततिकी अभिलाष की है, अपत्य उत्पन्न करनेसे निःसन्देह श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करूंगा। हे भद्रे ! तुम धर्म्मको जानो तथा जानके दूर रहो।

स्त्री बोली, हे द्विज ! वायु, अग्नि, वरुण अथवा दूसरे कोई देवता स्त्रियोंको वैसे प्रिय नहीं हैं, जैसे रतिशील नारियोंको एकमात्र रतिपति प्रियतम है। हजार स्त्रियोंके बीच कदाचित कोई एकाकिनी पाई जाती है और कहा नहीं जा सकता, कि वो हजार स्त्रियोंके बीच भी कोई पतिव्रता है। ये पिताको नहीं जानती, कुलको नहीं मानती, माताका भी मान्य नहीं करती, भाइयोंके शासनमें भी नहीं रहती, भर्त्तापर भक्ति, पुत्रोंमें स्नेह और देवरोंका समादर नहीं करती ; जैसे नदियें तटको निर्म्मूल करती हैं, वैसे ही ये भी लीलाक्रमसे कुल नष्ट किया करती हैं ; प्रजापतिने इनके सब दोषोंको जानके यह बार्त्ता कही थी।

भीष्म बोले, अनन्तर अष्टावक्र एकाग्र होकर उस वर्षीयसीसे बोले, तुम इच्छानुसार बैठो

और मुझे क्या करना योग्य है वह कहो। बृद्धा बोली, हे भगवन्! देशकालके अनुसार सब देखोगे। हे महाभाग! बैठिये, कृतकृत्य होइयेगा।

हे युधिष्ठिर! अनन्तर ब्रह्मर्षिने उससे कहा, "ऐसा ही होगा।" मेरा जबतक उत्साह रहेगा, तब तक मैं तुम्हारे समीप निःसन्देह निवास करूंगा। अन्तमें ऋषि उस स्त्रीको जराजीर्ण देखकर अत्यन्त चिन्ता करके मानो सन्तापित हुए। उस बिप्रवरने उस अंगनाके जिस जिस अंगको अवलोकन किया, उनकी रूप विरागवती दृष्टि उस समय उसमें अनुरागवान् नहीं हुई। उन्होंने सोचा, यह इस गृहकी अधिष्ठात्री देवी है, किसीके शापसे कुरूपा हुई है। मैं सहसा इसका कारण जाननेमें समर्थ नहीं होता हूं; इस बिषयको जाननेके निमित्त इस ही भांति चिन्ता करते हुए व्याकुल चित्तसे ऋषिका वह दिन शेष हुआ। अनन्तर वह स्त्री बोली, हे भगवन्! सूर्य्यका सन्ध्याराग रञ्जितरूप अवलोकन करिये, इस समय आपके निकट क्या लाऊं। वह उस स्त्रीसे बोले, इस समय यहां मेरे स्नान करनेके लिये जल लाओ। इसके अनन्तर मैं एकाग्र और संयतेन्द्रिय होकर सन्ध्या उपासना करूंगा।

१८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर उस स्त्रीने कहा, बहुत अच्छा, 'ऐसा ही होगा'—यह कहके वह दिव्य तेल और स्नानका वस्त्र ले आई। उस समय वर्षीयसीने उस महानुभाव मुनिकी आज्ञानुसार उनके शरीरमें तेल लगाया और धीरे धीरे जाके स्नानागारमें उपस्थित हुई। अनन्तर ऋषिवर अभिनव उत्तम आसन पर बैठनेके लिये वहां गये, जब वह उस उत्तम आसन पर बैठे, तब उस स्त्रीने धीरे धीरे सुखस्पर्श हाथके द्वारा ऋषिको स्नान करा दिया और उनके सम्मुख बिधिपूर्वक दिव्य उपचारोंको लाके उपस्थित किया। महाव्रती मुनि उस स्त्रीके अत्यन्त सुखजनक तथा उष्ण हाथके सहारे सुखसे सेवित होकर यह न जान सके, कि सारी रात बीत गई। अनन्तर मुनि उठके अत्यन्त बिस्मित हुए और पूर्व्व ओर आकाश मण्डलमें सूर्य्यको उदित देखा। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ, कि 'क्या यह मोह है, अथवा यथार्थ होगा?' अन्तमें वह सूर्य्यकी उपासना करके उस स्त्रीसे बोले, 'इस समय मैं क्या करूं?' तब वर्षीयसी उनके लिये अमृत रसके सदृश अन्न ले आई। ऋषि उस अन्नको अति स्वादुतानिबन्धनसे अधिक भोजन न कर सके। उस दिनके बीतने पर फिर सन्ध्या उपस्थित हुई। अनन्तर उस स्त्रीने भगवान् अष्टावक्रको शयन करनेके लिये कहा; उन दोनोंकी अलग अलग दिव्य शय्या काल्पत हुई। मुनि और वह बृद्धा स्त्री अपनी अपनी शय्यापर जा सोये; आधी रातके समय वह स्त्री मुनिके समीप उपस्थित हुई, अष्टावक्र बोले, हे भद्रे! मेरा अन्तःकरण परस्त्रीमें आसक्त नहीं होता, हे कल्याणि! तुम उठो और स्वयं बिरत रहो तुम्हारा मंगल होगा।

भीष्म बोले, उस समय वह बृद्धा धीरजके सहारे निवर्त्तितहोके बोली, मैं स्वतन्त्रता हूं, तुम्हें धर्म्मच्छल अर्थात् परपुरुष प्रलोभन नहीं है।

अष्टावक्र बोले, स्त्रियोंकी स्वाधीनता नहीं है, स्त्रियें निश्चय ही पराधीन हैं, प्रजापतिका ऐसा मत है, कि स्त्रियें कभी स्वाधीनताके योग्य नहीं हैं।

स्त्री बोली, हे बिप्र! कन्दर्प पीड़ा मुझे व्याकुल कर रही है, तुम मेरी भक्ति देखो, यदि तुम मुझे अभिनन्दित न करोगे, तो तुम्हें अधर्म्म होगा।

अष्टावक्र बोले, यथेच्छाचार मनुष्यके दोषोंको हरता है। हे कल्याणि! मैं सदा धीरज धारण करनेमें समर्थ हूं, तुम अपनी शय्या पर जाओ।

स्त्री बोली, हे विप्र! मैं सिर झुकाके तुम्हें प्रणाम करती हूं, मुझ पर तुम्हें कृपा करनी उचित है। हे निष्पाप! तुम पृथ्वीमें पड़ी हुई मुझ शरणागताकी रक्षा करो। यदि तुम परस्त्री विषयक दोष देखते हो, तो मैं तुम्हें आत्म समर्पण करती हूं, हे द्विज! तुम मेरा पाणिग्रहण करो। मैं सत्य कहती हूं, कि तुम्हें कुछ भी दोष न होगा; मुझे तुम आत्म-प्रदान करनेमें स्वाधीना समझो; इसमें जो अधर्म्म होगा, वह मुझे ही होगा। मैंने तुम्हें मन समर्पण किया है, मैं स्वतन्त्रा हूं, इसलिये तुम मुझे अङ्गीकार करो।

अष्टावक्र बोले, हे भद्रे! तुम किस प्रकार स्वाधीना होसकती हो? कौमार अवस्थामें पिता रक्षा करता है, युवा अवस्थामें पति रक्षा किया करता है, वृद्धावस्थामें पुत्रगण रक्षा करते हैं, इसलिये स्त्रियोंको कभी स्वतन्त्रता नहीं रहती है।

स्त्री बोली, मैं कौमार ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करनेके हेतु निःसन्देह कन्या हो हूं, हे विप्र! इसलिये तुम मुझे अपनी पत्नी करो, मेरी श्रद्धा निष्फल मत करो।

अष्टावक्र बोले, मैं आत्म-दृष्टान्तके सहारे तुम्हें स्मरातुरा जानता हूं, तुम भी निज सङ्कम श्रद्धा प्रकाश करके अपना अभिप्राय प्रकट करती हो, वदान्य ऋषि मुझे जाननेके लिये जो परीक्षा करते हैं, क्या सत्य ही उसमें विघ्न न होगा? इस स्त्रीको पहले अत्यन्त जीर्णरूपसे देखा था, अब इसे कन्या देखता हूं, इससे यह परम आश्चर्य्यका विषय है? क्या मैं पूर्व्व परिगृहीता कन्याको परित्याग करूंगा अथवा इसे ही स्वीकार करूंगा? क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा? यह दिव्याभरण वस्त्रधारिणी कन्या मेरे निकट उपस्थित हुई है, इसका यह परम सुन्दर रूप पहले किस प्रकार जीर्ण हुआ था। इस समय तो इसे कन्या रूपसे देखता हूं, इसके अनन्तर न जाने क्या होगा? मुझे जो काम दमन करनेकी सामर्थ्य है, उस धीरजसे मैं किसी प्रकार विचलित न होकर पहले प्राप्त हुई कन्याको परित्याग न करूंगा, पूर्व्वप्राप्तको परित्याग करनेमें मेरी रुचि नहीं होती; इसलिये मैं सत्य धर्म्मके सहारे दारपरिग्रह करूंगा।

२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! वह स्त्री परम तेजस्वी अष्टावक्रके शापसे क्यों न डरी और भगवान् अष्टावक्र किस प्रकार वहांसे निवृत्त हुए, यह वृत्तान्त आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, अष्टावक्रने उस स्त्रीसे पूछा, कि तुम किस प्रकार रूप पलटती हो? मिथ्या न कहना, ब्राह्मणके मान रखनेकेलिये सत्य कहो।

स्त्री बोली, हे ब्राह्मणसत्तम! द्यूलोक अथवा भूलोकके जिस किसी स्थानमें निवास करें, उस ही स्थानमें स्त्री-पुरुषोंका परस्पर ऐसा ही अभिप्राय है। हे सत्यविक्रम! सावधान होकर यह समस्त विषय सुनो। हे निष्पाप! तुम्हें स्थिर करनेके लिये मैं इस प्रकार परीक्षा करती थी। हे सत्य पराक्रम! पूर्व्वप्रतिज्ञाको परित्याग न करनेसे तुमने सब लोकोंको जय किया है। मुझे उत्तर दिशा जानो; स्त्रियोंको चपलता भी तुम्हें प्रत्यक्ष मालूम हुई। मैथुनज्वर वृद्धा स्त्रियोंको भी पीड़ित करता है। इस समय प्रजापति तुमपर प्रसन्न हुए तथा इन्द्रके सहित सब देवता तुम पर प्रसन्न हैं। हे द्विजवर! तुम जिस कार्य्यके लिये इस स्थानमें आये तथा उस कन्याके पिता

वदान्य विप्रके द्वारा जिस निमित्त मेरे समीप आये हो, तुम्हें उपदेश करनेके लिये मैंने उन्हीं कार्य्योंका अनुष्ठान किया। तुम उत्तम रीतिसे मङ्गलपूर्ब्बक घर जाओ, तुम्हें कुछ भी श्रम न होगा, हे विप्र! तुम उस कन्याको पाओगे और वह पुत्रवती होगी। तुमने मानलिप्साके निमित्त मुझसे प्रश्न किया, इस ही लिये मैंने उत्तम रीतिसे वर्णन किया; ब्राह्मण कामना तीनों लोकमें सब लोगोंको ही सदा अनतिक्रमणीय है। हे विप्रर्षि अष्टावक्र! इस समय पुण्य सञ्चय करके गमन करो और क्या सुननेकी अभिलाष है, मैं वह भी यथार्थ रीतिसे कहती हूं। हे द्विजवर! मैं तुम्हारे निमित्त ऋषिके द्वारा प्रसादिता हुई हूं उनके सम्मानके लिये तुमसे यह कथा कही है।

भीष्म बोले, कि वह विप्रवर! उसका वचन सुनके हाथ जोड़के खड़े हुए और उसकी आज्ञा पाके फिर अपने स्थानमें लौट आये। हे कुरुनन्दन! उन्होंने घरमें आके विश्राम कर स्वजनोंसे कुशल प्रश्न करके न्यायपूर्ब्बक उस ब्राह्मणके समीप गमन किया। उस समय वह वदान्य विप्रको देखकर पूछने पर समस्त वृत्तान्त कहने लगे। उन्होंने कहा, मैं आपकी आज्ञानुसार गन्धमादन पर्ब्बत पर जाके उसकी उत्तर ओर एक उत्तम महती देवीका दर्शन किया। मैंने उससे अनुज्ञात होकर आपका नाम सुनाया। हे प्रभु! उसका वचन सुनके फिर निज स्थान पर लौट आया। तब विप्रवर वदान्य उनसे बोले, तुम उत्तम पात्र हो, इसलिये नक्षत्र और वेदविधिके अनुसार मेरी कन्याका पाणि ग्रहण करो।

भीष्म बोले, हे महाराज! परम धर्म्मात्मा अष्टावक्र उस समय "ऐसा ही होवे"—यह कहके उस कन्याको ग्रहण करके अत्यन्त प्रीतियुक्त हुए। वह द्विजवर उस परम सुन्दरी कन्याको भार्य्यारूपसे प्रतिग्रह करके शोकरहित और प्रसन्न होके अपने आश्रममें सुखपूर्ब्बक वास करने लगे।

२१ अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! सनातन ब्राह्मण लोग यति ब्रह्मचारी ब्रह्मवित् ब्राह्मणको अथवा दण्डादि चिन्हधारी सन्यासीको पात्र कहा करते हैं।

भीष्म बोले, हे महाराज! प्राचीन लोग जीविका निर्ब्बाहके लिये निज वृत्ति अवलम्बन करनेवाले दण्डादि चिन्हधारी वा अचिन्हित स्वधर्म्म जीवी ब्राह्मण इन दोनोंको ही दानके पात्र कहते हैं, क्योंकि ये दोनों ही तपस्वी हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अपवित्र पुरुष यदि परम श्रद्धा पूर्ब्बक द्विजातिको हव्यकव्य दान करे, तो उस दानमें क्या दोष होता है, उसे आप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महातेजस्वी तात! नीच मनुष्य भी यदि श्रद्धाके द्वारा पवित्र हो, तब वह अवश्य ही सब ठौर पवित्र है, इसमें सन्देह नहीं है; श्रद्धा ही उसे पवित्र करती है।

युधिष्ठिर बोले, मनुष्य सदा दैव कर्म्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा न करे, हव्य प्रदानके समय अर्थात् पितृ कर्म्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा करनी चाहिये; पण्डित लोग ऐसा ही कहा करते हैं; देवताओंकी श्रद्धाप्रियत्व निबन्धनसे दैवकर्म्म देवताओंकी कृपासे ही पूर्ण होता है, और पितृकर्म्म ब्राह्मणकी कृपासे सिद्ध हुआ करता है।

भीष्म बोले, ब्राह्मण कभी दैवकार्य्य सिद्ध नहीं करते; वह देवताओंकी कृपासे ही सिद्ध होता है, देवताओंके प्रसादसे यजमान यज्ञ किया करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! पितर पितामह आदि पूजनीय ब्रह्मिष्ठ लोगोंके बीच धी-शक्ति सम्पन्न मारकण्डेयने पहले समयमें ब्राह्मणोंको ही ब्रह्मवादी कहा था।

युधिष्ठिर बोले, अपूर्व्व अर्थात् पूर्व्वापरिचित विद्वान्, सम्बन्धी, तपस्वी अथवा यज्ञशील, ये किस प्रकार दानके पात्र होंगे।

भीष्म बोले, पहले जो तुमने तीन पात्रोंका उल्लेख किया है, अर्थात् अपूर्व्व विद्वान् और किसी प्रकारके सम्बन्धसे युक्त, ये यदि कुलीन, कर्म्मठ वेदवित् अनृशंस लज्जाशील सरल और सत्यवादी हों, तभी दानके पात्र हुआ करते हैं, तपस्वी और यज्ञशील भी अवश्य हो दानके पात्र होंगे। हे पार्थ! इस विषयमें पृथ्वी काश्यप अग्नि और मारकण्डेय, इन तेजस्वी अर्थात् सर्व्वज्ञ चतुष्टयका मत सुनो।

पृथ्वीने कहा है, जैसे समुद्रमें फेंकनेसे पांशु पिण्ड शीघ्र ही विनष्ट होता है, वैसे ही जो याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह, इन तीनों वृत्तियोंके द्वारा जीविका निर्व्वाह करते हैं, उनके समीप सब दुश्चरित निमग्न हुआ करते हैं। हे महाराज! काश्यपने कहा है, षड़ङ्गोंके सहित सब वेद, सांख्य, पुराण और सत्कुलमें जन्म इन सदाचारोंसे भ्रष्ट द्विजोंमें प्रतिग्रह नहीं होता। अग्निने कहा है, जो पुरुष पढ़के अपनेको पण्डित समझता है और जो विद्याके सहारे दूसरेके यशको नष्ट करता है, वह पुरुष सत्य आचरण नहीं करता, इसहीसे भ्रष्ट होता है और उसके सब लोक नष्ट हुआ करते हैं। मारकण्डेयने कहा है, सहस्र अश्वमेध और एकमात्र सत्य यदि तुलादण्ड पर तौले जांय, तो सहस्र अश्वमेध सत्यके आधे फलके समान होगा, वा नहीं इसे मैं कह नहीं सकता; इसलिये इन गुणोंके एकतमके अभावसे पात्रत्व नहीं होता।

भीष्म बोले, अत्यन्त तेजस्वी पृथ्वी, काश्यप, अग्नि और चिरायु भृगुनन्दन, मारकण्डेय, इन चारोंने पूर्व्वोक्त वचन कहके गमन किया था।

युधिष्ठिर बोले, ब्रह्मचर्य्य व्रतमें रत रहनेवाले, ब्राह्मण लोग जो यह हवि भोजन करते हैं, ब्राह्मणोंकी कामार्थ प्रदत्त उस हविके द्वारा उसके व्रत नाशनिबन्धनसे किस प्रकार सुकृत होता है?

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य्य व्रत करनेवाले वेदपारग विप्र यदि ब्राह्मणोंकी कामनावशसे श्राद्धका अन्न भोजन करे, तो उसका व्रत नष्ट होगा।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पण्डित लोग धर्म्मको अनेकान्त अर्थात् अनेक फलाकार और बहुद्वार कहा करते हैं, इसलिये इस विषयमें किस प्रकार निष्ठाकी जा सकती है। आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! अहिंसा, सत्य अक्रोध, अनृशंसता, दम और आर्जव, ये कई एक धर्म्मके लक्षण कहके निश्चित हुए हैं। जो लोग धर्म्मकी प्रशंसा करते हुए इस पृथ्वीपर विचरते हैं, वे लोग यदि उस धर्म्मके अनाचरणमें प्रवृत्त होते हैं, तो सङ्करकार्य्यमें अभिरत कहके वर्णित हुआ करते हैं। जो नियमनिष्ठ मनुष्य उन्हें सुवर्ण, रत्न गऊ अथवा अन्नदान करता है, वह दश वर्ष तक विष्ठा भक्षण किया करता है। जो ब्राह्मण होके भी राग अथवा मोहके वशमें होकर दूसरेके किये वा बिना किये हुए पापकर्म्मको प्रकाशित करते हैं, वे मृत गऊ, भैंस आदिके मांसको भक्षण करनेवाले मेद जाति और स्वभाविक ब्राह्मण आदिकी हिंसा करनेवाले पुक्कश जातिकी भांति गिने जाते हैं। हे राजेन्द्र! जो मूढ़ पुरुष ब्रह्मचारी विप्रको वैश्वदेव बलि प्रदान नहीं करते, वे अशुभ लोकोंको भोग किया करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ब्रह्मचर्य्यमें श्रेष्ठता क्या है? धर्म्मका उत्तम लक्षण कौनसा है? और श्रेष्ठ पवित्रता किसे कहते हैं? इसे ही आप मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! मधु-मांस परित्याग करना ही ब्रह्मचर्य्यमें श्रेष्ठ है, विषयोंसे इन्द्रि-

योंको निवृत्त रखना ही सबसे श्रेष्ठ है, पवित्रता और मर्य्यादाके अन्तर्गत धर्म्मका लक्षण ही उत्कृष्ट है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! किस समय धर्म्माचरण करे? किस समय अर्थ व्यवहार करे और किस समयमें सुखी होवे? आप मुझसे वेही विषय कहिये।

भीष्म बोले, प्रातःकालमें अर्थ सेवा करे, फिर धर्म्माचरण करे उसके अनन्तर काममें सेवा करके सुखी हो, परन्तु उसमें आसक्त न होवे, ब्राह्मणोंका मान्य करे, गुरुओंका सम्मान करे, सब प्राणियोंके अनुकूल रहके मृदुस्वभाव और प्रियवादी होवे, अधिकारके बीच मिथ्या व्यवहार, राजकुलमें चुगली और गुरुजनोंके निकट अलीक व्यवहार करना ब्रह्महत्याके समान है। राजाके ऊपर प्रहार न करे, गऊको न मारे; जो पुरुष ऊपर कहे हुए दोनों कार्मोंको करता है, उसे भ्रूणहत्याके समान पाप होता है। अग्निको कभी परित्याग न करे, वेदको कभी न त्यागे। ब्राह्मणोंके विषयमें डाह न करे, आक्रोश करनेसे ब्रह्महत्याके समान पाप होता है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कैसे ब्राह्मण साधु कहाते हैं? किन लोगोंको दान देनेसे महाफल होता है और किस प्रकारके ब्राह्मणोंको भोजन कराना उचित है? आप मुझे इस ही विषयका उपदेश करिये।

भीष्म बोले, जो लोग क्रोधरहित धर्म्मपरायण सत्यमें रत और इन्द्रियोंको दमन करनेमें तत्पर हैं, वेही उत्तम ब्राह्मण हैं, वैसे ही ब्राह्मणोंको दान करनेसे महत् फल होता है। जो लोग अभिमानी नहीं हैं, सब कुछ सहते दृढ़-प्रतिज्ञ जितेन्द्रिय और सब प्राणियोंके हितमें रत रहते तथा सबको शुभ-कामना किया करते हैं, उन्हें दान करनेसे महत् फल होता है। जो लोग लोभरहित, शुचि, वेदज्ञ, लज्जाशील और सत्यवादी तथा निज कर्म्ममें रत रहते हैं, उन्हें ही दान करनेसे महाफल हुआ करता है। जो ब्राह्मण अङ्ग सहित चारों वेदोंको पढ़ते और यजन याजन आदि षट् कर्म्मोंमें प्रवृत्त रहते हैं, ऋषि लोग उन्हें ही दानका पात्र कहा करते हैं। जो लोग ऊपर कहे हुए गुणोंसे युक्त हों, उन्हें दान करनेसे महाफल होता है। गुणी पात्रको दान करनेसे दाताको सहस्र गुण फल प्राप्त होता है। बुद्धि, शास्त्र, ज्ञान, सच्चरित्र और शील सम्पन्न एक ब्राह्मण भी समस्त कुलका उद्धार करनेमें समर्थ हैं; वैसे ब्राह्मणको गऊ, घोड़े, अर्थ, अन्न तथा दूसरी समस्त वस्तु दान करना चाहिये, ऐसा करनेसे परलोकमें शोक नहीं करना पड़ता। इस लोकमें जब एक ही उत्तम ब्राह्मण समस्त कुलका उद्धार करता है, तब जो अनेक ब्राह्मण उद्धार करेंगे, उसमें सन्देह ही क्या है? इसलिये पात्रका विचार करके दान करना उचित है। साधु-सम्मत गुणयुक्त ब्राह्मणका नाम सुननेसे ही उसे दूरदेशसे लाके सत्कार करके सब प्रकार उसको पूजा करे।

२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दैव और पितर श्राद्धके समय देवर्षियोंके द्वारा जिस प्रकार विहित हुए हैं, उसे आप वर्णन करिये, मैं इसे ही सुननेकी अभिलाष करता हूं।

भीष्म बोले, मङ्गलाचार सम्पन्न पवित्रतायुक्त यत्नवान् मनुष्य पूर्व्वान्हमें दैवकार्य्य और अपरान्हमें पितृकार्य्य करे और मध्यान्ह कालमें आदरयुक्त होके मनुष्योंका दान करे। जो दान समयसे रहित होता है, उसे पण्डित लोग राक्षसोंका भाग समझते हैं। जो पांवसे लङ्घित है, जीभसे चाटा जाता, कलहसे बनता और जिसे रजस्वला स्त्री देखती है, धीर लोग उसे

राक्षसोंका अंश समझते हैं। हे भारत! घोषणा (ढिंढोरा) के द्वारा जो अन्न दान किया जाता है, जिसे व्रतहीन पुरुष भोजन किया करते हैं, और जिस अन्नको कुत्तेने स्पर्श किया हो, पण्डित लोग उस अन्नको राक्षसोंका भाग समझते हैं। जो अन्न केश, कीट आदिसे युक्त, कूतसे दूषित तथा अवज्ञाके हेतुसे बना हो, धीर पुरुष उसे राक्षसोंका भाग समझते हैं। हे भारत! अननुज्ञात अथवा जो शूद्र शस्त्र-जीवी और दुष्टात्मा मनुष्योंके द्वारा उपभुक्त हुआ करता है, धीर पुरुषोंने उसे राक्षसोंका भाग कहा है। जो दूसरेका जूठा भोजन किया जाता है और जो देवता अतिथि तथा बालकोंको न देकर स्वयं भोजन किया जाता है,—दैव और पितृ कार्य्योंमें वह सदा राक्षसोंका भाग कहके विदित हुआ करता है, हे नरश्रेष्ठ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंके द्वारा मन्त्रहीन और क्रिया रहित जो श्राद्धकी वस्तु परिवेषित होती है, पण्डित लोग उसे राक्षसोंका भाग समझते हैं। घृतकी आहुतिके अतिरिक्त जो कुछ वस्तु परिवेषित होती है और जिसे दुराचारी मनुष्य भोजन किया करते हैं, उसे धीर पुरुषोंने राक्षसोंका भाग कहा है। हे भरत श्रेष्ठ! राक्षसोंके जो भाग थे, वह सब कहे गये, अब पात्रभूत ब्राह्मणोंके विषयमें दानकी परीक्षा सुनिये।

हे महाराज! जो सब ब्राह्मण पतित अर्थात् महापातक करनेसे जातिसे बाहर किये गये हैं, तथा जो जड़ वा उन्मत्त हैं, वे दैव अथवा पैतृकार्य्यमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे महाराज! श्वेतकुष्ठी, क्लीव, मण्डलकुष्ठी और जो पुरुष यक्ष्मारोगसे आक्रान्त, अपस्मार रोगसे ग्रस्त तथा अन्धे हैं, वे निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे राजन्! जो सब ब्राह्मणचिकित्सक देवल अर्थात् देवार्चनवृत्तिजीवी, वृथा नियमधारी और सोमविक्रयी हैं, वे भी निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। गाने, नाचने, कूदने बजानेवाले, कथक (वृथालापी) और योधक पुरुष भी निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे महाराज! जो ब्राह्मण शूद्रोंके याजक, अध्यापक तथा उनके सेवक हैं, वे भी निमन्त्रणके योग्य नहीं है। हे भारत! जो ब्राह्मण अनुयोक्ता अर्थात् वेतन लेकर वेद पढ़ावे और अनुयुक्त अर्थात् जो वेतन देकर वेद पढ़े, वे दोनो ही श्राद्धीय अन्नके उपयुक्त नहीं हैं, क्यों कि वे दोनों ही वेद वेचनेवाले हैं। जो ब्राह्मण पहले सबमें अग्रणी रहे हों और पीछे हीन वर्णवाली शूद्रा स्त्रीको परिग्रह करे वह सर्व्वविद्या सम्पन्न होनेपर भी श्राद्धकालमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हो सकता। हे महाराज! जो सब ब्राह्मण श्रौत स्मार्त्तकर्म्मसे रहित हैं, जो मृतकोंका दान लेते और निज कर्म्मसे भ्रष्ट तथा पतित हैं, वे लोग भी निमन्त्रणके योग्य नहीं है। हे भारत! जो मनुष्य पहले अपरिज्ञात, गणपूर्व्व अर्थात् नीच स्वभाव और पुत्रिकापुत्र अर्थात् "इस कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह मेरा कहावेगा,"—ऐसा नियम करके जो कन्या दान की जाती है, उससे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह पितृगोत्रसे भ्रष्ट होकर मातृगोत्रोपजीवी होनेसे निन्दनीय होता है, इसलिये ऐसे पुरुष भी श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं। हे राजन्! जो मनुष्य ऋणकर्त्ता, कुसीदजीवी और प्राणियोंको वेंचकर जीवनका समय बिताता है, वह श्राद्धकालमें निमन्त्रित नहीं हो सकता। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग स्त्री जाति तथा स्त्रीपण्योपजीवी, वेश्यापति और सन्ध्या वन्दनसे रहित हैं, वे ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य नहीं हैं।

हे भरतश्रेष्ठ! दैव और पितृश्राद्धके समय जो ब्राह्मण निर्दिष्ट होते तथा दाता और ग्रहीताके सम्बन्धमें जो अभ्यनुज्ञात हैं, इस समय उसे सुनो। हे महाराज! जो व्रताचरण किया करते, गुणयुक्त और कर्षक, गायत्रीज्ञ और क्रियावान् हैं, वेही श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य हैं।

युद्धमें चात्रधर्म्म युक्त होनेपर भी कुलीन ब्राह्मणको निमन्त्रण करे। हे तात! परन्तु बणिकवृत्तिवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें निमन्त्रण न करे, जो ब्राह्मण अग्निहोत्री तथा जो ग्रामबासी हुआ करते हैं और जो अस्तेय अर्थात् कभी दूसरोंकी वस्तु हरण नहीं करते तथा जो लोग अतिथिज्ञ हैं, वेही श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो अदान्तिक और अतर्की हैं, तथा सम्पत्तिसम्पन्न गृहमें भिचावृत्ति अवलम्बन करके जीवनका समय व्यतीत करते हैं, वेही श्राद्धके समय निमन्त्रणके योग्य हैं। जो ब्राह्मण तीनों कालमें गायत्रीका जप करते और भिचावृत्ति करके भी क्रियावान हैं, वेही निमन्त्रणके योग्य हैं। हे राजन्! जो ब्राह्मण पहले दरिद्र रहके फिर समृद्धिमान हो, जो अहिंसक और अविद्यत्वादि दोषोंसे रहित हो, वही श्राद्धमें निमन्त्रणके योग्य है। हे भरतश्रेष्ठ! हे राजन्! जो ब्राह्मण अव्रती, धूर्त्त, अपहारक, प्राणिविक्रयी और बणिकवृत्तिसे युक्त होके भी देवताओंको दान करके पश्चात् सोमपान करता है, वह भी श्राद्धकालमें निमन्त्रणके योग्य है। हे राजन्! पहले दारुण कर्म्मोंसे धनोपार्ज्जन करके पीछे सर्व्वातिथि होता है, वह भी श्राद्धकालमें निमन्त्रणके योग्य है। वेद बेंचके जो धन प्राप्त होता है, जो धन स्त्रियोंके द्वारा उपार्ज्जित हुआ करता है और दीन वचन तथा मिथ्या शपथ आदिके सहारे जो धन संग्रह किया जाता है, वह पितरोंको अदेय है;

हे भरतर्षभ! श्राद्धको समाप्ति होनेपर जो ब्राह्मण "अघ्नस्वधा" इत्यादि वचन नहीं कहते, उन्हें गोशपथ पापके समान अधर्म्म हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! अमावस्या, ब्राह्मण, दही, घृत और जङ्गली हरिनका मांस जब प्राप्त हो, वही श्राद्धका समय है। श्राद्धको समाप्तिके समय प्रदाताके "स्वधोच्यत" वचन कहने पर ब्राह्मण यदि "अस्तस्वधा" कहे, तो वह वचन पितरोंको प्रीतिकर होता है। चत्रियको भी श्राद्ध समाप्त होनेके समय "पितृगण प्रसन्न होइये" ऐसा वचन कहना होगा। हे भारत! वैश्यका श्राद्धकर्म्म समाप्त होनेके समय "अचय्य" उच्चारण और शूद्रके श्राद्ध समाप्त होनेके समय "स्वति" शब्दका प्रयोग करना चाहिये। ब्राह्मणके देवकार्य्यमें ओंकारयुक्त पुण्याह-वाचन विहित है, चत्रियोंके पचमें ओंकार रहित पुण्याहवाचन करना चाहिये और वैश्यके देव कर्म्ममें केवल "देवतावृन्द प्रसन्न होवें"—इतनाही कहना योग्य है। कर्म्मोंके आनुपुर्व्वी क्रमसे भी विधिपूर्व्वक जो कार्य्य करना होता है, उसे सुनो। हे भारत! ब्राह्मण, चत्रिय और वैश्यके विषयमें ऊपर कही हुई सब क्रिया मन्त्रोक्त कहके निर्द्दिष्ट हैं। हे युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंकी रसना मुञ्जमयी, चत्रियोंकी रसना मौर्व्वी और वैश्योंकी रसना बल्वज तृणमयी कही जाती है, यही धर्म्म है। अब दाता और प्रतिग्रहीताके धर्म्माधर्म्म सुनो।

एक कार्षापणके निमित्त मिथ्यावादी ब्राह्मणको जितने परिमाणसे पातक संज्ञिक अधर्म्म होता है, चत्रियको उस विषयमें चौगुना और वैश्यको अठगुणा हुआ करता है। ब्राह्मणको उचित है, कि विप्रके द्वारा पहले निमन्त्रित होकर दूसरेके यहां भोजन न करे, यदि करे, जो पहले निमन्त्रण देनेवालेके निकट वह निकृष्ट होता है, और पशुहिंसासे जो पाप हुआ करता है, उसे भी वही पाप लगता है। चत्रिय भी यदि वैश्यसे निमन्त्रित होके दूसरेके यहां भोजन करे, तो उसके समोप निन्दित होके पशुहिंसाके पापका अर्द्ध-भाग पाता है। हे राजन्! ब्राह्मण आदिके देव अथवा पितृकार्य्यमें जो ब्राह्मण बिना स्नान किये भोजन करता है, उसे मिथ्या वचन और गोवध-जनित अधर्म्म हुआ करता है। हे महाराज! जो ब्राह्मण जन्म मृत्यु आदिके अशौचसे युक्त

होकर दूसरेके देव और पितृकार्य्यमें जानके अथवा लोभ वशसे भोजन करता है, उसे गोवध और मिथ्याभाषण जनित अधर्म्म हुआ करता है। हे भारत! जो पुरुष तीर्थ यात्रा आदिके मिससे जीविकार्थी होकर अर्थ लाभकी इच्छा करता अथवा कार्य्यके लिये दाताके निकट धन मांगता है, हे राजेन्द्र! उसे भी गोहत्या और मिथ्या भाषण जनित अधर्म्म होता है। जो पुरुष वेदाध्ययन, व्रताचरण और चरित्र संशो-धन नहीं करता, उसे यदि ब्राह्मण आदि तीनोंवर्ण मन्त्रोच्चारण पूर्व्वक परिवेशन करें तो उन्हें भी गोवध और मिथ्या बचन जनित अधर्म्म हुआ करता है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पितृ और देवकार्य्यमें जो कुछ दान किया जाता है, वह दानको वस्तु कैसे पुरुषोंको दान करनेसे महत् फल हुआ करता है? मैं इसे ही जाननेको अभिलाष करता हूं।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! जैसे कृषक लोग उत्तम दृष्टिकी प्रतीक्षा करते हैं, तैसे ही जिन लोगोंकी स्त्रियें भोजन पात्रके शेष बचे हुए अन्नके सहित थालीमें स्थित परिशिष्ट अन्नकी प्रतीक्षा किया करती हैं, उन लोगोंको भोजन करावे। हे महाराज! जो लोग चरित-निरत कृश और कृश वृत्तिवाले हैं, और जिनके निकट अतिथि गमन किया करते हैं, उन्हें दान कर-नेसे महत् फल होता है। हे राजन्! चरित्र ही जिनका उपजीव्य है, चरित्र ही जिनका स्त्रीपुत्र आदि परिवारबर्ग है, चरित्र ही जिनका बल और परलोक गमनका अवलम्ब है, जो लोग अर्थका प्रयोजन होने पर ही अर्थी बनते हैं, केवल अर्थ संग्रहके लिये नहीं जांचते, उन्हें दान करनेसे महत् फल हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! जो तस्कर अथवा शत्रुसे भयार्त्त होके याचक बनते अथवा भोजन करनेकी इच्छा करते हैं, उन्हें दान करनेसे महा फल हुआ करता है। जिसका ब्राह्मण दरिद्रतावशसे हाथमें अन्न लिये हो और कोई भूखा ब्राह्मण उससे मांगे, तो उसे दान करनेसे महाफल होता है। जो ब्राह्मण देशसंप्लवके समय स्त्री आदि सर्व्वस्व हरे जानेपर धनके लिये सम्मुख आवे, तो उसे दान करनेसे महत् फल हुआ करता है। जो लोग तपस्वी और तपमें निष्ठा-वान् हैं, जो पुरुष उनके निमित्त भैक्षचर्य्य किया करते हैं, तथा जो याचक होके किञ्चित भीख मांगते हैं, उन्हें दान देनेसे महाफल होता है। जो ब्राह्मण व्रतनिष्ठ नियमस्थ और श्रुतिसम्मत होकर व्रतादि समाप्तिके निमित्त धनकी इच्छा करते हैं, उन्हें दान करनेसे महत् फल होता है। प्रभुविष्णुगणने जिनका सर्व्वस्व हरण किया है, जो लोग निर्द्दोष हैं तथा जो किसी प्रकारसे पेट भरनेके लिये भोजनकी अभिलाष करते हैं, उन्हें दान कर-नेसे महत् फल होता है। जो लोग पाषण्ड-मर्य्यादासे युक्त धर्म्मसे बहुत दूर निवास किया करते हैं, जो दुर्ब्बल और धनहीन हैं, उन्हें दान करनेसे महाफल होता है। हे भरतश्रेष्ठ! दान विषयमें यह महाफलकी विधि तुमने सुनी, अब जिसके द्वारा लोग नरक और स्वर्गमें गमन करते हैं, उसे सुनो।

हे युधिष्ठिर! गुरुके लिये अथवा अभय-दानके निमित्त, इन दो प्रकारके प्रयोजनोंके अतिरिक्त जो लोग मिथ्या कहते हैं, वे नरक-गामी होते हैं। जो परायी स्त्री हरता है, अथवा परस्त्री गमन करता है, वा परनारी हर-नेमें सहायता वा प्रस्ताव करता है, वह नरक-गामी होता है। जो परस्वापहारी अर्थात् परस्वनाश करता है, वा दूसरके दोषोंको सूचना करता है, वह नरकमें पड़ता है। हे भारत! जो मनुष्य पानीयशाला सभा संक्रमण अर्थात् सेतु और गृह भेद करते हैं; जो मनुष्य अनाथ, बाला, बर्षीयसी, डरी हुई और

दुःखिनी स्त्रीको ठगते हैं, वे नरकगामी हुआ करते हैं। हे भारत! जो लोग वृत्तिच्छेद, दारच्छेद, मित्रच्छेद करते और आशा तोड़ते हैं, वे भी नरकमें गमन किया करते हैं। जो दूसरेके निकट राजाकी चुगली करते हैं, श्रेष्ठ पुरुषोंकी मर्य्यादा तोड़ते हैं, परवृत्तिको उपजीव्य किया करते और मित्रोंके निकट अकृतज्ञ हुआ करते हैं; जो लोग वेदविरोधी और पाखण्डी हैं, और जो साधुओंकी निन्दा करते तथा धर्म्मसङ्केतकी भी निन्दा किया करते हैं, जो मार्गसे पतित हैं, वे सभी नरकमें गमन किया करते हैं। जो लोग सबके विरोधी विषयोंका व्यवहार करते, जो परीचारहित हैं, तथा जो प्राणिहिंसामें प्रवृत्त रहते हैं, वे भी नरकमें गमन करते हैं। जो लोग आशावान, कृतनिर्द्देष, वेतनयुक्त और परिश्रम किये हुए पुरुषोंको भेदित करके स्वामीके समीपसे दूर कर देते हैं, वे नरकगामी हुआ करते हैं, जो पत्नी, अग्नि, सेवक और अतिथियोंको परित्याग करते हैं, तथा जिन लोगोंमें पितृ पूजा और देवार्चना नष्ट हुई है, वे भी नरकमें जाते हैं। जो वेदोंको बेंचते हैं वेदोंके दोष वर्णन करते हैं और जो वेद लेखक हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। जो मनुष्य चारों आश्रमोंसे बाहर होके वेद विरुद्ध अकर्म्मके सहारे जीवन बिताते हैं, वे भी नरकमें गमन किया करते हैं। हे राजन्! जो लोग केश, विष और चीर बेचते हैं, वे भी नरकमें गमन करते हैं। हे युधिष्ठिर! ब्राह्मण, गऊ और कन्यागणके कार्य्य विषयमें जो विघ्नकारी होता है, वह नरकमें गमन करता है। हे धर्म्मराज! जो लोग शस्त्र बेंचते और बनाते हैं, तथा शल्य और धनुषको बनाते तथा बेचते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो शिला शङ्कु अथवा गढ़के सहारे मार्गरोकता है, वह नरकगामी होता है। हे भरतश्रेष्ठ! जो उपाध्याय, सेवक, भक्त और निरपराधिनी-स्त्रीको परित्याग करता है, वह नरकगामी हुआ करता है, जो अप्राप्त दम्यावस्थामें पशुओंको नाक छेदता है और अण्डकोशको मर्द्दन करके उनके बलवीर्य्यको नष्ट करता है, वह भी नरकगामी होता है। जो राजा प्रजाकी रक्षा न करके छठवां भाग कर लेता है और समर्थ होके दान नहीं करता, वह भी नरकगामी हुआ करता है। जो कृतकार्य्य होकर क्षमाशील, दान्त, बुद्धिमान और बहुत समयके सहवासी मनुष्यको परित्याग करता है, वह भी नरकमें पड़ता है। जो मनुष्य बालक, बूढ़े और सेवकोंको अन्न न देकर स्वयं अगाड़ी भोजन करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग नरकमें जाते हैं, उनका विषय कहा गया; अब जो मनुष्य स्वर्गलोकमें गमन करते हैं, उनका विषय कहता हूं।

हे भारत! दैव आदि समस्त कार्य्योंमें ब्राह्मणोंको अतिक्रम करनेसे पुत्र, पशु प्रभृति विनष्ट होते हैं, इसलिये जो ब्राह्मणातिक्रम नहीं करते, वे स्वर्गगामी होते हैं। हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य दान, तपस्या और सत्यके सहारे धर्म्मपूर्व्वक कार्य्य करते हैं, वे स्वर्गगामी हुआ करते हैं। जो मनुष्य गुरुसेवा और तपस्यासे विद्या उपार्ज्जन करके प्रतिग्रहसे निवृत्त रहते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। जिसके द्वारा लोग भय, पाप, सङ्कट, दरिद्रता और व्याधिसे मुक्त होते हैं, वे पुरुष भी स्वर्गगामी होते हैं। क्षमावान, धीर, सब कार्य्योंमें उद्यत रहनेवाले और मङ्गलाचारयुक्त पुरुष स्वर्गगामी होते हैं। जो पुरुष मधु, मांस और परस्त्री गमनसे निवृत्त रहते तथा मद्य पान करनेमें प्रवृत्त नहीं होते, वे मनुष्य स्वर्गमें गमन करते हैं। हे भारत! जो सब आश्रमोंको पालन करनेवाले कुल, देश तथा नगरोंके रक्षाकर्त्ता हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग वस्त्र और आभूषण दान करते, अन्न जल वितरण करते और कुटुम्बको

प्रतिपालन करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य सर्व्वहिंसासे निवृत्त होकर सब कुछ सहते हैं और सबके अवलम्ब हैं, वे भी स्वर्गमें गमन करते हैं। जो सब मनुष्य जितेन्द्रिय होकर मातापिताकी सेवा करते हैं और भाइयोंके विषयमें स्नेहवान रहते हैं, वेभी स्वर्गमें गमन करते हैं।

हे भारत! जो मनुष्य बलवान, यौवनसम्पन्न, आढ्य, जितेन्द्रिय और वीर होते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। जो अपराधी पुरुषके ऊपर भी स्नेहयुक्त, कोमल स्वभाव और मृदुवत्सल होते हैं, तथा आराधनासे दूसरोंको सुखी करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य सहस्र पुरुषोंको परिवेशन करते तथा उनका त्राण करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग सुवर्ण और गऊ दान करते हैं, तथा यान और वाहन प्रदान किया करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। हे युधिष्ठिर! जो लोग वैवाहिक वस्तु वस्त्र आभरण आदि तथा दास दासी प्रभृति दान करते हैं, वे भी स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग विहार स्थान, आश्रम, बगीचा, कूप आराम, सभा, पानीयशाला और चैत्र आदि निर्म्माण करते हैं, वे पुरुष स्वर्गगामी होते हैं। हे भारत! जो मनुष्य निवेशगृह चैत्र और वासगृह दान तथा प्रार्थित विषय प्रदान करते हैं, वेभी स्वर्गगामी होते हैं। हे युधिष्ठिर! जो पुरुष रस, बीज और धान्य आदि स्वयं उत्पन्न करके दान करते हैं, वेभी स्वर्गगामी होते हैं। जो पुरुष सत्कुलमें उत्पन्न होकर बहु पुत्रसे युक्त और शतायु होकर दयावान् तथा क्रोधजयी होते हैं, वे स्वर्गमें गमन करते हैं। हे भारत! परलोकके निमित्त पहले ऋषियोंके द्वारा दैव वा पितृ कार्य्यमें जो दानधर्म्म वर्णित हुआथा, उसीको मैंने कहा है।

२३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! हिंसा न करनेपर भी किस प्रकारसे ब्रह्महत्या विहित हुई है? इसे आप मेरे निकट यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! पहले समयमें व्यासदेवको आमन्त्रण करके मैंने जो पूछा था, इस समय वह विषय तुमसे कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।

मैंने व्यासदेवसे पूछा, हे मुनि! आप वसिष्ठके प्रपौत्र हैं, इसलिये यथार्थ विषय वर्णन करिये,—कि हिंसा न करनेपर भी किस प्रकारसे ब्रह्महत्या विहित होती है? हे राजन्! पराशर पुत्र व्यासदेव मेरा प्रश्न सुनके धर्म्म विषयमें निपुणभाव और निःसंशय रूपसे उत्तम वचन कहने लगे। जो मनुष्य गुणशाली ब्राह्मणको भिक्षा देनेके लिये स्वयं आह्वान करके फिर "नहीं" कहके लौटा देता है, उसे ब्रह्मघाती जानो। हे भारत! जो दुर्बुद्धिवाला पुरुष अङ्ग सहित वेद पढ़नेवाले मध्यस्थ ब्राह्मणकी वृत्ति हरता है, उसे ब्रह्मघाती जानना चाहिये, जो मनुष्य समुच्चार्य्यमाण श्रुति अथवा मुनियोंके द्वारा पूर्ण रीतिसे बने हुए शास्त्रोंको अनभिज्ञ लोगोंके निमित्त दूषित करता है, उसे भी ब्रह्मघाती जानना होगा। जो पुरुष रूपवान बड़ी कन्या, सदृश वरको नहीं दान करता, उसे ब्रह्मघाती जानना चाहिये। जो अधर्म्ममें रत रहनेवाला मूढ़ मनुष्य द्विजातियोंको निरर्थक मर्म्मान्तिक शोक प्रदान करता है, उसे ब्रह्मघाती जानो। जो पुरुष नेत्रहीन जड़ और पंगुओंका सर्व्वस्व धन हरण करता है, उसे भी ब्रह्मघाती जानो।

२४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ भरतश्रेष्ठ! तीर्थ दर्शन, तीर्थ स्नान और तीर्थ माहात्म्य

सुनना अत्यन्त कल्याणकारी है, इसलिये मैं उसे यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे प्रभु भरतर्षभ! पृथिवीपर जो सब तीर्थ पवित्र हों, वह आप मेरे समीप वर्णन करिये, मैं सदासे उसके सुननेका अभिलाषी हूं।

भीष्म बोले, हे महातेजस्वी! इस तीर्थ प्रसङ्गको अङ्गिरा मुनिने कहा है, उसे सुननेसे तुम्हारा कल्याण होगा तथा तुम्हें उत्तम धर्म्म प्राप्त होगा। संशितव्रती गौतमने तपोवनमें स्थित, धीर विप्र महामुनि अङ्गिराके निकट जाके प्रश्न किया,—हे भगवान् महामुनि! मुझे तीर्थ विषयक धर्म्ममें कुछ सन्देह है, इसलिये उसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये। हे महाप्राज्ञ मुनिश्रेष्ठ! तीर्थोंमें स्नान करनेसे परलोकमें क्या फल मिलता है, आप मुझसे वही कहिये।

अङ्गिरा बोले, सप्ताह भर निराहार रहके चन्द्रभागा और तरङ्गमालायुक्त वितस्ता नदीमें स्नान करनेसे मनुष्य मुनियोंकी भांति पवित्र होता है। काश्मीर राज्यसे जो नदियें महानद सिन्धुमें गिरती हैं, उनमें जाके स्नान करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है। पुष्कर, प्रभास, नैमिष, सागरोदक देविका, इन्द्रमार्ग और स्वर्णबिन्दुमें स्नान करनेसे पुरुष विमानपर चढ़के अप्सराओंसे स्तुत और विबोधित होता है। हिरण्य बिन्दुमें स्नान करके प्रयत होकर उसे प्रणाम करने और कुशेशय नदमें स्नान करनेसे सब पाप नष्ट होजाते हैं। गन्धमादनके निकट इन्द्रतोया और कुरङ्ग देशको करतोया नदीमें त्रिरात्र उपवास करके प्रयत और पवित्र होकर स्नान करनेसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। गङ्गाद्वार, कुशावर्त्त, बिल्वक नीलपर्व्वत और कनखलमें स्नान करनेसे मनुष्य पापरहित होकर सुरलोकमें गमन करता है। ब्रह्मचारी, जितक्रोध, सत्यसन्ध और अहिंसक मनुष्य जल ह्रदमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल पाते हैं। जिस स्थानमें भागीरथी गङ्गा उत्तर दिशामें गिरती हैं, जो मनुष्य निराहार रहके एक महीनेतक उस महेश्वरके स्वर्ग, मर्त्य और पाताल, तीनों स्थानोंमें अभिषिक्त होता है, वह सब देवताओंका दर्शन करता है। सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और इन्द्रमार्गमें तर्पण करके जो मनुष्य फिर जन्म ग्रहण करते हैं, सुधा भोजन करनेमें समर्थ होते हैं। जो लोग अग्निहोत्र परायण, पवित्र और एक महीनेतक निराहारी होके महाश्रममें अभिषिक्त होते हैं, वे एक महीनेके बीच सिद्धि लाभ कर सकते हैं। जो पुरुष त्रिरात्र उपवास करके अलोलुप होकर महाह्रद भृगुतुङ्गमें स्नान करता है, वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। कन्याकूप और बलाकामें स्नान करनेसे देवताओंके बीच कीर्त्तिमान होकर मनुष्य यशोराशिसे विभूषित होता है। देविका और सुन्दरिका ह्रदमें अश्विनी नक्षत्रमें स्नान करनेसे मनुष्य परलोकमें रूप और तेजोयुक्त हुआ करता है। एक पक्षतक निराहार रहके महागङ्गा और कृत्तिकाङ्गारकमें स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होकर स्वर्गमें जाते हैं वैमानिक तथा किङ्किणिकाश्रममें स्नान करनेसे मनुष्य अप्सराओंके दिव्य निवासमें कामचारी होकर वास करता है। बालिकाश्रममें जाके विपाशा नदीमें त्रिरात्र स्नान करनेसे ब्रह्मचारी और जितक्रोध होकर मनुष्य संसारसे विमुक्त होता है। जो पुरुष कृत्तिकाश्रममें स्नान करके पितृ तर्पण करता है, वह महादेवको सन्तुष्ट करके निर्म्मल होकर स्वर्गमें गमन किया करता है। त्रिरात्र उपवास करके पवित्र होकर महापुरमें स्नान करनेसे मनुष्य पाप रहित और कृतोदक होकर देव लोक पाता है। शरस्तम्ब, कुशस्तम्ब और द्रोणशर्म्म पदमें जो मनुष्य जल गिरनेके समय स्नान करते हैं, वे अप्सराओंसे सेवित होते हैं। चित्रकूट, जनस्थान और मन्दाकिनीके जलमें

निराहारी होकर स्नान करनेसे मनुष्य राजलक्ष्मीके द्वारा निषिवित होता है। श्यामाके आश्रममें आगमन करके निराहारी होकर एक पक्ष वहां निवास करके जो पुरुष अभिषिक्त होता है, वह अन्तर्डानका फल अर्थात् गन्धर्व्वादि लोकोंको भोगता है। कौशिकी नदीमें जाके वायुभची और अलोलुप होकर विरात्र उपवास करनेसे गन्धर्व्व नगरमें वास होता है। एक महीनेतक निराहार रहके रम्य और गन्धतारकमें स्नान करनेसे मनुष्य अन्तर्डानका फल पाता और इक्कीस रात्रिमें स्वर्ग लोकमें जा सकता है। जो पुरुष मतङ्गवापीमें एक रात स्नान करता है, वह सिद्ध होकर सहजमें ही सनातन अन्धक लोक पाता है। जितेन्द्रिय पुरुष नैमिष और स्वर्ग तीर्थमें जलस्पर्श करके एक महीनेतक स्नान करनेसे पुरुषमेधका फल पानेमें समर्थ होता है। गङ्गाह्रद और उत्पलावनमें एक महीनेतक स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। गंगा यमुनाके तीर्थमें और कालञ्जर पर्व्वतपर एक महीनेतक स्नान करनेसे दश अश्वमेधका फल प्राप्त होता है। षष्ठि ह्रदमें स्नान करना अन्नदानसे भी श्रेष्ठ है।

हे भरतश्रेष्ठ! माघके महीनेमें प्रयागमें तीन करोड़ दश हजार तीर्थ इकट्ठे होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! माघमासमें प्रयागमें सदा संशितव्रत होकर स्नान करनेसे मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्ग लोक पाता है। मरुद्गण और पितृगणके आश्रम तथा वैवस्वत तीर्थमें पवित्र होकर स्नान करनेसे मनुष्य तीर्थ स्वरूप होता है। ब्रह्म सरोवर तथा भागीरथीमें जाकर निराहारी होकर एक महीनेतक स्नान करनेसे चन्द्रलोक प्राप्त होता है। उत्पातक और अष्टावक्र तीर्थमें बारह दिन अनाहारी होकर स्नान करनेसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। गयाके अन्तर्गत अश्मपृष्टमें स्नान करनेसे पहली ब्रह्महत्या निरविन्द पर्व्वत पर दूसरी ब्रह्महत्या और क्रौञ्चपदीमें स्नान करनेसे मनुष्य तीसरी ब्रह्महत्यासे भी छूट जाता है। कलविंगमें स्नान करनेसे भूरिवारि विदित हो सकती है। अग्निपुरमें स्नान करनेसे मनुष्य अग्निकन्यापुरीमें निवास करता है। करवीरपुर और विशाला नदीमें स्नान करनेसे मनुष्य नन्दनवनमें अप्सराओंसे सेवित होता है। कार्त्तिकी पूर्णमासीको समाहित होकर उर्व्वशीतीर्थमें जाके लौहित्य नदमें विधिपूर्व्वक स्नान करनेसे मनुष्य पुण्डरीक फल पा सकता है। बारह दिन निराहार रहके रामह्रद और विपाशा नदीमें स्नान करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाता है। मनुष्य एक महीनेतक निराहारी रहके शुद्धचित्तसे महाह्रदमें स्नान करे, तो यमदग्निकी गति पानेमें समर्थ होवे। सत्यसन्ध अहिंसक मनुष्य विन्ध्या-तीर्थमें आत्माको सन्तप्त करके विनयके सहित तपस्या अवलम्बन करनेसे एक महीनेमें सिद्धि लाभ कर सकता है। नर्म्मदा और सुपारकोदकमें एक पक्षतक निराहारी रहके स्नान करनेसे मनुष्य राजपुत्र होता है। जम्बूमार्गमें तीन महीनेतक संयत और उत्तम रीतिसे समाहित होकर रहनेसे मनुष्य एक दिन रातमें सिद्धिलाभ करता है। मनुष्य शाकभची और चीरवासा होकर कोकामुखमें स्नान करके चाण्डालिकाश्रममें जानेसे कुमारी संज्ञक दश तीर्थोंको पाता है, वह पुरुष कदापि यमपुरीमें नहीं जाता। कन्या ह्रदमें वास करनेवाले देवलोकमें जाते हैं। हे महाबाहो! प्रभास तीर्थमें अमावस्या तिथिको एक रात्रि समाहित चित्तसे निवास करके जो लोग सिद्धि लाभ करते हैं, वे अमर होते हैं। आर्ष्टिसेनके आश्रम, उज्जानक और पिङ्गार आश्रममें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होता है। कुल्या तीर्थमें स्नान कर तीनरात उपवास करके अघमर्षण मन्त्रका जप करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। पिण्डा-

रकमें स्नान करके एक रात्र उपवास करनेसे मनुष्य पवित्र होकर रात्रि बीतनेपर अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है। धर्म्मारण्यमें शोभित ब्रह्मसरोवरमें जाके स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होके पुण्डरीक फल पाता है। मैनाक पर्व्वतपर स्नान करके सन्ध्या उपासना करनेसे मनुष्य एक महीनेमें कामको जीतकर सर्व्वमेध यज्ञका फल पाता है। भ्रूणहत्या करनेवाला पुरुष एक सौ योजनसे कालोटक नन्दिकुण्ड और उत्तर मानसमें जानेसे उक्त पापसे मुक्त होता है। नन्दीश्वरकी मूर्त्तिका दर्शन करनेसे पापसे छुटकारा मिलता है। मनुष्य स्वर्गमार्गमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोकमें गमन करता है। महादेवका श्वशुर हिमवान् नाम विख्यात पर्व्वत सब रत्नोंकी खान तथा सिद्ध चारणोंसे निषेवित् है, उस स्थानमें अनशन व्रत अवलम्बन करके जो वेदान्तपारदर्शी ब्राह्मण जीवनको अनित्य समझकर विधिपूर्व्वक देवताओं और मुनियोंकी पूजा तथा उन्हें नमस्कार करके शरीर छोड़ते हैं, वे सिद्ध होकर स्वर्गमें गमन करते हैं और अन्तमें सनातन ब्रह्मलोकमें जाते हैं। जो पुरुष काम, क्रोध और लोभको जीतके तीर्थमें वास करता है, तीर्थगमन निबन्धनसे उसके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता। जो सब तीर्थ अगम्य, दुर्गम और विषम हैं, सर्व्वतीर्थोंकी समीचाके हेतु मनके सहारे उन तीर्थोंमें गमन करे, यही मध्य, पवित्र और यही उत्तम स्वर्गजनक है; यह देवताओंका रहस्य है, इसलिये अश्राव्य तथा अत्यन्त पावन है। यह द्विजातियोंको दान करे, आत्महितकर साधु सुहृद और अनुयायी शिष्योंके कानमें इसका जप करे। महातपस्वी अङ्गिरा मुनिने इसे गौतमको दान किया था, अङ्गिरा धीमान् काश्यपके द्वारा पूर्व्वरीतिसे अनुज्ञात हुए थे; यह महर्षियोंका जप्य है, समस्त पवित्र वस्तुओंके बीच उत्तम है; मनुष्य उठकर नित्य इसे जपनेसे पापरहित होके स्वर्गलोक पाते हैं। जो लोग अंगिरासम्मत इस रहस्यको सुनते हैं, वे उत्तम कुलमें जन्म लेकर निज जातिस्मर हुआ करते हैं।

२५ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमें वृहस्पति क्षमामें ब्रह्मा, पराक्रममें इन्द्र और तेजमें सूर्य्यके समान अत्यन्त तेजस्वी भीष्म जब युद्धक्षेत्रमें अर्ज्जुनके द्वारा घायल होकर शरशय्या पर शयन करते थे, जिस समय युधिष्ठिर भाइयों तथा अन्य पुरुषोंके सहित उनसे धर्म्म विषय पूछ रहे थे, उस समयमें उस कालाकांक्षो भरत श्रेष्ठको देखनेकी इच्छा करके महर्षि अत्रि, बसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, गौतम, अगस्त्य, सुयतात्मवान्, सुमति, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, सम्वर्त्त, प्रमति, दम, वृहस्पति, उशना, व्यास, च्यवन, काश्यप, ध्रुव, दुर्व्वासा, जमदग्नि, मारकण्डेय, गालव, भरद्वाज, रैभ्य, यवक्रीत, त्रितस्थूलाक्ष, शवलाक्ष, कण्व, मेधातिथि, कृश, नारद, पर्व्वत, सुधन्वा, एकत, द्वित, नितम्भू, भुवन, धौम्य, शतानन्द, अकृतव्रण जामदग्न्य राम और कच आदि महात्मा महर्षि लोग भीष्मको देखनेके लिये वहां पर उपस्थित हुए। भाइयोंके सहित युधिष्ठिरने उन आये हुए महानुभाव महर्षियोंकी विधिपूर्व्वक पूजा की। महर्षि लोग पूजित होकर सुखसे बैठके भीष्माश्रित उत्तम मधुर सर्व्वेन्द्रिय मनोहर कथा कहने लगे। भीष्मने उन भावितात्मा ऋषियोंका वचन सुनकर परम सन्तुष्ट होकर अपनेको स्वर्गमें पहुंचा हुआ समझा।

अनन्तर वे महर्षिवृन्द भीष्म और पाण्डवोंको आमन्त्रण करके सबके सम्मुखमें ही अन्तर्द्धान होगये। महाभाग महर्षियोंके अन्तर्हित होनेपर भी पाण्डवगण बारम्बार उनको

स्तुति तथा प्रणति करने लगी। अनन्तर वे सब प्रसन्न होकर कुरुसत्तम गंगानन्दनके निकट इस प्रकार उपस्थित हुए, जैसे मन्त्रकोविद ब्राह्मण उदयशील सूर्य्यके सम्मुख उपस्थित होते हैं। पाण्डव लोग ऋषियोंके प्रभावसे सब दिशाओंको प्रकाशमान देखके परम बिस्मित हुए। उन लोगोंने ऋषियोंके योग ऐश्वर्य्य अर्थात् आकाश गमन और अन्तर्द्धान आदि महामहिमाके विषयकी चिन्ता करके भीष्मके संग उनके अवलम्बनकी कथाका प्रस्ताव किया। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कथा समाप्त होनेपर धर्म्मनन्दन पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने भीष्मके दोनों चरणोंको मस्तकसे स्पर्श करके धर्म्मयुक्त प्रश्न किया।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कौन देश, जनपद, आश्रम, पर्व्वत और नदियें पुण्यप्रभावमें प्रकृष्ट तथा जानने योग्य हैं?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें प्राचीन लोग शिलोञ्छवृत्ति और सिद्धके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। कोई श्रेष्ठ पुरुष इस शैल भूषित पृथिवीकी बारम्बार परिक्रमा करके एक उत्तम शिलवृत्ति गृहस्थके गृहमें उपस्थित हुआ। वह सुमुख सुख भाक् नाम ऋषिने वहां उपस्थित होते ही उससे विधिपूर्व्वक पूजित होकर एक रात्रि उस स्थानमें वास किया। शिलवृत्ति दूसरे दिन भोरके समय कर्त्तव्य कार्य्योंको समाप्तकर पवित्र होकर उस कृतकृत्य सिद्ध अतिथिके निकट उपस्थित हुआ। वे दोनों महात्मा सुखसे एकत्र बैठके वेद उपनिषत् सम्बन्धीय कथा कहने लगे। कथा शेष होनेपर बुद्धिमान् शिलवृत्तिने यत्नपूर्व्वक सिद्धको आमन्त्रण करके वही विषय पूछा, जो कि तुम मुझसे पूछ रहे हो।

शिलवृत्ति बोला, कौन कौनसे देश, जनपद, आश्रम, पर्व्वत और नदियें पुण्य प्रभावमें उत्कृष्ट है, तथा किन्हें विशेष रूपसे जानना होता है? उसेही आप वर्णन करिये।

सिद्ध बोला, वेही देश, जनपद, आश्रम और पर्व्वत उत्तम हैं, जिनके बीचसे नदियोंमें श्रेष्ठ भागीरथी गङ्गा गमन करती हैं; तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, यज्ञ और दानसे जीवकी जो गति प्राप्त होती है, गंगाकी सेवन करनेसे लोग उस ही गतिको पानेमें समर्थ होते हैं। जिन देहधारियोंका शरीर गंगाजलसे स्पर्श होके नष्ट होता है, उनके उस देहत्यागसे स्वर्गलोक विहित हुआ करता है। हे विप्र! जिन लोगोंके सब कार्य्य गङ्गाजलसे सम्पन्न होते हैं, वे मनुष्य पृथिवीको त्यागके स्वर्गमें निवास करते हैं। जो मनुष्य पहली अवस्थामें पापकार्य्य करके पीछे गंगातीरपर वास करते हैं, वे भी उत्तम गति पासकते हैं, पवित्र गंगाजलमें स्नान करके जो लोग प्रसन्नचित्त हुए हैं, उन मनुष्योंका जितना पुण्य बढ़ता है, सैकड़ों यज्ञोंसे भी वैसा पुण्य लाभ नहीं होता। मनुष्यकी हड्डी जितने समयतक गंगाजलमें स्थित रहती है, उतने सहस्र बर्षतक वह स्वर्गलोकमें वास किया करता है। जैसे सूर्य्य उदय होनेके समय घोर अन्धकारका नाश करके शोभित होता है, गंगाजलमें स्नान करनेवाले मनुष्य भी उस ही प्रकार पापोंको नष्ट करके प्रकाशित होते हैं। चन्द्रमासे रहित रात्रि और पुष्पहीन वृक्षोंकी भांति कल्याणकारी गंगाजलसे रहित दिशा और देश शोभाहीन हुआ करते हैं। धर्म्माचारनरहित आश्रम और सोम रसरहित यज्ञकी भांति गंगाके बिना जगत् शोभा नहीं पाता। सूर्य्यरहित आकाशमण्डल, पहाड़रहित पृथ्वी तथा वायुहीन आकाशकी भांति सब देश और सब दिशा निःसन्देह प्रभाहीन होती हैं। तीनों लोकके बीच जो सब प्राणी हैं, वे पवित्र गंगाजलसे तर्पित होकर परम तृप्ति लाभ करते हैं। जो पुरुष सूर्य्य सन्तप्त गंगाजल पीता है, उसे गौवोंके गोबरसे बाहर हुए यव बिकारके भक्षण करने तथा यावकव्रताचरणसे भी अधिक

फल प्राप्त होता है। जो पुरुष शरीर शुद्ध करनेके लिये सहस्र चान्द्रायण व्रत करता है और जो मनुष्य गंगाजल पीता है नहीं कह सकते, कि वे दोनों समान होते हैं, वा नहीं; यदि कोई पुरुष सहस्र युग पर्य्यन्त एक पदसे निवास करे और दूसरा पुरुष यदि एक महीनेतक गंगाके तीरपर बास करे, तो वे दोनों समान होसकते हैं और नहीं भी होसकते। जो पुरुष दश हजार युगतक अवाक्‌शिरा होकर लटकता रहता है और जो पुरुष गंगाके तटपर बास करता है वह पहले कहे हुए पुरुषसे श्रेष्ठ होता है। हे द्विजोत्तम! जैसे अग्निमें पड़ी हुई रुई भस्म होजाती है, वैसे ही जो पुरुष गंगामें स्नान करते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते हैं। इस लोकमें दुःखयुक्त चित्त और उपायकी खोज करनेवाले प्राणियोंके लिये गंगाके समान और कोई भी गति नहीं है। जैसे सर्प तार्क्ष्य दर्शन निबन्धनसे विषरहित होते हैं, वैसेही मनुष्य भी गंगाका दर्शन करते ही पापोंसे छूट जाते हैं। जो लोग प्रतिष्ठारहित होके अधर्म्मको अवलम्बन किया करते हैं, इस लोकमें गंगाका ही उन लोगोंके लिये सहारा है, सुख और संरक्षण धर्म्मस्वरूप है। अनेक प्रकारके प्रकृष्ट पापग्रस्त अधम पुरुष नरकमें पड़ते पड़ते भी यदि गंगाका आश्रय करें, तो गंगा उन्हें परलोकमें भी उत्तीर्ण करती है। हे मतिमतांवर! जो लोग सदा गंगाकी ओर गमन करते हैं, इन्द्रके सहित देवताओं और मुनियोंके द्वारा निश्चय ही वे संविभक्त हुआ करते हैं। हे विप्र! जो सब विनयाचार और कल्याणरहित अधम पुरुष भी गंगाके निकट आश्रित हुआ करते हैं, वे शिवस्वरूप हैं। जैसे देवताओंको अमृत, पितरोंको स्वधा और नागोंके लिये सुधा है, मनुष्योंके लिये गंगाजल भी वैसे ही है। जैसे भूखे बालक माताकी उपासना करते हैं; इस लोकमें कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुष भी उस ही भांति गंगाकी आराधना किया करते हैं। जैसे स्वायम्भुव पद सबसे श्रेष्ठ कहा गया है, वैसे ही इस लोकमें स्नातक लोगोंके लिये नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा ही सबसे उत्तम कहके वर्णित हुआ करती है। जैसे उपजीवी लोगोंके लिये गऊ और देवताओंके लिये पृथ्वी है, वैसे ही प्राणियोंके पक्षमें गङ्गा है। जैसे देववृन्द सोम-सूर्य्य संस्थ-सत्रादिके सहारे अमृत उपभोग किया करते हैं, वैसे ही मनुष्य गंगाजलको उपजीव्य करके जीवन बिताते हैं। जान्हवीपुलिनमें उड़ते हुए बालुकासे पूरित शरीरको लोग स्वर्गस्थके समान शोभित समझते हैं। जो लोग गंगाके तीरकी मृत्तिका सिर पर चढ़ाते हैं, वे अन्धकार नाशके निमित्त सूर्य्यकी भांति निर्म्मल रूप लाभ करते हैं। गंगाकी तरंगसे युक्त वायु पुरुषको स्पर्श करते ही उसका पाप हरण किया करती है। विपदमें पड़के जो मनुष्य विनष्ट होते हों, उनको गंगादर्शन-जनित प्रीति विपदको खण्डन करती है। हंस चक्रवाक और अन्य पक्षियोंके शब्दके सहारे गंगाने गन्धर्व्वों और पुलिनके द्वारा शिला समूहको स्पर्द्धा की है। हंस प्रभृति अनेक भांतिके पक्षीव्यूहसे परिपूरित और गोकुल सम्बाधशालिनी गंगाका दर्शन करनेसे स्वर्ग भी भूल जाता है। गंगातीरमें मनुष्योंको जैसी प्रीति उत्पन्न होती है, सर्व्वकाम फल भोगनेवाले स्वर्गवासी पुरुषोंको भी वैसी प्रीति नहीं होती। बचन, मन और कर्म्मज पापग्रस्त मनुष्य इस लोकमें गंगाका दर्शन करनेसे ही पवित्र होते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। जो पुरुष गंगाका दर्शन करता, गंगाजल स्पर्श करता तथा उसमें स्नान करता है, वह पहलेके सात और पीछेके सात पुरुषों तथा इसके अतिरिक्त जो सब पितर हैं, उन्हें भी उत्तीर्ण करता है। विशेष रीतिसे गंगामाहात्म्य सुनना, गंगातीरमें जानेकी अभिलाष, गंगाजल पीने, स्पर्श

करने, देखने तथा उसमें स्नान करनेसे मनुष्य पितृकुल और मातृकुल,—दोनोंकाही उद्धार करता है। देखने, स्पर्श करने, पीने और गंगाका नाम लेनेसे भी वह एक सौ पुरुषोंको पवित्र करता है। जो लोग जन्म, जीवन और शास्त्र पाठ सफल करनेकी इच्छा करें, वे गंगामें जाकर पितरों और देवताओंका तर्पण करें। गंगामें गमन करनेसे पुरुष जो फल पाता है; पुत्र, वित्त और कर्म्मसे वह फल नहीं मिलता। जो समर्थ होके भी पुण्यजल-वाली कल्याणदायिनी गंगाका दर्शन नहीं करता, वह जन्मान्ध मृतक और पंगुके समान है। भूत-भविष्यकी जाननेवाले महर्षियों और इन्द्र आदि देवताओंसे पूजित गंगाकी कौन मनुष्य सेवा न करेगा? वाणप्रस्थ, गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी और विद्यावान् पुरुषोंसे अवलम्बित गंगाका कौन मनुष्य आश्रय न करेगा? प्राण निकलनेके समय जो मनुष्य एकाग्र और शिष्ट सम्मत होकर मन ही मन गंगाका ध्यान करता है, उसे परम गति प्राप्त होती है। इस लोकमें जो मनुष्य शरीर छूटनेतक गंगाकी उपासना करता है, उसे पाप तथा व्याघ्र आदि अथवा राजासे भी भय नहीं होता। आकाशसे पतनशील जिस महापवित्र गंगाको महेश्वरने सिर पर धारण किया था, स्वर्गमें सब कोई उसकी ही सेवा किया करते हैं। जिसके तीनों पवित्र मार्गसे त्रिभुवन अलंकृत होरहा है, जो पुरुष उस गंगाजलको सेवन करता है, वह कृतकृत्य होता है। जैसे देवताओंमें आदित्य, पितरोंमें चन्द्रमा और मनुष्योंमें राजा श्रेष्ठ है, नदियोंके बीच गंगा भी वैसी ही उत्तम है। गंगाके वियोगसे जैसा दुःख होता है, माता, पिता पत्नी और धनके विरहमें वैसा दुःख नहीं होता। गंगाके दर्शनसे जैसी प्रसन्नता होती है, अरण्य-अभिलषित विषय पुत्र और धन प्राप्तिसे वैसी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती। जैसे पूर्णचन्द्रमाके दर्शनसे मनुष्योंके नेत्र प्रसन्न होते हैं, वैसे ही पृथ्वीगामिनी गंगाका दर्शन करनेसे नेत्र प्रसन्न हुआ करते हैं। जो लोग गंगाहीमें भावना करते, उसहीमें चित्त लगाके तथा उसीमें निष्ठावान् होके भक्तिपूर्व्वक गंगाके अनुगत होते हैं, वे लोग उसे प्रिय हुआ करते हैं। भूमिचर आकाशचर और स्वर्गवासी अनेक प्रकारके प्राणियोंको गंगामें सदा स्नान करना चाहिये; यह साधुओंका अवश्य कर्त्तव्य कार्य्य है। सब लोकोंमें गंगाकी कीर्त्ति विख्यात है, क्यों कि उन्होंने सगरके भस्मीभूत पुत्रोंको इस लोकसे स्वर्गमें भेजा था। वायुके बहनेसे उत्तम मनोहर अत्यन्त वेगसे उठती हुई तरंगोंसे युक्त होकर गंगामें निर्दोष रूपसे प्रकाशमान मनुष्य सहस्ररश्मिके सदृश होते हैं। पयस्विनी, घृतशालिनी, अत्यन्त उदार, वेगवती, और दुर्व्विगाह्य गंगामें जाकर जो लोग शरीर परित्याग करते हैं, वे धीर पुरुष देवताओंकी समता लाभ करते हैं। इन्द्रके सहित देवताओं मुनियों और मनुष्योंसे सेवित यशस्विनी, वृहती, विश्वरूपा गंगा अन्धे, जड़, और धनहीन पुरुषोंकी सब कामना पूरी करती है। जो लोग उर्ज्जावती अर्थात् अन्न पश्वादिशालिनी, महापुण्य मधुमती अर्थात् कर्म्म फलवती, त्रिपथगामिनी, त्रिलोकपावनी गंगाका आसरा करते हैं, वे स्वर्गमें गमन किया करते हैं। जो मनुष्य श्री गंगाके तटपर निवास करते अथवा गङ्गाका दर्शन करते हैं, गंगाके दर्शन और उसके जलको स्पर्श करनेसे महत्त्व पाये हुए देवतावृन्द उसे समस्त सुख प्रदान करते तथा उसकी अभिलषित गति प्रदान किया करते हैं। तारनेमें समर्थ विष्णु-जननी, वाक्यरूपसे वृहती, विप्रजुष्टा, कल्याणदायिनी, समृद्धिशालिनी, कहीं ऐश्वर्य्योंसे युक्त अत्यन्त प्रसन्न, प्रकाशात्मिका और सर्व्वभूत—प्रतिष्ठा गंगामें जिन्होंने गमन किया है, वे स्वर्ग

लोक पाते हैं। जिसकी ख्याति अर्थात् पवित्र कीर्त्ति आकाशमण्डल द्युलोक और दिशा विदिशाओंमें सर्व्वत्र निवास करती है, गंगाजलको सेवन करके मनुष्य कृतकृत्य हुआ करते हैं। गंगाका दर्शन करके जो पुरुष दूसरेको "इदं गंगा" इस वचनसे गंगाको दिखा देते हैं, उनके लिये गंगा ही मुक्तिका हेतु हुआ करती हैं। जो कार्त्तिकेय और सुवर्णकी गर्भधारिणी है, भोरके समय जिसमें स्नान करनेसे त्रिवर्ग लाभ होता है; जो घृतस्वरूप जलसे युक्त होकर बहती है, वह पाप सम्पर्कसे रहित जगत्के प्राणियोंके लिये प्रियजलवाली गंगा स्वर्गसे उतरी है। हे महाराज! जो मेरु और हिमालय पर्व्वतकी पुत्री, महादेवकी पत्नी और स्वर्ग अथवा पृथ्वीमण्डलकी भूषण रूपी है, पृथिवीमें कल्याणदायिनी, ऐश्वर्य्यशालिनी वह भागीरथी तीनों लोकोंको पवित्रताका विधान करती है। धर्म्म द्रवमयी रूपसे मधु भरनेवाली घृतधारा अर्थात् तेजप्रवाहयुक्त घृतकी भांति जलमयी महातरङ्गमाला और ब्राह्मणोंसे शोभित गंगा स्वर्गसे महादेवके सिरपर भ्रमित होके हिमालय पर्व्वतसे पृथ्वीपर उतरकर त्रिदिवनिवासी देवताओंकी माता हुई। परमकारणस्वरूपिणी, निर्म्मल, सूक्ष्म रूपवाली, मृत्युशय्यारूपिणी शीघ्रगामिनी जलवहा, यशोदा, विश्वपालन— कर्त्री, सत्ता, सामान्य-स्वरूपिणी और सिद्धगणकी अभिलषित गंगा, स्नान करनेवाले मनुष्योंके लिये स्वर्गमें गमन करनेका पथस्वरूप है। क्षमा गोपन और धारणा विषयमें पृथ्वीके समान, तेजमें अग्नि और सूर्य्य सदृश गंगा ब्राह्मण जातिके विषयमें कृपा करके निषादों तथा ब्राह्मणोंमें अत्यन्त सम्मत हुई हैं। ऋषियोंमें स्तुतिसे युक्त पवित्र जलमयी विष्णुके चरणसे उत्पन्न जन्हुपुत्रीका इस लोकमें प्रत्यक्ष दर्शन तो दूर रहे, शुद्धचित्तसे यदि मनुष्य मनसे भी गंगाका आसरा करें, तो वे ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। जैसे माता सन्तानोंको देखती है, वैसे ही गंगा सब गुणोंसे युक्त लोकोंको सब प्रकारसे नाशमान अवलोकन करती है,—इसीसे ब्रह्मपदकी अभिलाष करनेवाले चित्तजयी पुरुष सदा उसकी उपासना किया करते हैं। सिद्ध-काम आत्मवान मनुष्य पुष्टि करनेवाली अमृत-दूध, सर्व्वज्ञा बलवती विश्वभोज्या शैलजननी शिष्टोंसे अवलम्बित अपरिमित ब्रह्माके मनको हरनेवाली गंगाका आसरा करते हैं। भागीरथी उग्र तपस्यासे ईश्वरके सहित समस्त देवताओंको प्रसन्न करके तब गंगाके सम्मुख जाकर उसे पृथ्वीपर लाये हैं, उनके समीपमें सदाके लिये मनुष्योंको कुछ भय नहीं है। मैंने बुद्धिसे सब प्रकार आलोचना करके तुम्हारे गुणोंका एक ही भाग वर्णन किया है, तुम्हारे गुणोंको वर्णन और परिमाण करनेमें मुझे कुछ भी सामर्थ्य नहीं है। वरन सुमेरुके पत्थरों और समुद्रके जलकी यत्नपूर्व्वक संख्या हो सकती है, परन्तु गंगाजलके गुणोंको वर्णन और परिमाण करनेकी शक्ति नहीं होती। इसलिये मैंने परम श्रद्धाके सहित यह जो जान्हवीके गुणोंका वर्णन किया है, उसे सदा सुनके बचन, मन और कर्म्मके द्वारा अभियुक्त तथा श्रद्धावान होना चाहिये। इन तीनों लोकोंमें यश फैलाकर दुष्प्राप्य महती श्री पाके तुम गंगा-विनिर्म्मित लोकोंमें थोड़े ही समयके बीच विहार करोगे। महानुभावा गंगा स्वधर्म्मयुक्त गुणोंसे तुम्हारी और मेरी बुद्धिको सदा संयुक्त करे, क्योंकि वह भक्तजनवत्सला भक्तिमान् पुरुषोंको सुखयुक्त किया करती है।

भीष्म बोले, द्युतिमान् विद्वान परम बुद्धिमान् सिद्धने शिलवृत्तिको इस ही प्रकार गंगानुगत यथार्थ गुणोंको विस्तारपूर्व्वक वर्णन करके पृथ्वीपर प्रकाशित किया। शिलवृत्तिने उस समय सिद्धका वचन सुनकर विधिपूर्व्वक गंगाको उपासना करके दुर्लभ सिद्धि प्राप्त की। हे

कौन्तेय! तुम उस ही भांति परम भक्तियुक्त होकर नित्य गंगाके निकट गमन करके परम सिद्धि प्राप्त करोगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर भाइयोंके सहित भीष्मके कहे हुए भागीरथीका स्तवसंयुक्त इतिहास सुनके परम प्रसन्न हुए। जो मनुष्य गंगाके स्तवयुक्त इस पवित्र इतिहासको सुनता अथवा पाठ करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है।

२६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे धार्म्मिकप्रवर! आप जैसे प्रज्ञा, शास्त्रज्ञान, चरित्र, सद्वृत्त, बिबिध गुणों और अवस्था क्रमसे संयुक्त हैं; वैसे ही बुद्धि प्रज्ञा और तपस्या बिषयमें भी बिशिष्ट हैं, इसलिये मैं आपसे धर्म्मबिषय पूछता हूं। हे नरनाथ! हे राजसत्तम! तीनों लोकोंमें क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रके बीच आपके समान ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है, जिससे धर्म्मजिज्ञासा किया जाय। इसलिये जिस धर्म्मके सहारे ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है, आप मेरे निकट उसकी ही व्याख्या करिये। अत्यन्त महत् तपस्या, कर्म्म अथवा शास्त्रज्ञानसे यदि ब्राह्मणत्वकी इच्छा की जाय, तो वह किस प्रकार प्राप्त हो? हे पितामह! आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे तात! युधिष्ठिर क्षत्रिय आदि तीनों बर्णोंके द्वारा ब्राह्मणत्व-प्राप्ति अत्यन्त दुष्प्राप्य है, परन्तु वह ब्राह्मणत्व सब प्राणियोंका अवलम्ब है। हे तात! जीव अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए बार बार जन्म लेकर उसके अनन्तर किसी जन्ममें ब्राह्मण होकर जन्मता है। हे युधिष्ठिर! इस विषयमें प्राचीन लोग मतङ्ग और गर्दभीके सम्वादयुक्त पुराना इतिहास कहा करते हैं। किसी द्विजातिके मतंग नाम उत्तम बिख्यात् सब गुणोंसे युक्त और अन्य-बर्णज होके भी जातकर्म्मादि संस्कार निबन्धनसे तुल्य बर्ण एक पुत्र था। हे शत्रुतापन युधिष्ठिर! उस पुत्रने यज्ञमें ऋत्विक कर्म्म करते हुए पिताकी आज्ञासे शीघ्रगामी गर्दभयुक्त रथपर चढ़के अग्नि लानेके निमित्त प्रस्थान किया। हे महाराज! उसने माताके संग रथ खींचनेवाले अशिक्षित गधेकी नाकमें कोड़ा मारा।

पुत्रवत्सला गर्दभी पुत्रकी नाकमें तीव्र घाव देखकर उससे बोली, हे पुत्र! तुम शोक मत करो, तुम्हारे ऊपर चाण्डाल चढ़ा हुआ है, ब्राह्मण दारुण कर्म्म नहीं करते, ब्राह्मण सब प्राणियोंके मित्र हैं, सब भूतोंके शास्ता आचार्य्य क्या कभी प्रहार किया करते हैं? यह पापप्रकृतिवाला बालकपर दया नहीं करता, यह स्वयोनिका समादर करता है, जातिस्वभाव बुद्धिको मार्गान्तरसे आकर्षण किया करता है।

मतंग गधीका ऐसा बचन सुनके शीघ्र ही रथसे उतरकर उससे बोला, हे कल्याणि रासभी! मेरी माता किसके द्वारा दूषित हुई है? तथा तुमने मुझे चाण्डाल किस प्रकार जाना? यह मुझसे शीघ्र कहो। लोकदृष्ट ब्राह्मणत्व जिसके द्वारा बिनष्ट होता है, मैं वही चाण्डाल हूं,—तुम्हें यह बिषय किस प्रकार मालूम हुआ? हे महाबुद्धिमति! तुम यह बिषय बिशेष रूपसे यथार्थ कहो।

गर्द्दभी बोली, तुम प्रमत्ता ब्राह्मणीके गर्भसे चाण्डाल नाईके द्वारा उत्पन्न हुए हो, इसलिये तुम चाण्डाल हो, इस ही कारण तुम्हारा ब्राह्मणत्व बिनष्ट हुआ है।

भीष्म बोले, मतंग गर्द्दभीका बचन सुनके घरमें लौट आया, पिताने उसे लौटा हुआ देखके कहा मैंने यज्ञसिद्धिके निमित्त तुम्हें गुरुतर कार्य्यमें नियुक्त किया है, तब तुम किस कारणसे लौट आये? क्या तुम्हारा कुशल नहीं है?

मतंग बोला, जो पुरुष अन्त्यज योनि अथवा अत्यन्त हीन योनिका होता है, वह किस

प्रकार कुशली होसकता है? हे पिता! यह जिसकी माता है, उसे कुशल कहां? हे पिता! यह अमानुषी गईभी मुझे ब्राह्मणोंमें चाण्डालसे उत्पन्न हुआ कहती है, इसलिये मैं अत्यन्त महत् तपस्या करूंगा। उसने पितासे ऐसा कहकर निश्चय करके प्रस्थान किया।

अनन्तर महारण्यमें जाके अत्यन्त महत् तपस्या करने लगा। कालक्रमसे मतंगने उत्तम रीतिसे आचरित तपोबलसे अनायासही ब्राह्मणत्व लाभके निमित्त घोर तपस्यासे युक्त होकर देवताओंको सन्तापित किया। देवराज इन्द्र उसे इस प्रकार तपयुक्त देखके बोले, हे मतंग! तुम मनुष्य भोग परित्याग करके किस निमित्त तपस्या करते हो? अच्छा, मैं तुम्हें बरदान करताहूं, तुम्हारी जो इच्छा हो, वह मांगो, तुम्हारे अन्तःकरणमें जो अप्राप्य मालूम होता है, वह सब कहो, विलम्ब मत करो।

मतंग बोला, मैंने ब्राह्मणत्वकी कामना करके यह तपस्या आरम्भ की है, वह प्राप्त होनेसेही इस स्थानसे गमन करूंगा, मैं यही बर मांगता हूं।

भीष्म बोले, इन्द्रने उसका वचन सुनके कहा, रे नीचबुद्धिवाले! तू अकृतात्मा पुरुषोंसे अप्राप्य ब्राह्मणत्वकी इच्छा करता है, इसलिये विनष्ट होगा, इस कारण तू विरत होजा, देरी मत कर। तपस्या सब प्राणियोंके श्रेष्ठत्वको वशीभूत नहीं कर सकती। तू उस श्रेष्ठत्वकी इच्छा करनेसे शीघ्र ही नष्ट होगा। देवता असुर और मनुष्योंके बीच जो परम पवित्र कहके वर्णित हुआ है, चाण्डालयोनिमें उत्पन्न हुआ पुरुष उसे किसी प्रकार नहीं पा सकता।

२७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे अच्युत! प्रशंसितात्मा यतव्रती मतंग इन्द्रका ऐसा वचन सुनके एक सौ वर्षतक एक पांवसे खड़ा होकर निवास करने लगा। अनन्तर महायशस्वी पाकशासन इन्द्र फिर उससे बोले, हे तात! ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है, तुम कोटिशः प्रार्थना करनेपर भी उसे नहीं पाओगे। हे मतंग! तुम परम स्थानकी प्रार्थना करके विनष्ट होगे। हे पुत्र! तुम साहस मत करो, यह तुम्हारे धर्म्मका पथ नहीं है। रे नीचबुद्धिवाले! तू इस लोकमें ब्राह्मणत्व लाभ करनेमें समर्थ न होगा, अप्राप्य विषयकी प्रार्थना करनेसे थोड़े ही समयमें नष्ट होगा। हे मतङ्ग! तू बार बार मेरे निवारण करने पर भी सब प्रकारसे तपस्याके सहारे परम पद पानेकी इच्छा करता है, परन्तु उस विषयमें कृतकार्य्य न होसकेगा। तिर्य्यक्योनिके समस्त जीव यदि मनुष्यत्व प्राप्त करें, तो वे पहले पुक्कश अथवा चाण्डाल होके जन्म ग्रहण करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। हे मतङ्ग! इस लोकमें पुक्कश अथवा पापयोनिमें जो कोई दीख जन्मता है, वह उस ही योनिमें बहुत समय तक बार बार भ्रमण किया करता है। फिर सहस्र वर्षके अनन्तर शूद्रत्व लाभ करता है। शूद्रयोनिमें भी वह अनेक बार परिभ्रमण करता है, फिर तीस गुण समय बीतने पर वैश्यत्व प्राप्त होता है, वैश्ययोनिमें भी बहुत समयतक उसे बार बार जन्म लेना पड़ता है। अनन्तर साठगुण समय बीतनेपर क्षत्रिय होकर जन्म लेता है, क्षत्रिय योनिमें भी बहुत समयतक उसे परिभ्रमण करना होता है। अनन्तर साठगुण समय बीतने पर ब्रह्मबन्धुता प्राप्त होती है, ब्रह्मबन्धु होनेपर भी उस ही योनिमें बहुत समयतक घूमना पड़ता है। अनन्तर उससे दो सौगुण समय बीतनेपर शस्त्रजीवित्व लाभ होता है। शस्त्रजीवी होके भी उस ही योनिमें बहुत समयतक परिभ्रमण करता है। अनन्तर उससे तीन-सौगुण समय बीतनेपर गायत्री मात्र जप करनेवालोंके वंशमें

जन्म लेता है, वैसा जन्म पाने पर भी उसी बहुत समयतक उस ही कुलमें बार बार उत्पन्न होना पड़ता है। अनन्तर चार सौ वर्ष बीतने पर श्रोत्रियकुलमें जन्म होता है, श्रोत्रिय अर्थात् वेदाध्ययनशील होकर बहुत समयतक उस ही योनिमें परिभ्रमण करता है।

हे तात! इसलिये इस ही प्रकार काम, द्वेष, शोक, हर्ष, अभिमान और अतिवाद उस हिजाधममें प्रविष्ट होते हैं; यदि वह उन शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ हो, तो सद्गति लाभ कर सकता है और यदि काम द्वेष प्रभृति शत्रुगण उसे जय करें, तो वे ताड़वृक्षकी चोटीसे गिरनेकी भांति उसे अत्यन्त नीच योनिमें डाल देते हैं, हे मतंग! मैंने तुमसे जो कहा है, तुम उसकी भली भांति आलोचना करके दूसरे अभीष्ट विषयकी प्रार्थना करो, क्यों कि ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ हैं।

२८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, संशितात्मा यतव्रती मतंग देवराजका ऐसा वचन सुनके सहस्र वर्षतक एक पदसे निवास करके ध्यान करनेमें प्रवृत्त हुआ इन्द्रने फिर उसे देखनेके लिये आगमन करके पुनर्व्वार उससे पूर्व्वोक्त वचन कहा।

मतंग बोला, सहस्र वर्षतक मैंने समाहित तथा ब्रह्मचारी होकर एक पदसे निवास किया; परन्तु किस लिये ब्राह्मणत्व न पाया?

इन्द्र बोले, जिस पुरुषने चाण्डालयोनिमें जन्म लिया है, उसे ब्राह्मणत्व किसी प्रकार भी नहीं प्राप्त हो सकता, तुम दूसरा वर मांगो, जिससे तुम्हारा यह परिश्रम निष्फल न हो।

जब देवराजने ऐसा कहा, तब मतंग शोक युक्त होकर गया तीर्थमें जाके एक सौ वर्ष पर्य्यन्त हाथके अंगूठेके सहारे निवास करने लगा। मैंने सुना है, कि वह धर्म्मात्मा दुर्व्वह योग अवलम्बन करके धमनिसन्तत और अस्थि-चर्म्म-सार होकर गिर पड़ा। सर्व्वभूतोंके हितमें रत रहनेवाले भगवान् इन्द्र उसे गिरा हुआ देखके दौड़े और वहांपर जाके उसे धारण किया।

इन्द्र बोले, हे मतंग। इस समय तुम्हारे पक्षमें ब्राह्मणत्व अत्यन्त विरुद्धभावसे युक्त दीख पड़ता है, दुर्लभ ब्राह्मणत्व कामादि परिपन्थी गुणोंसे संवृत होरहा है। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे सुखभोग प्राप्त होता है, पूजा न करनेसे दुःख हुआ करता है। ब्राह्मण ही सर्व्वभूतोंको योगक्षेम समर्पण करनेवाले हैं। पितर और देववृन्द ब्राह्मणोंसेही परितृप्त होते हैं। हे मतंग! ब्राह्मण सब भूतोंमे श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ करते हैं, क्यों कि जैसी इच्छा की जाती है, ब्राह्मण ही वह वाञ्छित सिद्धि करते हैं। हे तात! जीव अनेक योनियोंमें प्रवेश करते हुए बार बार जन्म ग्रहण करके इस लोकमें किसी पर्य्यायमें ब्राह्मणत्व लाभ करता है; इसलिये तुम अकृतात्मा पुरुषोंसे दुष्प्राप्य ब्राह्मणत्व लाभकी वासना परित्याग करके अब दूसरा वर मांगो, क्यों कि यह वर तुम्हारे पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ है।

मतंग बोला, मैं दुःखसे आर्त्त हुआ हूं, मुझे क्यों दुःखित करते हो? मरे हुएको मारते हो! जो पुरुष ब्राह्मणत्व लाभ करके भी मेरे समान तपस्वी पुरुषके विषयमें करुणा नहीं करता, उसने ब्राह्मणत्व पाके भी नहीं पाया है, इसलिये मैं तुम्हारे निमित्त शोक नहीं करता। हे इन्द्र! यदि क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंके लिये ब्राह्मणत्व दुष्प्राप्य हुआ है, तथापि मनुष्य उस अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाके भी सदा उसका अनुष्ठान नहीं करते अर्थात् ब्राह्मणके योग्य शम, दम, तप, पवित्रता, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य, यह सब धर्म्माचरण नहीं करते। दुर्लभ धन

सहस्र ब्राह्मणत्व लाभ करके जो पुरुष उसका अनुष्ठान करना नहीं जानता, वह पापियोंसे भी पापी तथा उससे भी अधम है। पहले तो ब्राह्मणत्व ही अत्यन्त दुष्प्राप्य है, प्राप्त होनेपर भी उसका अनुष्ठान करना अत्यन्त कठिन है, इस दुःखापह विषयको पाके भी मनुष्य इसका अनुष्ठान नहीं करते। हे इन्द्र! मैं एकाराम, निर्द्वन्द्व निष्परिग्रह अहिंसा और इन्द्रियदमन अवलम्बन करके भी किस निमित्त ब्राह्मणत्व पानेके योग्य नहीं हूं? हे पुरन्दर! मैं धर्म्मज्ञ होके भी मातृदोषके कारण ऐसी अवस्थामें पड़ा हूं, यह कैसा पूर्व्व कर्म्म है? हे प्रभु! पुरुषार्थसे दैवको अतिक्रम नहीं किया जासकता, जिसके निमित्त इस प्रकार यत्नवान होके भी कोई विप्रत्व लाभ नहीं कर सकता है। हे धर्म्मज्ञ! यदि ऐसा ही होवे और मैं तुम्हारा कृपापात्र होऊं, यदि मेरा कुछ सुकृत हो, तो आप मुझे वरदान कर सकते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर बलहत्त-हन्ता इन्द्रने उस समय उससे कहा "वरमांगो" तब मतङ्ग इन्द्रकी आज्ञा पाके यह वचन कहने लगा। मैं कामरूपी पक्षी होकर स्वेच्छापूर्व्वक बिहार करूं और मुझे ब्राह्मण क्षत्रियोंके अविरुद्ध पूजा प्राप्त होवे। हे पुरन्दर! हे देव! जिस प्रकार मेरी अक्षय कीर्त्ति हो, आप वैसा ही करिये, मैं प्रणत होके आपको प्रसन्न करता हूं।

इन्द्र बोले, हे तात! तुम छन्दोदेव नामसे विख्यात होकर स्त्रियोंके पूजनीय होगे, और तुम्हारी अतुल कीर्त्ति तीनों लोकोंके बीच व्याप्त होगी। इन्द्र उसे ऐसा वर दान करके अन्तर्द्धान हुए। मतङ्गने भी प्राणत्यागके परम पद पाया। हे भारत! ब्राह्मणत्व अत्यन्त श्रेष्ठपद है, महेन्द्रके वचनानुसार दूसरे वर्णोंके लिये दुष्प्राप्य जानना चाहिये।

२९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुकुलधुरन्धर वक्तृवर! आपने ब्राह्मणत्वको अत्यन्त दुष्प्राप्य कहा और यह महत् आख्यान मैंने आपके समीप सुना। हे सत्तम! आप ब्राह्मणत्वको दुष्प्राप्य कहते हैं, परन्तु ऐसा सुननेमें आता है, कि पहले, समयमें विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व लाभ किया था और मैंने सुना है, कि वीतहव्य राजाने भी ब्राह्मणत्व लाभ किया है। हे प्रभु गंगानन्दन! इसलिये मैं इस विषयको सुननेकी अभिलाष करता हूं, वे राजसत्तम, वर अथवा तपस्यासे भी परे किस कर्म्मसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए? उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, महायशस्वी राजा राजर्षि वीतहव्यने जिस प्रकार लोक सत्कृत दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाया था, उसे सुनो हे तात! धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालक महात्मा मनुके शर्य्याति नामक एक पुत्र था। हे महाराज! उस ही वत्सराज शर्य्यातिके वंशमें विजयी हैहय और तालजङ्घ नामक दो राजा हुए थे। हे भरतवंशावतंस राजेन्द्र! हैहयकी दश पत्नियोंसे एक सौ पुत्र हुए, वे सभी शूर, युद्धमें अपराजित, तुल्यरूप, तुल्यप्रभाव, बलवान, युद्धशाली धनुर्व्वेद और वेदमें सर्व्वत्र परिश्रम किये हुए थे। हे महाराज! काशी-राज्यमें भी दिवोदासके पितामह विजयीप्रवर हर्य्यश्व नामक एक राजा था। हे पुरुषश्रेष्ठ! वह वीतहव्यके वंशधरोंके हाथसे गंगा यमुनाके बीच युद्धमें मारा गया, भयसे रहित महारथ हैहयगणने उस राजाको मारके वत्सराजकी रमणीय पुरीमें प्रवेश किया। हर्य्यश्वके उत्तराधिकारी साक्षात् धर्म्मसदृश देवसङ्काश काशिराज सुदेव उस राज्यपर अभिषिक्त हुआ। वह धर्म्मात्मा काशिराजका पुत्र पृथ्वी--पालन करने लगा। वीतहव्यके वंशवालोंने आके उसे भी पराजित किया, वे लोग उसे युद्धमें पराजित करके निज स्थानपर लौट गये। अनन्तर काशिराज सुदे-

वका पुत्र दिवोदास उस राज्यपर अभिषिक्त हुआ। महातेजस्वी दिवोदासने हैहयवंशियोंके बलको जानके इन्द्रकी आज्ञानुसार वाराणसी पुरी बसाई। वह पुरी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णों तथा अनेक प्रकारकी समृद्ध विपणि और आपणयुक्त गंगाके उत्तरतटके निकट तथा गोमतीके दक्षिण तटपर राजसत्तम दिवोदासके द्वारा इन्द्रकी अमरावतीकी भांति निर्म्मित हुई। हे भारत! पृथ्वीपति राजश्रेष्ठ दिवोदास जब वाराणसीमें वास करने लगे, तब हैहयगणने फिर आके उन्हें आक्रमण किया, महाबलवान महातेजस्वी दिवोदास पुरीसे निकलके हैहयगणके सङ्ग देवासुर सदृश घोर संग्राम करने लगे। हे महाराज! उन्होंने उस युद्धमें दश हजार दिनतक संग्राम करके अनेक वाहनोंके मारे जाने पर स्वयं दीनता अवलम्बन किया। हे महाराज! वह पृथ्वीपति दिवोदास सेना और कोष नष्ट होनेपर पुरी परित्याग करके भाग गये। हे शत्रुदमन! उस समय वह राजा बुद्धि शक्तिसेयुक्त भरद्वाजके आश्रममें जाकर हाथ जोड़के उनके शरणागत हुआ। बृहस्पतिके ज्येष्ठपुत्र शीलसम्पन्न पुरोधा भरद्वाज राजा दिवोदाससे बोले, हे महाराज! तुम्हारे आगमनका क्या कारण है, वह सब मेरे निकट वर्णन करो। जो तुम्हें प्रिय होगा, मैं वही करूंगा, मुझे इस विषयमें विचार नहीं है।

राजा बोला, हे भगवन्! वीतहव्यवंशीय शूरगणके द्वारा मेरा वंश नष्ट हुआ है, अकेला मैं अत्यन्त निराश होकर आपकी शरणमें आया हूं। हे भगवन्! आप शिष्यस्नेहवशसे मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, उन पापकर्म्मियोंने मेरे वंशको एक बारही शेष किया है। प्रतापवान महाभाग भरद्वाज ऋषि उससे बोले, "भय नहीं है! भय नहीं है!" हे सुदेवपुत्र! तुम्हारा भय दूर होवे। हे नरनाथ! मैं तुम्हारे पुत्रके निमित्त यज्ञ करूंगा, उसके द्वारा तुम सहस्र वीतहव्यको पराजित करोगे। अनन्तर भरद्वाज ऋषिने उसके लिये पुत्र कामनासे यज्ञ किया। उस यज्ञके प्रभावसे दिवोदासके प्रतर्द्दन नाम प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र उत्पन्न होते ही तेरह वर्षीय पुरुषकी भांति वर्द्धित हुआ। हे भारत! उसने जब सब वेद और धनुर्व्वेद पढ़ लिया, तब बुद्धिमान भरद्वाज योगबलसे उसके शरीरमें प्रविष्ट हुए, उन्होंने सार्व्वलौकिक तेजसंग्रह करके प्रतर्द्दनके शरीरमें प्रवेश किया। अनन्तर प्रतर्द्दन कवच और धनुष धारण करके देवर्षियोंसे स्तूयमान तथा बन्दीगणसे वन्दित होकर उदित सूर्य्यकी भांति शोभित हुए। वह बद्धपरिकर होकर रथपर चढ़के अग्निकी भांति प्रकाशित होने लगे; तलवार ढाल और शरासन धारण करके धनुष कंपाते हुए गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। सुदेवपुत्र राजा दिवोदास पुत्रको देखके परम हर्षित हुए और मनहीमन वीतहव्यके पुत्रोंको जले हुए जाना। अनन्तर राजा प्रतर्द्दनको युवराजपदपर स्थापित करके अपनेको कृतकृत्य समझके अभिनन्दन किया। फिर महीपति वीतहव्यका वध करनेके लिये निज पुत्र शत्रुदमन प्रतर्द्दनको भेजा। वह पराक्रमी परपुर विजयी प्रतर्द्दन रथके सहित शीघ्र ही गङ्गाके पार होके वीतहव्यकी पुरीमें जा पहुंचे। वीतहव्यके पुत्रोंने समुद्धत रथका शब्द सुनके पराये रथको पीड़ित करनेमें समर्थ नगराकार रथोंके द्वारा बाहर हुए। वे विचित्र योधी कवचधारी नरपुङ्गवगण नगरसे निकलकर बाणोंकी वर्षा करते हुए प्रतर्द्दनकी ओर गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। हे युधिष्ठिर! जैसे बादल हिमवान पर्व्वतपर जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही वे लोग प्रतर्द्दनके ऊपर अनेक प्रकारके शस्त्र चलाने लगे। महातेजस्वी राजा प्रतर्द्दनने निज अस्त्रोंसे उनके सब शस्त्रोंको निवारण करके बज्रानल

सहस्र बाणोंसे उनके शरीरमें प्रहार किया। हे महाराज! वे लोग सौ हजार भल्लास्त्रके द्वारा सिररहित होके तथा रुधिरसे भीगके कटे हुए फूले पलाशवृक्षकी भांति पृथ्वीपर गिर गये, उन समस्त पुत्रोंके मारे जानेपर राजा बीतहव्य नगर छोड़के भागकर भृगुके आश्रममें जा छिपे। हे महाराज! भृगु मुनिने भी उस राजाको अभय दान किया। अनन्तर उनके पश्चात् ही प्रतर्द्दन भी उस आश्रममें आके उपस्थित हुए। प्रतर्द्दन उस आश्रमपर पहुंचके बोले, महानुभाव भृगुके शिष्योंमेंसे कौन कौन इस आश्रममें है? मैं उस मुनिके दर्शनकी अभिलाष करता हूं। उनके समीप मेरी प्रार्थना निवेदन करो। भृगु मुनिने प्रतर्द्दनका आना सुनके उस ही समय आश्रमसे निकलकर उस राजसत्तमका विधिपूर्व्वक सत्कार किया। हे राजेन्द्र! भृगुने उनसे कहा, महाराज! किस प्रयोजनके निमित्त तुम इस स्थानमें आये हो? तब वह अपने आनेका कारण कहने लगे।

राजा प्रतर्द्दन बोले, हे ब्रह्मन्! राजा बीतहव्य इस स्थानमें निवास कर रहे हैं, इसलिये आप उन्हें परित्याग करिये। हे ब्रह्मन! उनके पुत्रोंके द्वारा मेरा समस्त वंश और काशीपुरीका राज्य तथा रत्नसञ्चय नष्ट हुआ है। इस वीर्य्यदीप्त राजाके एक सौ पुत्र मेरे हाथसे मारे गये हैं, अब इसका बध करके मैं पिताके समीप अऋण होऊंगा।

धार्म्मिकश्रेष्ठ भृगु मुनि कृपायुक्त होकर उनसे बोले, यहांपर कोई क्षत्रिय नहीं है, क्योंकि ये सभी ब्राह्मण हैं,। प्रतर्द्दन धीरे धीरे भृगु मुनिका दोनों चरण छूके प्रसन्न होकर बोले, हे भगवन्! ऐसा होनेपर भी मैं निःसन्देह कृतकृत्य हुआ। क्योंकि यह राजा मेरे पराक्रमके द्वारा स्वजातिसे च्युत हुआ। हे ब्रह्मन्! अब मुझे आज्ञा करिये और मेरे कल्याणकी चिन्ता कीजिये। हे भृगुवंश धुरन्धर! इस राजाको मैंने जातित्याग कराई है। हे महाराज! अनन्तर राजा प्रतर्द्दन भृगुकी आज्ञा पाके इस प्रकार निज स्थानपर चले गये, जैसे सांप विष उगलके चल देता है। हे राजन! बीतहव्यने भी भृगुके वचन मात्रसे ही ब्रह्मर्षित्व और ब्रह्मवादित्व लाभ किया। सुघराईमें दूसरे इन्द्रके समान गृत्समद नाम उनका पुत्र था, जो कि इन्द्रके भ्रमसे दैत्योंके द्वारा निगृहीत हुआ था, हे ब्रह्मन्! ऋग्वेदमें जिस महात्माकी श्रुति वर्त्तमान है, वह गृत्समद जिसके समीप रहते थे, वहां हो ब्राह्मणोंसे पूजित होते थे। ब्रह्मचारी श्रीमान् गृत्समद ब्रह्मर्षि हुए थे। गृत्समदका पुत्र सुतेजा भी ब्राह्मण हुआ था। सुतेजाका पुत्र वर्च्चा, वर्च्चाका पुत्र बिहव्य, बिहव्यका पुत्र बितत्य, बितत्यका पुत्र सत्य, सत्यका पुत्र सन्त, सन्तका पुत्र श्रवा ऋषि, श्रवाका पुत्र तम, तमका पुत्र द्विजसत्तम प्रकाश, प्रकाशका पुत्र जापकश्रेष्ठ वागिन्द्र, वागिन्द्रका पुत्र प्रमति जो कि वेद वेदाङ्ग पारग थे। घृताची अप्सराके गर्भमें प्रमतिसे रुरु नामक बिप्रर्षि पुत्र उत्पन्न हुआ था। महरासे रुरुसे सुनक नाम बिप्रर्षि पुत्र हुआ, जिसका पुत्र शौनक नामसे बिख्यात् है। हे क्षत्रियश्रेष्ठ! नरनाथ बीतहव्यने इस ही प्रकार भृगुकी कृपासे बिप्रत्व लाभ किया था। हे महाराज! यह तुम्हारे समीप मैंने गृत्समदके वंशका विस्तारपूर्व्वक वर्णन किया। अब और क्या पूछनेकी इच्छा है?

३० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! इन तीनों लोकोंके बीच कौन कौनसे मनुष्य पूज्य हैं? आप मेरे समीप इसे ही विस्तारपूर्व्वक वर्णन करिये। आपके वचन सुनके मुझे किसी प्रकार तृप्ति नहीं होता है।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग नारद ऋषि और श्रीकृष्णके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा

करते हैं। ब्राह्मणोंकी पूजाके हेतु नारदको हाथ जोड़े हुए देखकर श्रीकृष्णने पूछा। हे भगवन्! आप किसे नमस्कार करते हैं? हे भगवन्! आप ब्राह्मणोंका बहुमान करते हुए किन लोगोंको नमस्कार करते हैं? हे धर्म्मवित्तम! यदि यह विषय मेरे सुननेके योग्य हो, तो मैं सुननेकी इच्छा करता हूं आप वर्णन करिये।

नारद मुनि बोले, हे अरिदमन गोविन्द! मैं जिनको पूजा करता हूं, वह कहता हूं, सुनो। इस लोकमें तुम्हारे अतिरिक्त और कौन पुरुष यह विषय सुननेके योग्य होगा? जो लोग वरुण, वायु, आदित्य, पर्य्यन्य, अग्नि, स्थाणु, स्कन्द, लक्ष्मी, विष्णु, ब्रह्मा, वाचस्पति, चन्द्रमा, जल, पृथिवी और सरस्वतीको सदा नमस्कार करते हैं,—हे विभु! मैं उन्हीं लोगोंको नमस्कार किया करता हूं। हे प्रभु! जो अनात्मश्लाघापरायण मनुष्य अभुक्त रहके देवकार्य्य करते तथा जो सन्तुष्ट और क्षमायुक्त हैं, मैं उन्हींको नमस्कार किया करता हूं, हे यादव! जो लोग क्षमाशील, दान्त और जितेन्द्रिय होकर पूर्णरीति यज्ञ करते, सत्य और धर्म्मकी पूजा करते तथा ब्राह्मणोंको भूमि और गऊ दान करते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। जो लोग वनके बीच फलमूल भोजन करके तपस्या करते और सञ्चय न करके कर्म्म किया करते हैं, हे यादव! मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं, जो सेवकोंको भरण करनेमें समर्थ हैं सदा अतिथिव्रत और देवताओंसे शेष बचा हुआ अन्न आदि भोजन करते हैं, मैं उन्हींको नमस्कार किया करता हूं। जो सब बाक्‌पटु ब्रह्मचारी वेदज्ञान लाभ करके अनभिभवनीय होते और जो लोग सदा याजन और अध्यापन कार्य्यमें नियुक्त रहते हैं, मैं उन्हींकी पूजा करता हूं। जो सब जीवोंके विषयमें सदा प्रसन्नचित्त रहते और मध्यान्ह पर्य्यन्त स्वाध्याय पाठ तथा मन्त्र जप करनेमें नियुक्त रहते हैं, मैं उन लोगोंकी पूजा करता हूं। हे यादव! जो सब स्थिरव्रती मनुष्य गुरुके प्रसादसे स्वाध्यायपाठमें यत्नवान रहते, गुरुकी सेवा करते और किसीकी निन्दा नहीं करते, मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं। हे यादव! जो सब उत्तम व्रतवाले मुनि और सत्यप्रतिज्ञ ब्राह्मणगण हव्यकव्य वहन किया करते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। हे यादव! जो लोग भैक्ष्यचर्य्यामें तत्पर रहते, कृश गुरुकुलाश्रय, सुखरहित और निर्द्धन हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। जो सब मनुष्य ममतारहित, निष्प्रतिद्वन्द, दिगम्बर, निष्प्रयोजन और वेदलाभ करके अनभिभवनीय वाग्मी, ब्रह्मवादी, अहिंसारत, सत्यव्रत, दान्त और शमपरायण हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं। जो सब गृहस्थ पुरुष देवता तथा अतिथि पूजामें नियुक्त रहते और सदा कपोतवृत्ति अर्थात् कण ग्रहणपूर्व्वक सञ्चय न करके जीवन व्यतीत करते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार किया करता हूं। जो लोग धर्म्म अर्थ और काम, इन त्रिवर्ग कार्य्योंमें वर्त्तमान रहते हैं, कदापि परित्यक्त नहीं होते तथा जो शिष्टाचारमें प्रवृत्त रहते हैं, मैं उन्हें ही सदा नमस्कार किया करता हूं। हे केशव! जो ब्राह्मण शास्त्रज्ञानसे युक्त होकर धर्म्म, अर्थ और कामका अनुष्ठान करते हैं, जो अलोलुप और पुण्यशील हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं, जो लोग जल तथा वायु पीके निवास करते और जो सुधा अर्थात् वैश्वदेवसे अवशिष्ट अन्न भक्षण किया करते हैं, सदा विविध व्रतोंसे युक्त रहते हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। जो लोग अकृतदार और जो स्त्रीके सहित अग्निहोत्र वा वेदके आश्रय तथा सर्व्वभूतात्म योनि हैं, मैं उन्हें ही नमस्कार करता हूं। हे कृष्ण! जो लोकज्येष्ठ, कुलज्येष्ठ, तमोघ्न और लोकसत्तम हैं, मैं उन्हीं लोक प्रकाशक ऋषि-

योंको नमस्कार किया करता हूं। हे धाम्मीय! इसलिये तुम भी सदा ब्राह्मणोंको पूजा करो। हे अनघ! वे पूजनीय पुरुष पूजित होनेसे सुख सम्पत्ति प्रदान किया करते हैं। इस लोक और परलोकमें वे लोग सुखप्रद होकर सदा बिचरते रहते हैं, ये मान्ययुक्त होनेसे तुम्हारा उत्तम बिधान करेंगे। जो लोग सदा सब लोगोंका आतिथ्य किया करते हैं, गऊ-ब्राह्मण और सत्यवचन कहनेमें रत रहते हैं, वे सब क्लेशोंसे पार होसकते हैं। जिस तपस्वी तथा कुमार ब्रह्मचारोने सदा तपस्यामें रत रहके आत्माको जाना है, वह क्लेशोंसे पार हो सकता है। जो लोग सदा शमपरायण, अनसूयक और नित्य स्वाध्यायशील हैं, वे क्लेशोंसे उत्तीर्ण होसकते हैं। जो लोग देवता, अतिथि, पितर और सेवकोंकी अर्चनामें अनुरक्त तथा शिष्टान्नभोजी हैं, वेभी क्लेशोंसे छूट जाते हैं। जो अग्नि लाकर प्रयत होके उसे धारण करते और सोम आहुति प्राप्त करते हैं, वे क्लेशोंसे उत्तीर्ण होसकते हैं। हे वृष्णिशार्दूल! जो लोग तुम्हारी भांति माता, पिता और गुरुके निकट सदा पूर्णरूपसे निवास करते हैं,—इतनी कथा कहके ही नारद मुनि चुप होगये। हे कौन्तेय! इसलिये तुम भी पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों और अतिथियोंको सदा पूरी रीतिसे पूजा करते हो, इससे अभिलषित गति पाओगे।

३१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वशास्त्रविशारद महाप्राज्ञ भरतसत्तम पितामह! मैं आपके समीप धर्म्म सुननेकी इच्छा करता हूं। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग स्वेदज, उद्भिज, अण्डज और जरायुज आदिके बीचसे किसीको शरणागत होनेपर उसकी रक्षा करते हैं, उस शरणागतको रक्षा करनेका यथार्थ फल क्या है?

भीष्म बोले, हे महाप्राज्ञ महायशस्वी धर्म्मनन्दन! शरणागतको रक्षाके विषयमें यह महाफलजनक प्राचीन इतिहास सुनो। कोई प्रियदर्शन कपोत बाजपक्षीके झपटनेसे आकाशसे गिरके महाभाग वृषदर्भ राजाके शरणमें गया। उस विशुद्धात्मा राजाने उसे भयवशसे निज गोदीमें छिपा हुआ देखके धीरज देके कहा। हे अण्डज! तुम्हें भय नहीं है, तुम धीरज धरो किस निमित्त तुम्हें महत् भय हुआ है; कहांपर तुमने कैसा कार्य्य किया है, जिससे संज्ञारहित और भ्रान्तचित्त होकर इस स्थानमें आये हो? हे सुदर्शन! हे नवनीलोत्पलनिर्म्मित भूषण सदृश उत्तम रूपवाले! हे दाड़िम और अशोक पुष्पसदृश नेत्रवाले! तुम भय मत करो, तुम्हें यहांपर कुछ भय नहीं है। जब तुम रक्षाध्यक्ष पुरस्कृत मेरे समीप उपस्थित हुए हो, तब कोई पुरुष तुम्हें मनसे भी ग्रहण करनेका उत्साह न कर सकेगा। हे कपोत! मैं आज ही तुम्हारे लिये काशिराज्य तथा जीवन परित्याग करूंगा, तुम विश्वासी होके रहो, तुम्हें कुछ भय नहीं है।

बाज बोला, हे राजन्! विधाताके द्वारा यह नष्ट-जीवितप्राय पक्षी मेरे भक्ष्यरूपसे विहित तथा प्रयत्नपूर्व्वक प्राप्त हुआ है, इसलिये आप इसका परित्राण न कर सकेंगे। इसका रक्त, मांस, मज्जा, मेद मेरा हितकर है, यह मुझे परितोषकर है, इसलिये आप इसके अगाड़ी न आवें। हे राजन्! अत्यन्त उग्र तृष्णा मुझे पीड़ित और क्षुधा मानो निःशेष करके भस्म किया चाहती है। इसलिये आप इसे परित्याग करिये, मैं क्षुधाको मन्दता नहीं रोक सकता हूं। मेरे पंख और नखसे यह पक्षी घायल हुआ है, मैंने इसका अनुसरण किया है। इसका थोड़ासा श्वास वा निश्वास चल रहा है; हे राजन्! इसलिये आप इसकी रक्षा न कर सकेंगे। हे महाराज! आप निज

राज्यमें मनुष्योंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, परन्तु तथापि आर्त्त खेचरोंके रक्षाकार्य्यमें उत्तम रीतिसे प्रभु नहीं है। आप शत्रु, सेवक, स्वजन, व्यवहारविषय और इन्द्रिय विषयमें विक्रम प्रकाश करिये, आकाशचारियोंके ऊपर पराक्रम न कीजिये। आज्ञा भङ्ग करनेवाले, शत्रुओंके विषयमें आपकी पूरी रीतिसे पराक्रम प्रकाश करके प्रभुता करना उचित है; आप यदि इस समय धर्म्मार्थी हों, तो मेरी ओर भी दृष्टि करनी योग्य है। भीष्म बोले, हे राजर्षि! बाजपक्षीका ऐसा वचन सुनके विस्मित हुए और उसके वचनका आदर करके उत्तर देने लगे।

राजा बोला, गऊ, बैल, बराह, हरिन अथवा भैंसे आज तुम्हारी क्षुधाको शान्त करूं, मैं शरणागतको परित्याग नहीं करता; यही मेरा निश्चित व्रत है। हे बिहङ्ग! देखो, यह कपोत मेरा अंग परित्याग नहीं करता है।

बाज बोला, हे महाराज! मैं वृष, बराह अथवा दूसरे विविध पक्षियोंको भक्षण न करूंगा, मुझे इन सब अन्न आदिसे क्या प्रयोजन है? स्वयं देवताओंने मेरे सनातन भक्ष्यका जो कुछ विधान किया है। उसे ही भक्षण करूंगा। "बाजपक्षी कबूतरोंको भक्षण करते हैं—यह सनातन मर्य्यादा है।" हे पापरहित उशीनर! इस कपोतके विषयमें यदि आप स्नेह करते हो, तो तुलादण्डपर इसहीके परिमाणसे निज मांस मुझे प्रदान करिये।

राजा बोला, मुझपर तुम्हारी बहुत ही कृपा दीख पड़ती है, क्यों कि अब तुम मुझसे ऐसा कहते हो; बहुत अच्छा, मैं इस ही प्रकार करूंगा। उस राजसत्तमने ऐसा वचन कहके अपना मांस काटके तराजूपर तौला। अनन्तर उनके रनिवासकी रत्नभूषित स्त्रियें यह वृत्तान्त सुनके अत्यन्त दुःखित होकर हाहाकार करती हुई बाहर निकलीं। उन स्त्रियों, मन्त्रियों और सेवकोंके रोदनसे बादल गर्ज्जनेकी भांति महान् शब्द होने लगा। निर्म्मल आकाश बादलोंसे परिपूरित होगया। उस राजाके सत्यकार्य्य से पृथ्वी हिलने लगी। राजाने दोनों कोखे, दोनों भुजा और छातीका मांस काटके शीघ्र ही तराजूकी पूरित किया, तौभी वह सारा मांस कपोतके सङ्ग न तुला। जब राजाका शरीर मांस रहित हुआ केवल हड्डी ही रह गई और लोहू भरने लगा। तब वह निज मांस स्थान शरीरको छोड़के कपोतके संग तुल्यभावसे तराजूपर चढ़े, अनन्तर इन्द्रके सहित तीनों लोकके सब प्राणी उस राजाके निकट उपस्थित हुए। आकाशचारी प्राणी भेरी और दुन्दुभी बजाने लगे। राजा वृषदर्भ अमृतसे अभिषिक्त हुए और उनके शरीरपर अत्यन्त सुखकर दिव्य मालाकी बार बार वर्षा होने लगी। जैसे देवता, गन्धर्व्व और अप्सरा पितामहके निकट नृत्यगीत आरम्भ करती हैं, वैसे ही उनके समीप नाच और गीत होने लगा। तब वह राजर्षि निज कर्म्मसे सुवर्ण भूषित मणि काञ्चन और वैदूर्य्य मणिके स्तम्भोंसे युक्त विमानपर चढ़के नित्य स्वर्गमें गये।

हे युधिष्ठिर! तुम भी शरणागत पुरुषोंके विषयमें ऐसा ही व्यवहार करो। भक्त अनुरक्त और आश्रितोंको जो मनुष्य रक्षा करते तथा जो लोग सब जीवोंके विषयमें दयावान् होते हैं, उन्हें परलोकमें सुख मिलता है। जो राजा सुशील होकर इस लोकमें सदाचारका अनुष्ठान करता है, उसे उस अनुष्ठित विपल कर्म्मके सहारे कौन विषय नहीं प्राप्त होता। वह शुद्धचित्तवाला धीर और सत्यपराक्रमी काशिराज राजर्षि निज कर्म्मसे तीनों लोकमें विख्यात हुआ है। हे भरतसत्तम! दूसरा जो पुरुष इस ही प्रकार शरणागत लोगोंकी रक्षा करता है, उसे भी सद्गति प्राप्त होती है। जो पुरुष राजर्षि वृषदर्भका यह चरित्र प्रतिदिन पाठ करता वा सुनता है, इसलोकमें उसका चित्त पवित्र होता है।

३२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! सब प्राणियोंके विषयमें राजका गुरुतरकार्य्य क्या है और कैसा कार्य्य करनेसे राजा इस लोकमें तथा परलोकमें सुख भोग करता है ?

भीष्म बोले, हे भारत ! अत्यन्त सुखकी इच्छा करनेवाले अभिषिक्त हुए राजाके लिये ब्राह्मणोंकी आराधना ही मुख्य कार्य्य है। हे नरेन्द्र ! राजाको जो करना योग्य है, उसे तुम सुनो। राजा पूजनीय ब्राह्मणोंकी प्रतिदिन पूजा करे, पुरवासी और जनपदवासी बहुविद्याविशिष्ट ब्राह्मणोंकी शान्तना, वचन, भोग, दान तथा नमस्कारके सहारे अर्चना करे। राजाका यह अवश्य कर्त्तव्य है, इसका सदा विचार करना चाहिये ; जैसे राजा अपने पुत्रोंका प्रतिपालन करता है, वैसे ही ब्राह्मणोंकी प्रतिपालन करे, उन लोगोंके बीच जो पूजनीय हो, उनको दृढ़रूपसे पूजा करनी योग्य है, वे लोग जिस जिस राज्यमें शान्त रहते हैं, वही राज्य सब भांतिसे स्थिर रहता है। वे लोग पितरोंकी भांति पूजनीय, माननीय और नमस्कारके योग्य हैं। जैसे वर्षासे प्राणियोंकी जीवनयात्रा निभती है, वैसे ही ब्राह्मणोंसे समस्त लोकयात्रा हुआ करती है। सत्यपराक्रमी ब्राह्मण लोग कुपित तथा उग्रता अवलम्बन करके सङ्कल्पसे ही लौकिक शास्त्र सिद्धश्येनादि अभिचार उपायके सहारे सबको जलाते तथा सभीको निःशेष कर सकते हैं, इनका अन्तःकरण जाना नहीं जाता, सब दिशा इनके निमित्त अनावृत्त हैं, वे क्रुद्ध होनेपर दावानलके मध्यमें स्थित अग्निशिखाकी भांति दीख पड़ते हैं। साहसिक पुरुष भी इनसे डरते हैं, इनके गुणकी सीमा नहीं है ; इनके बीच कोई जड़भरत आदिकी भांति तृणसे छिपे हुए कूएंके सदृश और कोई बसिष्ठ आदिकी भांति आकाशवत् विशुद्ध हैं, कोई कोई दुर्व्वासा आदिकी भांति असह्य पीड़ा देनेवाले और कोई गौतम आदिकी भांति कार्पासवत् मृदुता अवलम्बन करनेवाले हैं, इनके बीच बहुतेरे अगस्त्यकी भांति अत्यन्त शठ और बहुतेरे तपस्वी भी हुआ करते हैं, कितने ही कृषिकार्य्य और गोपालन करते हैं कोई कोई भिक्षावृत्ति अवलम्बन किया करते हैं। कोई कोई बाल्मीकि और विश्वामित्र आदिकी भांति चौर्य्यवृत्तिमें रत रहते और कितने ही नारद प्रभृतिकी भांति मिथ्या कलहप्रिय और कितने ही भरत आदि मुनियोंकी भांति नट वर्त्तक हैं। हे भरतश्रेष्ठ ! दूसरे अनेक प्रकारके ब्राह्मण स्वछन्द राजा तथा अन्य लोगोंके समीप समस्त कार्य्य कर सकते हैं, अधिक क्या कहें वे लोग समुद्र सोखनेमें भी समर्थ हैं। शरीर प्रह्लादनके निमित्त अथवा लोकरक्षाके लिये निषिद्ध कर्म्मके सहारे अनेक विषयोंमें अनुरक्त तथा बहुतेरे कर्म्मोपजीवी धर्म्मज्ञ साधु ब्राह्मणोंका सदा नाम लेना उचित है। हे जननाथ ! पहले समयमें महाभाग ब्राह्मण लोग पितर, देवता, मनुष्य, उरग और राक्षसोंके भी पूज्य थे। देवगण, पितृ, गन्धर्व्व, राक्षस, असुर और पिशाचोंसे द्विजातिवृन्द कदापि पराजित नहीं होसकते, ये लोग अदेवको देव और देवको अदेव कर सकते हैं, ये जिसके निमित्त इच्छा करें, वह राजा होजावे, जो इनका इष्ट नहीं है वह पराभूत होता है। हे महाराज ! जो अज्ञानी मनुष्य ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, मैं सत्य ही कहता हूं, कि वे लोग निसन्देह बिनष्ट होते हैं। हे राजन् ! जो लोग निन्दा और प्रशंसा करनेमें निपुण तथा कीर्त्ति-अकीर्त्तिपरायण हैं, वे ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले पुरुषोंके ऊपर सदा कोपित हुआ करते हैं। ब्राह्मण लोग जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह पुरुष बर्द्धित होता है और जिसको ब्राह्मण लोग निकृष्ट समझते हैं, वह क्षणभरमें पतित होता है। शक, यवन, काम्बोज आदि क्षत्रिय जाति ब्राह्मणोंके अनुग्रह निबन्धनसे चाण्डालत्वको प्राप्त

हुई हैं। द्राविड़, कलिङ्ग, पुलिन्द, उशीनर, कोलिसर्प और माहिषक प्रभृति चत्रिय जाति ब्राह्मणोंकी कृपाके अभावसे वृषलत्वको प्राप्त हुई है। हे विजयिवर! उनके निकट पराजय होनी उत्तम है, जय कल्याणकारी नहीं है। इन समस्त प्राणियोंको मारना एक ब्राह्मणके तुल्य नहीं है, महर्षियोंने कहा है, कि ब्रह्महत्या महादोष है। द्विजातियोंकी निन्दा न सुननी चाहिये, उस समय सिर नीचा करके बैठा रहे अथवा मौनावलम्बन करके उठके दूसरे स्थानमें चला जावे। जो ब्राह्मणोंके सङ्ग विरोध करके सहजमें जीनेका उत्साह करता है, इस भूमण्डलपर ऐसा कोई पुरुष नहीं उत्पन्न हुआ और न होगा। हे महाराज! जैसे वायु मुट्ठीमें ग्रहण नहीं की जाती, जैसे चन्द्रमाको हाथसे स्पर्श करना सम्भव नहीं है और जैसे पृथिवीको धारण नहीं किया जा सकता, वैसे ही इस पृथ्वीमण्डलपर ब्राह्मणोंको भी कोई जीतनेमें समर्थ नहीं होता।

३३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, ब्राह्मणोंकी सदा पूरी रीतिसे पूजा करे, येही सुख दुःखके नियन्ता और चन्द्रमा ही इनके राजा हैं। हे महाराज! ये लोग भोग नमस्कार आभूषण तथा दूसरे अभिलषित विषयोंसे सदा पूजनीय और पितृवत् रक्षणीय हैं। जैसे इन्द्रके सहारे भूतोंकी शान्ति होती है, वैसे ही ब्राह्मणोंके द्वारा राज्यमें शान्ति हुआ करती है। राज्यमें पवित्र ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी होकर उत्पन्न हों और चत्रिय महारथ तथा शत्रु तापन होवें। प्रथम नारद मुनिने मुझसे यह कथा कही थी। हे महाराज! सबके ऐश्वर्य्यके निमित्त इहके बीच संशितव्रती धर्म्म जाननेवाले जातियुक्त ब्राह्मणोंका वास करावे, उससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। ब्राह्मणोंको जो हवि दिया जाता है देवता और पितर उसे ही ग्रहण करते हैं, सब प्राणियोंके बीच ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है। सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, जल, आकाश, पृथ्वी और सब दिशा ब्राह्मणोंसे आविष्ट होकर सदा अन्न उपभोग करती है। जिसके घरमें कोई ब्राह्मण भोजन नहीं करता, उसके पितर और देवतावृन्द भी उस पापाचारी ब्राह्मणद्वेषीका अन्न ग्रहण नहीं करते। ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट रहनेसे पितर लोग सदा प्रसन्न रहते हैं और देवता लोग भी उसी भांति प्रसन्न होते हैं, हे महाराज! इस विषयमें विचार करना उचित नहीं है। जिनको दानकी हुई वस्तुओंको देवता और पितरवृन्द ग्रहण करते हैं, वे लोग भी प्रसन्न हुआ करते हैं, वेही परलोकमें जाके विनष्ट नहीं होते, बल्कि परम गति पाते हैं। मनुष्य जिन जिन वस्तुओंसे ब्राह्मणोंको तृप्त करता है, देवता और पितृगण उन्हीं वस्तुओंसे तृप्तिलाभ किया करते हैं। जिससे प्रजासमूहकी उत्पत्ति होती है, ब्राह्मणोंसे ही वे यज्ञादि उत्पन्न हुए हैं। यह जीव जिससे उत्पन्न होता है और परलोकमें जिस स्थानमें जाता है, उसे ही स्वर्ग और नरकका मार्ग जानो। हे भरतश्रेष्ठ! द्विपदोंके बीच ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, जो लोग आगत और अनागत विषयोंको जाननेमें समर्थ हैं तथा जो अपना धर्म्म जानते हैं, वेही ब्राह्मण हैं, जो निज धर्म्मका अनुष्ठान करते हैं, वे पतित नहीं होते, परलोकमें जाकर विनष्ट नहीं होते और न उनकी पराभव होती है। जो सब चित्तविजयी महात्मा लोग ब्राह्मणके मुखसे बाहिर हुए वचनको प्रतिग्रह करते हैं, उनका पराभव नहीं होता। हे भरतश्रेष्ठ! भृगुवंशीय ब्राह्मणोंने काले हरिणकी खाल पहरकर भी तालजङ्घ नामक चत्रियोंको जीता था। अङ्गिराके पुत्र वृहस्पतिने नीपवंशीय चत्रियोंको जय

किया और भरद्वाजने वैतहव्य, ऐल तथा चित्रायुध आदि राजाओंको जीता था, इसलिये पार गये हुए पुरुषको परित्याग करके जिसके सहारे पार जा सके, उसे ही अवलम्बन करे। इस लोकमें जो कुछ कहा सुना वा पढ़ा जाता है, वह सब लकड़ीके बीच छिपी हुई अग्निकी भांति ब्राह्मणोंमें विद्यमान है। हे भरतश्रेष्ठ! इस विषयमें श्रीकृष्ण और पृथ्वीके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया जाता है।

श्रीकृष्ण बोले, हे शुभे! तुम सब प्राणियोंकी जननी हो, इसलिये तुमसे मैं यह सन्देहका विषय पूछता हूं, कि गृहस्थ मनुष्य किस कर्म्मके सहारे पापसे छूटते हैं?

पृथ्वी बोली, ब्राह्मणकी ही सेवा करे, यही उत्तम और पवित्र कर्म्म है, जो लोग ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते हैं। ब्राह्मणकी सेवा करनेसे ऐश्वर्य्य, कीर्ति और आत्मज्ञान प्राप्त होता है। शत्रुतापन महारथ क्षत्रिय वाञ्छनीय हैं। नारद मुनिने मुझसे यह कहा था, कि जातिसम्पन्न संशितव्रती धर्म्मज्ञ ब्राह्मणकी सबको ऐश्वर्य्यके निमित्त इच्छा करनी उचित है। श्रेष्ठ और निकृष्टके बीच जो लोग श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ हैं, वे ब्राह्मण जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह मनुष्य वर्द्धित होता है और जो पुरुष ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, वह शीघ्रही नष्ट हुआ करता है। जैसे महासागरमें फेंकनेसे कच्चे ढेले विनष्ट होते हैं, वैसे ही ब्राह्मणोंके निकट दुश्चरित्र पुरुषोंका पराभव हुआ करता है। देखिये, चन्द्रमा कलङ्कसे और समुद्र खारे पानीसे युक्त है और महेन्द्र सहस्र भगचिन्हसम्पन्न होकर फिर ब्राह्मणोंके प्रभावसे सहस्रनयनवाले हुए हैं। उन लोगोंके प्रभावसे ही देवराज शतक्रतु हुए हैं। हे माधव! द्विजगणका समान प्रभाव अवलोकन करो। हे मधुसूदन! जो पुरुष कीर्त्ति ऐश्वर्य्य और शुभ लोककी कामना करता है, वह पवित्र तथा शुद्धचित्त होकर ब्राह्मणोंके अनुगामवर्त्ती होवे।

भीष्म बोले, हे कुरुनन्दन! मधुसूदनने पृथ्वीका यह सब वचन सुनके साधु साधु कहके उसे अभिनन्दित किया। हे कुरुनन्दन! तुम इस ही उपमाको सुनके सावधान होकर ब्राह्मणोंकी सदा पूजा करो, तो तुम्हारा कल्याण होगा।

३४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महानुभाव ब्राह्मणवृन्द संस्कार आदि न होनेपर भी उन्नत हो सब प्राणियोंके नमस्य और अतिथि होकर भली भांति पके हुए अन्न आदिके प्रथम भोक्ता हैं। हे तात! देवताओंके सुखस्वरूप ब्राह्मण लोग सबके ही मित्र हैं और उनके प्रभावसे ही धर्म्मादि अर्थ सिद्ध होते हैं, वे मङ्गलयुक्त वचनव्यूहसे, पूरित होनेपर कल्याणकी कामना करते हैं। हे तात! ब्राह्मणोंने हम लोगोंके विपक्षव्यूहके द्वारा कठोर वाक्यसे अपमानित होनेपर क्रुद्ध होकर उन्हें अभिशाप दिया है। पुराण जाननेवाले, पण्डित लोग इस विषयमें जिस प्रकार पहले विधाताने द्विजातियोंको उत्पन्न करके नियमित किया था, उस ही प्रथम कही हुई अपूर्व्व गाथाको गाया करते हैं। इस लोकमें ब्राह्मणोंको विधिपूर्व्वक निर्द्दिष्ट कर्म्मके अतिरिक्त और कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है। हे ब्राह्मणवृन्द! तुम लोग रक्षित होकर सबकी रक्षा करो, उससे तुम्हारा उत्तम कल्याण होगा। अपना कर्म्म करनेसे तुम लोगोंको ब्राह्मी श्री प्राप्त होगी, तुम लोग सब भूतोंके कर्त्तव्यके निश्चय करनेवाले और नियन्ता होगे। विद्वान् ब्राह्मणको शूद्रका कर्म्म करना उचित नहीं है। ब्राह्मण यदि शूद्रका कर्म्म करे, तो उसका धर्म्म नष्ट हुआ करता है। तुम लोग श्री, बुद्धि, तेज, प्रतापशालिनी विभूति और निज शास्त्रोक्त वेद

पाठमें विपुल महात्मत्रको प्राप्त होगे। महाऐश्वर्य्य प्रतिष्ठा लाभ करके आवहनीय देवताओंका अञ्जलि देकर माताके निकट शिशु सन्तानोंकी भांति सबके अग्रभाज्य और ब्राह्मी श्रीके पात्र होगे। अनभिद्रोहसे प्राप्त परम श्रद्धायुक्त और दम स्वाध्यायमें रत होकर समस्त काम्य-वस्तु पाओगे। मनुष्य लोक और देवलोकमें जो कुछ है, वह सब ध्यान नियम और तपस्याके सहारे सिद्ध होता है। हे पापरहित! यह मैंने ब्रह्मगीत समस्त वचन कहा है; ब्राह्मणोंके विषयमें अनुग्रहके लिये बुद्धिशक्तिसे युक्त प्रजापतिने यह गाथा कही थी। जैसा राजाका बल है, तपस्वियोंका भी वैसा ही बल समझा जाता है। ब्राह्मण लोग दुरासद प्रचण्ड वेगशाली और क्षिप्रकारी होनेपर भी पूजनीय हैं। इनके बीच कोई कोई सिंहके समान बलशाली हैं, कोई कोई शार्दूलके सदृश पराक्रमी हैं, कोई वराहके समान तेजस्वी कोई मृग सदृश बलसे युक्त हैं, कितने ही जलसदृश बलसे सम्पन्न हैं कोई कोई सर्पस्पर्श सदृश हैं, कोई वाक्यके सहारे नष्ट करते और कोई नेत्रसे ही जलाया करते हैं। कोई कोई विषधर सर्पके समान हैं और कोई कोई मन्द प्रभाववाले भी हैं। हे युधिष्ठिर! इस लोकमें द्विजोंका चरित्र अनेक प्रकारका है। मेकलद्रविड़, लाट, पौण्ड्र, कोम्वशिरा, शौण्डिक, दरद, दर्व्व, चौर, शवर, वर्व्वर, किरात और यवन प्रभृति सब क्षत्रिय जाति ब्राह्मणोंके कोपको सहनेमें असमर्थ होनेसे चाण्डालत्वको प्राप्त हुई हैं। ब्राह्मणोंके सङ्ग द्वेष करनेसे असुरवृन्द पातालमें निवास करते हैं और देवगण ब्राह्मणोंकी कृपासे स्वर्ग निवासी हुए हैं। आकाशको स्पर्श नहीं किया जा सकता, हिमालय पहाड़को हटानेमें किसीकी सामर्थ नहीं है, पुलसे गंगाको धारण नहीं किया जाता और इस भूमण्डलमें ब्राह्मणोंको जय नहीं किया जा सकता; ब्राह्मणोंके सङ्ग विरोध करके इस पृथ्वीको शासन करनेमें किसीकी भी सामर्थ नहीं है। महानुभाव ब्राह्मणगण देवताओंके भी देवता हैं, इसलिये यदि इस सागर मेखला पृथ्वीको भोग करनेकी इच्छा करते हो, तो दान और सेवासे सदा उन लोगोंको पूजा किया करो। हे पापरहित! प्रतिग्रहके द्वारा ब्राह्मणोंका तेज शान्त होता है। हे महाराज! इस लिये जो प्रतिग्रह करनेकी इच्छा न करें, उनकी तुम रक्षा करना।

३५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें प्राचीन लोग इन्द्र और शम्बरके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं, तुम सुनो। देवराजने वेष बदलके तथा जटी रजोगुण होकर निकृष्ट रथपर चढ़के शम्बरसे प्रश्न किया था।

इन्द्र बोले, हे शम्बर! तुम कैसे व्यवहारसे अपनी जातिके बीच श्रेष्ठ रूपसे निवास करते हो? किस लिये तुम्हें सब कोई श्रेष्ठ समझते हैं? इस विषयको यथार्थ रीतिसे वर्णन करो।

शम्बर बोला, मैं ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करता, मेरा मत ब्राह्मणोंके अनुगत है, जो सब ब्राह्मण शास्त्रीय कथा कहते हैं, मैं सुखपूर्व्वक उनका सम्मान किया करता हूं। शास्त्र सुनके मैं अवज्ञा नहीं करता, कभी किसीके समीप अपराधी नहीं होता, बुद्धिमान् द्विजातियोंकी पूजा करता, उनके चरण ग्रहण करता तथा उन लोगोंके समीप प्रश्न किया करता हूं। वे लोग विश्वासी होकर कहते और मुझसे सदा प्रश्न किया करते हैं, उनके असावधान रहनेपर भी मैं अप्रमत्त तथा उनके शयन करनेपर भी मैं सदा जाग्रत रहता हूं। जैसे मधुमक्खियें अपने छत्तेमें मधु इकट्ठा करती हैं, वैसे ही वे नियन्ता ब्राह्मण शास्त्रपथमें सदा नियुक्त रहनेवाले मुझ ब्रह्मनिष्ठ अनसूयक पूर्ण रीतिसे

अमृतसमान विद्यासेचन किया करते हैं। वे लोग सन्तुष्ट होकर जो कुछ कहते हैं, मैं बुद्धिके सहारे उसे ग्रहण करता हूं, सदा अनुलोम भावसे अपनी ब्रह्मनिष्ठा सोचा करता हूं। जैसे चन्द्रमा नक्षत्रमण्डलीका स्वामी है, वैसे ही जिन लोगोंके वाकयन्त्रके अग्रभाग जिह्वामें विद्यारूपी अमृत है, उस ही विद्यारूपी रसका पान करते हुए निजजातिके बीच श्रेष्ठरूपसे निवास करता हूं। ब्राह्मणोंके मुखसे शास्त्र सुनके उसके अनुसार जैसा अनुष्ठान किया जाता है इस लोकमें वही अमृत है और वही उत्तम नेत्रस्वरूप है। पहले समयमें मेरे पिता इस कारणको जानके तथा देवासुर युद्धको देखकर प्रसन्नचित्त और विस्मित हुए थे। उन्होंने महानुभाव ब्राह्मणोंकी महिमा देखकर चन्द्रमासे पूछा था, कि ये लोग किस प्रकार सिद्ध हुए हैं?

चन्द्रमा बोले, ब्राह्मणोंकी तपस्याके सहारे सदा वाक्बल सिद्ध होता है, राजा लोग बाहुबलशाली और ब्राह्मण लोग वाक्यरूपी बलसे सम्पन्न हैं। ब्राह्मण लोग गुरुके गृहमें निवास करके क्लेश सहते हुए वेदाध्ययन करें। निर्म्मन्यु निर्व्वाण और समदर्शी होकर परिव्राजक धर्म्माचरण करें। यदि ज्ञान सम्पन्न ब्राह्मण पितृगृहोंमें श्लाघनीय होकर समस्त वेद पढ़े, तौभी लोग ग्राम्य कहके उसकी निन्दा करते हैं। जैसे सर्प बिलमें रहनेवाले जीवोंको ग्रास करता है, वैसे ही भूमिका तेज योद्धारहित राजा और अप्रवासी ब्राह्मणको ग्रास किया करता है। अभिमान अल्पबुद्धि पुरुषकी श्री नष्ट करता है, गर्भके कारण कन्या दूषित होती है और गृहवास निबन्धनसे ब्राह्मण दूषित होता है। जैसे मेरे पिता अद्भुतदर्शन चन्द्रमाके निकट यह वृत्तान्त सुनकर महाव्रती ब्राह्मणोंकी जिस प्रकार पूजा करते थे, मैं भी उस ही भांति उन लोगोंकी पूजा किया करता हूं।

भीष्म बोले, देवराजने दानवेन्द्र शम्बरके मुखसे निकले हुए सब बचन सुनकर पूर्व्वरीतिसे ब्राह्मणोंकी पूजा की थी, उसहीसे महेन्द्रत्व पाया है।

३६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पहलेका परिचित, चिरोषित और दूरदेशका अभ्यागत, इन तीनों पात्रोंके बीच कौन पात्र उत्तम है?

भीष्म बोले, अपूर्व्व चिरोषित और दूरसे आया हुआ अभ्यागत, इन तीन प्रकारके पात्रोंमेंसे कोई कोई यज्ञ करनेके निमित्त कोई परिवारको पालन करनेके लिये जांचते हैं; कोई मौनव्रत वा सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन किया करते हैं, उनके बीच जो जिस बस्तुके निमित्त प्रार्थना करें, सेवकोंको पीड़ित न करके उन्हें वही प्रदान करूंगा, ऐसा ही अंगीकार करना चाहिये, किसीको भी प्रत्याख्यान करना उचित नहीं है; मैंने ऐसा सुना है, कि सेवकोंको पीड़ित करनेसे अपनी ही बुराई होती है। यज्ञादि कर्म्म और मौनव्रत आदिके तारतम्यके अनुसार पात्रमें भी तारतम्य हुआ करता है। चिरोषित और दूरदेशके अभ्यागत पात्रके लिये अपूर्व्ववत् भावना करनी चाहिये, पण्डितोंने इस ही प्रकार पात्र कहे हैं।

युधिष्ठिर बोले, जीवोंके अपीड़न और धर्म्मकी अहिंसाके सहारे यथार्थ रीतिसे ऐसा पात्र निर्णय करें, जिसे दान करनेसे प्रदेयवस्त्वभिमानी देवता सन्तापित न हों, इसलिये वैसा पात्र कौन है?

भीष्म बोले, ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य्य, शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव, शास्त्रज्ञ और निन्दारहित पुरुष मात्र ही पूज्य और माननीय हैं और जो लोग इनके बिपरीत हैं, वे सत्कारके योग्य नहीं हैं; इसलिये सदा प्रणिधानपूर्व्वक पुरुषोंकी परीक्षा करनी उचित है। हे भारत!

जिस पुरुषमें अक्रोध, सत्यवचन, अहिंसा, तपस्या सरलता, अनभिमान, लज्जा, तितिक्षा, शम और दम दीखते हैं और स्वभावसे ही समस्त अकार्य्य निषिद्ध नहीं होते, वही पात्र सम्मानका भाजन है, चिरोषित, सम्प्रति आगत पूर्व्व परिचित और अपूर्व्व पात्र भी वैसे ही सम्मानका भाजन है। वेदोंको अप्रमाणित करना, शास्त्रोंको उलङ्घन और सब विषयोंको अव्यवस्था ही निज अपात्रताका लक्षण है। जो ब्राह्मण वेदनिन्दक और पाण्डित्यभिमानी होकर निरर्थक श्रुतिविरोधी मोक्षको अनुपयोगी आन्वीक्षिकी तर्कविद्यामें अनुरक्त रहता है और साधुओंके बीच समस्त हेतुवाद प्रकट करते हुए शास्त्रसम्मत हेतुवादिक न होके भी विजेता बनता है, सदा ब्राह्मणोंके विषयमें ईर्षा किया करता है, तथा जो पुरुष अतिरक्त सर्व्वशङ्की मूढ़, बालस्वभाव और कटुभाषी हों, उन्हें अस्पृश्य जानना योग्य है, हे तात! क्यों कि वैसे पुरुषको बुद्धिमान लोग कुत्तेके समान समझते हैं। जैसे कुत्ता काटने और भक्षण करनेके लिये सदा उद्यत रहता है, उस ही भांति सम्भाषण और सर्व्व शास्त्र विनष्ट करनेके लिये मूर्ख मनुष्य उद्योगी हुआ रहता है। लोकयात्रा निवाहनेके लिये शिष्टाचार आदि व्यवहार श्रुत स्मृतिके द्वारा नियमित धर्म्म और आत्महितकर शम, दम आदिके विषयमें पुरुषको दृष्टि रखनी उचित है। जो पुरुष इस ही प्रकार जीवन व्यतीत करता है, वह सदा वर्द्धित होता है। यज्ञके सहारे देवऋण, वेदपाठसे ऋषिऋण, पुत्र उत्पन्न करनेसे पितृऋण, दान और मानके द्वारा विप्रऋण और वैश्वदेवके अन्तमें उपस्थित पुरुषोंका सत्कार करनेसे अतिथि-ऋण, इन पांचो ऋणोंसे अऋण होकर यथा रीतिसे पवित्र और उत्तम विनीत कर्म्मके सहारे गृहस्थके कार्य्योंको निबाहनेसे पुरुष धर्म्महीन नहीं होता।

३७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम! मैं स्त्रियोंका स्वभाव सुननेकी इच्छा करता हूं, क्यों कि स्त्रियें सब दोषोंकी मूल हैं, वे वायुतुल्य लघुचित्तवाली कहके वर्णित हुआ करती हैं।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें पञ्चचूड़ा पुंश्चलीके सङ्ग नारद मुनिके सम्वादयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं।

पहिले समयमें देवर्षि नारदने सब लोकोंमें विचरते हुए ब्रह्मलोकवासिनी पञ्चचूड़ा नाम अप्सराको देखा, मुनिने उस सर्व्वाङ्ग सुन्दरी अप्सराको देखकर पूछा;—हे सुमध्यमे! मेरे अन्तःकरणमें कुछ संशय है, उसे तुम दूर करो।

भीष्म बोले, उसने कहा, कि आप मुझे समर्थ समझते हैं, परन्तु यदि मुझमें कहनेकी योग्यता रहेगी तो अवश्य कहूंगी।

नारद मुनि बोले, हे भद्रे! तुममें योग्यता न रहनेसे मैं कदापि तुम्हें इस विषयमें नियुक्त न करूंगा। हे वरानने! मैं तुम्हारे समीप स्त्रियोंके स्वभावका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, अप्सराओंमें मुख्य पञ्चचूड़ाने देवर्षिका वचन सुनके उत्तर दिया, कि मैं स्त्री होकर किस प्रकार स्त्रियोंकी निन्दा कर सकूंगी। हे देवर्षि! स्त्रियें जैसी हैं और जैसा उनका स्वभाव है, वह आपको अविदित नहीं है; इसलिये मुझे ऐसे कार्य्यपर नियुक्त करना तुम्हें उचित नहीं है।

देवर्षि नारदमुनिने उससे फिर कहा, हे सुमध्यमे! तुम जो कहती हो, वह सत्य है, परन्तु मिथ्या बोलनेमें ही दोष हुआ करता है, सत्य कहनेमें दोष नहीं है। चारुहासिनी पञ्चचूड़ा देवर्षिका ऐसा वचन सुनकर निश्चय करके स्त्रियोंका शाश्वत सत्य दोष कहनेके निमित्त उद्यत हुई।

पञ्चचूड़ा बोली, हे नारद! सत्कुलमें उत्पन्न हुई रूपवती और नाथवती जो स्त्रियें

मर्य्यादा अतिक्रम करती हैं, वही स्त्रियोंका दोष है। स्त्रियोंसे पापी और दूसरा कोई भी नहीं है, यह तुम जान रखो, कि स्त्रियें ही सब दोषोंकी मूल हैं। स्त्रियां आज्ञाकारी, समृद्धिशाली, रूपवान और वशीभूत पतिको भी अवकाश पानेपर प्रतीचा करनेमें समर्थ नहीं होतीं। हे प्रभु! हम स्त्री जाति हैं, इसलिये हमारा यह धर्म्म उत्तम नहीं है। हम जो लज्जा छोड़के पापी पुरुषोंकी सेवा करती हैं, यह अत्यन्त ही असद्धर्म है। जो पुरुष स्त्रियोंकी प्रार्थना करता है और स्त्रियोंके निकट जाता है वा अधिक सेवा करता है, स्त्रियें उस पुरुषकी ही अभिलाष किया करती हैं। पुरुषोंके प्रार्थनाभाव और परिजनोंके भय-निबन्धनसे मर्य्यादारहित स्त्रियें पतिके निकट मर्य्यादाकी रक्षा करती हैं। स्त्रियोंके लिये अगम्य कोई भी नहीं है, इन्हें अवस्थापर निश्चय नहीं है, कुरूप हो अथवा रूपवान् ही होवे, पुरुषको पानेसे ही उसे भोग किया करती हैं। स्त्रियें भय, दया, अर्थहेतु अथवा ज्ञाति-कुल सम्बन्धसे पतिके निकट अनुगत नहीं रहतीं। यौवनवती उत्तम वस्त्र-आभूषणोंसे भूषित स्वैरचारिणी स्त्रियोंकी कुछ कामिनी-छन्द स्पृहा किया करती हैं। जो सब बहुमता दयिता स्त्रियें सदा रक्षिता होती हैं, वे भी कूबरे, अन्धे, जड़ और बामनोंके सङ्ग पूरीरीतिसे आसक्त हुआ करती हैं। हे देवर्षि। हे महा-मुनि! पंगुओंके बीच जो लोग कुत्सित मनुष्य हैं और दूसरे जो लोग चाहे कैसे ही बुरे क्यों न हों, इस लोकमें स्त्रियोंके लिये उनके बीच कोई भी अगम्य नहीं है। हे ब्रह्मन्! यदि स्त्रियें किसी प्रकार पुरुषको नहीं पातीं, तो परस्पर ही स्त्री-पुरुष रूपसे प्रसक्त हुआ करती हैं, तथापि पतिके बहुत दूर रहनेपर उसकी उपेक्षा करके धीरज नहीं धरतीं। पुरुषको न पानेपर पड़ोसियोंके डर और बध बन्धनके भयसे स्त्रियें स्वयं रक्षित हुआ करती हैं। इस लोकमें बुद्धिमान् पुरुषोंके बचनकी भांति स्त्रियें चलस्वभाव, दुःसेव्य और स्वाभाविक दुर्ग्राह्य हैं अर्थात् उनका अभिप्राय जाना नहीं जाता। काठसे अग्नि, जलसे समुद्र, समस्त भूतोंसे मृत्यु, और पुरुषोंसे स्त्रियें तृप्त नहीं होतीं। हे देवर्षि! सारी स्त्रियोंका यह भी एक रहस्य-विषय है, कि मनोहर पुरुषको देखते ही उनकी योनि क्लेदयुक्त होती है। स्त्रियें काम-दाता मनको प्रसन्न करनेवाले अपने पतिसे रक्षित होनेपर भी उसके विषयमें क्षमा नहीं करतीं। जैसे स्त्रियें रतिविषयमें पतिके अनुग्र-हकी अभिलाष करती हैं, विपुल कामभोग, आभूषण और निवास स्थानका वैसा आदर नहीं करतीं। यम, पवन, मृत्यु, पाताल, बाड़वामुख, क्षुरधारा, बिष और अग्निकी भांति अकेली स्त्री, बिनाश साधन करती है। हे नारद! जिससे पञ्चमहाभूत बिहित हुए हैं, जिससे बिधाताने लोकरचना की है, जिससे पुरुष और स्त्रियें उत्पन्न हुई हैं; उस ही स्वभावके द्वारा स्त्रियोंमें सब दोष बिहित हुए हैं।

३८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! जगत्‌के बीच ये सब मनुष्य देवसृष्ट मोहसे अत्यन्त आविष्ट होकर स्त्रियोंमें बहुत ही आसक्त होते हैं और स्त्रियें भी पुरुषोंमें अत्यन्त अनुरक्त हुआ करती हैं, यह लोक साक्षिक और प्रत्यक्ष है; इसलिये इस बिषयमें मेरे हृदयमें तीव्र संशय बिद्यमान है। हे कुरुनन्दन! पुरुष किस कारणसे इनका सङ्ग करती हैं और स्त्रियें किस पर अनुरक्त रहती हैं तथा फिर क्यों विरक्त होती हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! किस प्रकारसे पुरुष-छन्द उनकी रक्षा नहीं कर सकते, मुझसे यह बिषय बर्णन करना आपको उचित है। जैसे

गौवें नये तृणको ग्रहण करती हैं, ये भी वैसे ही नवीन नवीन पुरुषोंको अवलम्बन किया करती हैं । शम्बरासुर, नमुचि, बलि और कुम्भीनसीर की जो माया थी, ये भी काल क्रमसे उस ही मायाको अवलम्बन किया करती हैं । शुक्राचार्य्य और वृहस्पति जो शास्त्र जानते हैं, स्त्रियोंकी बुद्धिसे वह श्रेष्ठ नहीं है, इसलिये मनुष्य ऐसी स्त्रियोंको किस प्रकार रक्षा करेगा? हे वीर ! जो मिथ्याको सत्य कहती और सत्यको मिथ्या करती है, उसको पुरुष किस प्रकार रक्षा करेगा? हे शत्रु नाशन! बोध होता है, वृहस्पति आदि साधु पुरुषोंने स्त्रियोंकी ही शक्तिके अर्थ निष्कर्षसे अर्थशास्त्रोंकी रचना की है। स्त्रियें पुरुषोंसे पूरीरीतिसे सत्कृत वा समादृत होनेपर भी उनका मन विकृत करती है और पुरुष जब स्त्रीको परित्याग करता है, तब उसके लिये भी चित्त विकृत किया करती हैं । हे महाबाहो ! हमने यह सुना है, कि स्त्रीरूपी प्रजावृन्द धार्म्मिक हैं, ये सत्कृत वा असत्कृत होनेपर सदा मन विकृत करती हैं । हे कुरुवंशवर्द्धन महाभाग ! कौन उनकी रक्षा करनेमें समर्थ होता है? इसमें मुझे अत्यन्त संशय है, इसलिये आप इस ही विषयको वर्णन करिये, हे कुरुश्रेष्ठ! कदाचित यदि उनकी रक्षा की जा सके, अथवा पहिले यदि किसीने उनकी रक्षा की हो, तो आप मेरे समीप उसकी व्याख्या करिये ।

३८ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे कुरुकुलधुरन्धर प्रजानाथ ! तुमने स्त्रियोंके विषयमें जो कहा, वह सब यथार्थ है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है, पहिले समयमें महात्मा विपुलने जिस प्रकार स्त्रीकी रक्षा की थी, इस विषयमें तुम्हारे समीप वही पुराना इतिहास वर्णन करूंगा । हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ ! प्रजापतिने जिस प्रकार और जिस लिये प्रजासमूहको उत्पन्न किया है, तुमसे वह भी कहता हूं । हे तात ! स्त्रियोंसे पापी और कोई भी नहीं है । हे विभु ! स्त्री जलती हुई अग्नि अथवा मायास्वरूप हैं, एक मात्र स्त्री ही क्षूरधारा, विष, सर्प और अग्निस्वरूप है। हे महाबाहो ! हमने सुना है, कि स्त्री रूपी प्रजावृन्द पहिले धार्म्मिक थीं, ये स्वयं देवत्व लाभ करती थीं, उस समय देवता वृन्द भयभीत हुए, हे शत्रुदमन ! अनन्तर वे देववृन्द पितामहके निकट गये और अभिप्राय सुनाकर सिर नीचा करके खड़े रहे । सर्व्व शक्तिमान प्रजापतिने देवताओंका अन्तर्गत अभिप्राय जानके मनुष्योंके विनोदके लिये कृत्यारूपी स्त्रियोंको उत्पन्न किया । हे कुन्तीनन्दन ! पहिले स्वर्गमें स्त्रियें साध्वी थीं; फिर प्रजापतिकी कृत्यासृष्टिके अनन्तर असाध्वी रूपसे उत्पन्न हुईं । पितामहने इच्छानुसार उनकी सब कामना पूरी की । वे कामलुब्ध स्त्रियें सदा पुरुषोंको बाधित करने लगीं । सर्व्वशक्तिमान देवेशने क्रोधको कामकी सहायताके लिये उत्पन्न किया । प्रजासमूह काम क्रोधके वशमें होकर धर्म्माचरणमें असमर्थ हुई । स्त्रियोंके लिये कोई क्रिया नहीं है, ऐसा ही धर्म्म व्यवस्थित हुआ । ऐसी जनश्रुति है, कि निरिन्द्रिय शास्त्रवर्ज्जित स्त्रियें मिथ्या स्वरूप हैं । प्रजापतिने स्त्रियोंको शय्या, आसन, आभूषण, अन्न, पान, अनार्य्यता, दुर्व्वाक्य और रति प्रदान किया । पुरुषगण किसी प्रकारसे भी उनकी रक्षा करनेमें समर्थ न होंगे । हे तात ! जब जगत्कर्त्ता स्वयं ही रक्षा नहीं कर सकते, तब इस लोकमें दूसरे पुरुष वाक्य, बध, बन्धन और विविध क्लेशके द्वारा किस प्रकार स्त्रियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ होंगे? क्योंकि वे सब सदा ही असंयत हैं । हे पुरुषश्रेष्ठ ! पहिले समयमें विपुल नामक महर्षिने जिस प्रकार गुरुपत्नीकी रक्षा की थी, वह वृत्तान्त मैंने सुना है । देवशर्म्मा नामसे विख्यात् एक महाभाग ऋषि थे,

उनकी भार्य्याका नाम रुचि था ; पृथ्वीमण्डलमें उसके समान सुन्दरी कोई न थी। हे राजेन्द्र! देव, गन्धर्व्व, दानव, तथा विशेष करके वत्रहन्ता इन्द्र उसकी सुघराई देखके मत्त हुए थे। स्त्री चरित जाननेवाले महामुनि देवशर्म्मा शक्ति और उत्साहके अनुसार अपनी भार्य्याकी सब भांतिसे रक्षा करते थे। वह इन्द्रको परस्त्री-गामी जानते थे, इस ही निमित्त बलपूर्व्वक भार्य्याकी रक्षा करनेमें यत्नवान थे। हे तात! किसी समय उस ऋषिने यज्ञ करनेकी इच्छा करके उस समय विचारा, कि किस प्रकार भार्य्याकी रक्षा करनी चाहिये। उस महात-पस्वीने मनही मन भार्य्याकी रक्षाका उपाय निश्चय करके भार्गवगोत्री निज शिष्य विपुलको आह्वान करके कहा।

देवशर्म्मा बोले, हे भृगुत्तम! मैं यज्ञ कर-नेके लिये गमन करूंगा, इन्द्र सदा इस रुचिको चाहता है, इसलिये तुम शक्तिके अनुसार इसकी रक्षा करना ; इन्द्रके विषयमें तुम सदा अप्र-मत्त रहना, क्यों कि वह विविध रूप धारण किया करता है।

भीष्म बोले, हे राजन्! अग्नि और सूर्य्यके समान तेजस्वी, सदा उग्र तप करनेवाले, निय-तेन्द्रिय धर्म्मज्ञ, सत्यवादी तपस्वी विपुलने गुरुका वचन सुनके उत्तर दिया, कि ऐसा ही करूंगा। हे महाराज! जब गुरु चलनेको उद्यत हुए, तब उन्होंने उनसे फिर पूछा।

विपुल बोले, हे मुनि! देवराजके आगमन करनेपर उनका कैसा रूप होता है, उनका शरीर और तेज कैसा है? आप मेरे निकट इस विषयकी व्याख्या करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! अनन्तर भगवान् देवशर्म्मा महानुभाव विपुलसे इन्द्रको मायाका यथार्थ तत्व कहने लगे।

देवशर्म्मा बोले, हे विप्रर्षि! भगवान इन्द्र अनेक प्रकारकी माया जानते हैं, वह बार बार अनेक प्रकारके भाव उत्पन्न करते हैं; कभी किरीटी, वज्रधारी, बची, मुकुटी और बहकु-ण्डली होते तथा मुहूर्त भरके बीच चाण्डालके सदृश दीख पड़ते हैं। हे तात! वह कभी शिखावान कभी जटावान होते, कभी चीरवसन पहरते, कभी विपुल शरीर और कृश हुआ करते हैं। वह श्वेत, श्याम तथा कृष्ण प्रभृति विविध वर्ण धारण करते हैं। वह कभी कुरूप कभी रूपवान्, कभी युवा, कभी वृद्ध कभी ब्राह्मण, कभी क्षत्रिय, कभी वैश्य और कभी शूद्र होते हैं; शतक्रतु समस्त प्रतिलोम तथा अनुलोम हो सकते हैं। वह शुक और कौवाका रूप धारण करते, कोकिल तथा हंसका रूप धारण कर सकते और सिंह, बाघ तथा हाथी आदिका रूप भी धारण किया करते हैं। देव, दैत्य और राजाओंका शरीर धारण करते तथा वह अकृश, वायु, भुग्नाङ्ग, शकुनि, विकृत, चतु-ष्पाद, बहुरूप और पुनर्व्वार मूर्ख होते तथा मक्षिका मशक आदिका शरीर धारण करते हैं। हे विपुल! दूसरेको बात तो दूर है, जिसने इस जगत्की रचना को है, वह विश्वकर्त्ता भी उसे जाननेमें समर्थ नहीं होते। इन्द्र अन्तर्हित होनेपर ज्ञाननेत्रसे दीख पड़ते और फिर वायु रूप होकर देवराज होते। हे विपुल! इन्द्र इस ही भांति समस्त रूप धारण किया करते हैं, इसलिये इस क्षीणमध्याकी यत्नपूर्व्वक रक्षा करो। हे भृगुसत्तम! उपस्थित यज्ञको हविको कुत्ता खाता है, उसी भांति देवेन्द्र रुचिको अव-लेहन न करे।

हे भरतसत्तम! अनन्तर उस महाभाग यज्ञ-कारी देवशर्म्मा मुनिने ऐसा वचन कहके गमन किया। विपुल भी गुरुका वचन सुनके चिन्ता करने लगे और महाबलवान देवराजसे गुरुप त्नीकी रक्षा करनेके लिये यत्नवान रहे। उन्होंने सोचा कि सुरराज अत्यन्त वीर्य्यवान् दुरभिभ-वनीय और मायावी है, इसलिये क्या मैं उससे

गुरुपत्नीकी रचा कर सकूंगा ? आश्रम अथवा कुटीको बिना बन्द किये इन्द्रको निवारण करना दुःसाध्य है; क्यों कि उसमें अनेक प्रकारके रूप धारण करनेकी योग्यता है, अथवा यदि देवराज वायुरूपसे गुरुपत्नीको धर्षण करे ! इसलिये मैं आजसे इसके शरीरमें प्रवेश करके रहूंगा, नहीं तो मैं पौरुषसे इसकी रचा न कर सकूंगा । क्यों कि सुना है भगवान इन्द्र अनेक प्रकारका रूप धारण किया करते हैं। इसलिये इसकी रचा करनेके लिये योगबलसे इसके शरीरमें प्रवेश करूंगा, तब इन्द्रसे इसकी रचा कर सकूंगा । दिव्य ज्ञानसे युक्त महातपस्वी मेरे गुरु यदि आज अपनी भार्य्याको उच्छिष्टा देखेंगे, तो क्रुद्ध होके निःसन्देह शाप देंगे । जैसे मनुष्य दूसरी स्त्रीकी रचा नहीं कर सकते, वैसे ही इसकी रचा करनी मेरे लिये असाध्य कार्य्य है ; क्यों कि देवेन्द्र अत्यन्त ही मायावी है । हाय ! मैं क्या ही संशयमें पड़ा हूं। इस समय गुरुकी आज्ञा मुझे अवश्य ही प्रतिपालन करनी उचित है, यदि मैं इसे प्रतिपालन कर सकूं, तो महत् आसर्य्य कार्य्य होगा । योगबलसे मैं गुरुपत्नीके शरीरमें प्रवेश करूं और कमलके पत्तेपर स्थित जलकी बूंदकी भांति चञ्चल होकर भी आसक्त न होऊं। रजोरूपसे निर्म्मुक्त रहनेपर मेरा कुछ अपराध न होगा । जैसे पथिक मार्गमें सूने स्थानमें वास करता है, आज मैं उस ही भांति गुरुपत्नीके शरीरको वासस्थान करूंगा ; इस ही भांति सावधान होकर मैं इसके शरीरमें स्थित रहूंगा ।

हे राजन् ! भृगुवंशीय विपुलने इस ही प्रकार धर्म्मकी आलोचना वा सब भांतिसे वेदार्थकी पर्य्यालोचना की और गुरु तथा अपनी तपस्याको अवलोकन करनेपर निश्चय करके जिस रीतिसे अत्यन्त यत्नका अनुष्ठान किया था, वह सुनो । उस महातपस्वी विपुलने बैठकर समीपमें बैठी हुई अनिन्दिताङ्गी गुरुपत्नीको यथार्थ विषयमें लाभ प्रदर्शित किया था । विपुलने अपने नेत्रके तेजसे उसके दोनों नेत्रोंका तेज संयोजित करके इस प्रकार उसके शरीरमें प्रवेश किया, जैसे पवन आकाशमें प्रवेश करता है । मुनि छायाकी भांति अन्तर्हित होकर लचणसे लचण और शरीरसे शरीरको चेष्टारहित न करके निवास करने लगे । अनन्तर विपुल गुरुपत्नीके शरीरको स्तम्भित करके उसकी रचामें नियुक्त होकर स्थित रहे, वह उन्हें न जान सकी । हे महाराज ! जबतक उस महात्माके गुरु यज्ञ समाप्त करके अपने घरपर नहीं आये, तबतक वह सब भांतिसे गुरुपत्नीकी रचा करनेमें प्रवृत्त रहे ।

४० अध्याय समाप्त ।

अनन्तर किसी समयमें इन्द्रने दिव्य सौन्दर्य्ययुक्त शरीर धारण करके अवकाशका समय बिचारके उस आश्रमकी ओर आगमन किया । हे प्रजानाथ ! वह परछांई रहित सुन्दर रूप धारण करके अत्यन्त दर्शनीय होकर उस आश्रममें प्रविष्ट हुए । उन्होंने उस समय चित्रलिखितकी भांति स्तब्धनेत्र और चेष्टारहित होकर बैठा हुआ विपुलका शरीर देखा तथा निविड़ नितम्ब, और पीन-पयोधर, पद्मपत्रके समान विशालनयनी, पूर्णचन्द्रसदृश मुख और उत्तम अंगवाली रुचिको अवलोकन किया । रुचिने इन्द्रको देखते ही सहसा उठनेकी इच्छा की और उनके रूपसे विस्मित होकर तुम कौन हो, मानो ऐसा बचन कहनेकी अभिलाषी हुई । हे नरनाथ ! वह सती विपुलके द्वारा विष्टब्ध और निगृहीत रहनेसे उठनेकी इच्छा करके भी न उठ सकी । तब इन्द्रने उससे परम मनोहर प्रिय बचन कहे । हे शुचिस्मिते ! मैं देवेन्द्र हूं, तुम्हारे ही निमित्त यहां आया हूं। हे सुभ्रु ! मैं तुम्हारे संकल्पजनित कामसे क्लेशित होकर आया हूं, मुझे तुम समागत

समझी ; समय बीता जाता है। इन्द्र ऐसा कह रहे थे, उसे विपुल मुनिने सुना और गुरुपत्नीके शरीरमें रहके ही उन्हें देख लिया।

हे महाराज! वह अनिन्दिता विपुलके द्वारा विष्टब्ध रहनेसे उठने अथवा कुछ कहने न सकी। हे प्रभु! उस भृगुकुल-धुरन्धर महातेजस्वी विपुलने गुरुपत्नीका आकार जानके भली भांति बलपूर्व्वक योगके सहारे उसे निग्रह कर रखा। हे महाराज! इन्द्रने उसे योगबलसे मोहित और बिकाररहित देखकर पीड़ित होकर फिर उससे कहा कि "आओ! आओ।" अनन्तर रुचिने उन्हें प्रत्युत्तर देनेकी इच्छा की, परन्तु विपुलने गुरुपत्नीका वह वचन परिवर्त्तन कर दिया। रुचिके चन्द्र सदृश शरीरसे 'ऐ तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है?' ऐसा ही सत्कृत वचन बाहर हुआ। परवश होनेसे रुचि उस समय ऐसा वचन कहके लज्जित हुई, इन्द्र भी वहांपर अत्यन्त दुःखित होकर स्थित रहे। हे महाराज! देवराज इन्द्रने उसका वह विकृत भाव जानके उस समय दिव्य-दृष्टिके सहारे देखा, उन्होंने दर्पणमें प्रतिबिम्बकी भांति गुरुपत्नीके शरीरमें तथा शरीरान्तर गोचर विपुलका शरीर अवलोकन किया। इन्द्र उसे घोर तपस्यायुक्त देखके बहुत डरे और शापभयसे डरके उस समय कांपते हुए खड़े रहे। तब महातपस्वी विपुल गुरुपत्नीको परित्याग करके निज शरीरमें प्रविष्ट होकर डरे हुए इन्द्रसे कहने लगे।

विपुल बोले, रे नीचबुद्धिवाले अजितेन्द्रिय पापी पुरन्दर! देववृन्द और मनुष्य तेरा सदा सम्मान न करेंगे। हे शक्र! परन्तु गौतमके द्वारा भगाङ्कसे चिन्हित होकर जो तू मुक्त हुआ, क्या वह याद नहीं है? क्या उसे भूल गया? मैं तुझे मूढ़बुद्धि अकृतात्मा अधीश्वर जानता हूं। रे मूढ़! रे पापी! यह मेरे द्वारा रक्षित होरही है, तू जिस स्थानसे आया है, वहां ही चला जा, रे मूढ़ात्मा इन्द्र! आज मैंने अपने तेजसे तुझे नहीं जलाया, मैंने कृपा करके तुझे भस्म करनेकी इच्छा नहीं की; मेरे वह अत्यन्त बुद्धिमान् गुरु तुझ पापीको देखते ही क्रोधयुक्त नेत्रसे इस ही क्षणमें निःशेष करके भस्म करेंगे। हे इन्द्र! तू फिर ऐसा कर्म्म न करना; ब्राह्मणवृन्द तुम्हारे माननीय हैं, इसलिये ब्रह्मबलसे पीड़ित होकर पुत्र और सेवकोंके सहित बिनष्ट न होना। अपनेको अमर समझके मेरी अवज्ञा मत करो, तपस्यासे कुछ भी असाध्य नहीं है।

भीष्म बोले, इन्द्र महानुभाव विपुलका ऐसा वचन सुनके लज्जासे आर्त्त होकर कुछ भी न कहके उस ही स्थानमें अन्तर्हित हुए। मुहूर्त्त भर समय बीतनेपर महातपस्वी देवशर्म्मा यज्ञ समाप्त करके इच्छानुसार अपने आश्रमपर आये। हे राजन्! गुरुके आनेपर प्रियकार्य्य करनेवाले विपुलने अनिन्दिता गुरुपत्नीकी जिस प्रकार रक्षा की थी, वह सब उनके समीप कह सुनाया। वह शान्तचित्त गुरुवत्सल विपुल गुरुको प्रणाम कर पहलेकी भांति आशङ्कित होकर गुरुकी सेवा करने लगे। जब वह बिश्राम करके भार्य्याके सहित बैठे, तब विपुलने उनसे इन्द्रका सब कार्य्य सुना दिया। उस प्रतापवान् मुनिश्रेष्ठने विपुलका वचन सुनके उसका स्वभाव, चरित्र, तपस्या, नियम, गुरुसेवा और गुरुके विषयमें भक्ति तथा धर्म्ममें स्थिरता देखकर साधु साधु कहके उसे धन्यवाद दिया। महाबुद्धिमान् धर्म्मात्मा देवशर्म्माने शिष्यको धर्म्मपरायण जानके उससे कहा, कि वर मांगो। गुरुवत्सल विपुलने गुरुके समीप यह वर मांगा, कि धर्म्ममें मेरी स्थिति रहे, वर पाके गुरुकी आज्ञासे उत्तम तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। वह महातपस्वी देवशर्म्मा भी इन्द्रसे निडर होकर भार्य्याके सहित निर्ज्जन वनमें बिचरने लगे।

४१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर वीर्य्यवान् विपुलने गुरुका बचन प्रतिपालन करके तीव्र तपस्याचरणसे अपनेको तपयुक्त समझा। हे महाराज! वह निज कर्म्मसे कीर्त्ति और वर लाभ करके प्रसन्न होकर स्पर्द्धा करते हुए निर्भयचित्तसे पृथ्वीमण्डलपर बिचरने लगे। हे कौरव! उन्होंने पहले कहे हुए कार्य्य तथा अत्यन्त तपस्याचरणके सहारे जाना, कि मैंने इस लोक और परलोकको जय किया है। हे कुरुनन्दन! अनन्तर कुछ समय बीतनेपर रुचिके भगिनीका बहुतसे धनधान्यसे युक्त पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ, उस ही समय कोई दिव्य बाराङ्गनाने परम मनोहर रूप धारण करके आकाशमार्गसे गमन किया। हे भारत! उस आश्रमसे थोड़ी ही दूरपर उस दिव्याङ्गनाके अङ्गसे दिव्यगन्धयुक्त बहुतसे फूल पृथ्वीपर गिरे। हे महाराज! अनन्तर ललितनयनी रुचि उन फूलोंको ग्रहणकर रही थी, उस ही समय अंगदेशसे शीघ्र ही उसके समीप एक निमन्त्रण आया। हे तात! प्रभावती नाम उसकी जेठी बहिन अंगदेशके राजा चित्ररथकी भार्य्या थी, वरवर्णिनि रुचि आमन्त्रित होनेपर केशमें उन्हीं फूलोंको गुथके अंगराजके स्थानपर गई। उस समय अंगराजकी उत्तम नेत्रवाली स्त्री उन फूलोंको देखकर अपनी बहिनसे बोली मेरे लिये ऐसे ही फूल मंगा दो। सुन्दर मुखवाली रुचिने भगिनीका बचन पतिके निकट कह सुनाया, ऋषिने उसके बचनका समादर किया। हे भारत! अनन्तर महातपस्वी देवशर्म्माने विपुलको आह्वान करके फूल लानेके निमित्त भेजा। हे महाराज! महातपस्वी विपुल गुरुके बचनमें कुछ भी विचार न करके बोले, कि ऐसा ही करूंगा, फिर उस ही स्थानपर गमन किया। जिस स्थानपर वे समस्त फूल आकाशसे गिरते थे, वहांपर और भी कितने ही ताजे पुष्प पड़े थे। हे भारत! अनन्तर उन्होंने अपने तपोबलसे उन दिव्य गन्धवाले मनोहर पुष्पोंको पाके ग्रहण किया। गुरुके बचनको पालन करनेवाले विपुलने उस समय उन फूलोंको पाके प्रसन्नचित्त होकर शीघ्र ही चम्पकमालिनी चम्पानगरकी ओर प्रस्थान किया। हे तात! उन्होंने उस निर्ज्जन बनके बीच पाणिके द्वारा कर ग्रहण करके चक्रकी भांति परिवर्त्तनकारी नर मिथुन देखा। हे राजन्! उन दोनोंके बीच एक शीघ्र गमन कर रहा था, दूसरा उसके पदमें विषमता प्रति पादन करते हुए साथमें गमन करता था, अनन्तर उस समय वे दोनों कलह करने लगे। एक कहता था, तुमने शीघ्र गमन किया है, दूसरा कहने लगा, मैंने शीघ्र गमन नहीं किया है।

हे राजन्! वे दोनों आपसमें नहीं, नहीं, ऐसा ही बचन कहने लगे। उस समय इस ही भांति विवाद होते रहनेपर उन दोनोंने विपुलको उद्देश्य करके यह शपथ किया, कि इस विपुल ब्राह्मणकी परलोकमें जो गति होगी हम लोगोंके बीच जो मिथ्या कहता है, उसकी भी वही गति होगी। विपुलने ऐसा बचन सुनके विलख-वदन होकर सोचा, कि मैं ऐसा तपस्वी हूं, इसलिये मुझे उद्देश्य करके इस मिथुनने जो बचन कहा है, इन दोनोंके लिये वह कष्टकर मात्र है, मैंने ऐसा कौनसा पाप किया है, जो इनकी भी वही गति होगी? इस समय इन लोगोंने मेरी जिस गतिका विषय कहा है, वह सब प्राणियोंकी अनभिलषित है, हे राजसत्तम! विपुल इस ही भांति चिन्ता करते हुए दीनचित्त होकर सिर नीचा करके अपने दुष्कृतिविषयका ध्यान करने लगे।

अनन्तर उन्होंने सोने और रूपेसे बने हुए अक्षके सहारे क्रीड़ा करनेवाले लोभ हर्षसेयुक्त और छः पुरुषोंको अवलोकन किया। पहले कहे हुए मिथुनने विपुलको उल्लेख करके जिस प्रकार शपथ किया था, वे भी उस ही भांति

शपथ करते थे। अनन्तर वे लोग विपुलको उद्देश्य करके यह बचन बोले, हम लोगोंके बीच जो लोभवशसे विषम आचरण करेगा, वह उस ही गतिको प्राप्त होगा, जैसी विपुलकी परलोकमें असद्गति होगी। हे कौरव! ऐसा बचन सुनके विपुलने जन्म पर्य्यन्त बिचारके देखा, परन्तु अपनेको धर्म्म सङ्करकारी नहीं समझा। हे राजन्! वह इस प्रकार शाप सुनके अग्निमें अर्पित काष्ठकी भांति दह्यमान होके चिन्ता करने लगे। हे तात! उनके चिन्ता करते रहनेपर अनेक दिन और रात्रि व्यतीत हुई, अनन्तर उनके अन्त:करणमें गुरुपत्नी रुचिके विषयमें रक्षाजनित व्यवहार उदित हुआ स्त्री पुरुषके असाधारण लक्षणको लक्षणसे और शरीरका शरीरसे निग्रहीत करके मैंने गुरुके निकट इस विषयकी सत्य नहीं कहा है। हे कौरव! उस समय महातपस्वी विपुलने अपना ऐसा दुष्कृत जाना और वही निश्चय पाप था, इसमें सन्देह नहीं है। अनन्तर उन्होंने चम्पानगरीमें आकर गुरुको फूल दिया और उस गुरुप्रिय विपुलने बिधिपूर्व्वक उनकी पूजा की।

४२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे प्रजानाथ! अनन्तर महातेजस्वी देवशर्म्माने उस शिष्यको आया हुआ देखकर जो वचन कहा था उसे सुनो।

देवशर्म्मा बोले, हे शिष्य विपुल! तुमने उस महावनके बीच क्या देखा था? हे विपुल! वे मुझे, रुचिको, और तुम्हें जानते हैं।

विपुल बोले, हे विभु ब्रह्मर्षि! जो लोग मुझे यथार्थ रीतिसे जानते हैं और जिनका विषय आप मुझसे पूछते हैं, वे मिथुन कौन हैं और वे सब पुरुष ही कौन हैं?

देवशर्म्मा बोले, हे ब्रह्मन्! तुमने जो मिथुन देखा है, जो कि चक्रकी भांति भ्रमण कर रहा है, उसे अहोरात्रि जानो; वे तुम्हारे पापकर्म्मको जानते हैं। हे विप्र! जो सब पुरुष हर्षितकी भांति अक्षक्रीड़ा कर रहे हैं, उन्हें ऋतु जानो, वे तुम्हारा दुष्कृत जानते हैं। मुझे कोई नहीं जानता है, ऐसा बिचार करके बिश्वास करना योग्य नहीं है। पापात्मा मनुष्य निर्ज्जनमें पापाचरण करता है, मनुष्यके सदा निर्ज्जनमें पापाचरण करनेपर ऋतु और अहोरात्रि उसे देखा करते हैं। कर्म्म करके न कहनेपर तुमने मेरे समीप जैसा किया है, वैसे पाप करनेवालोंकी जैसी गति होती है, उसे भी वे सब अवलोकन करते हैं। ऋतु प्रभृतिने तुम्हें गुरुके निकट निज कर्म्म निवेदन न करके हर्षसे गर्व्वित देखके उस विषयको स्मरण करानेके लिये जो कहा है, वह तुमने सुना। अहोरात्र और छहों ऋतु अशुभ कर्म्मशील पुरुषोंके शुभ वा अशुभ कर्म्मोंको सदा जानते हैं। हे द्विज! तुमने जो मेरे समीप व्यभिचारवशसे भयात्मक कर्म्म प्रकाश नहीं किया, उसे ही जानके उन सबने तुमसे ऐसा कहा है। तुमने मेरे समीप जैसा कहा, वैसा कर्म्म करके न कहनेसे उस पापकारीकी परलोकमें जो गति होती है, तुम्हारी भी उक्त कर्म्मवशसे वैसी ही गति होगी। हे द्विज! तुम दुश्चरित्रा स्त्रीकी रक्षा करनेमें समर्थ हो, उस विषयमें तुमने कुछ पाप नहीं किया, इस ही निमित्त मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं। हे द्विजसत्तम! यदि मैं तुम्हें दुर्वृत्त देखता, तो क्रोधवश अभिशाप देता; इस विषयमें मुझे बिचार नहीं है। स्त्रियें जो पुरुषोंपर अनुरागवती होती हैं, पुरुषोंका वही पुष्कल अर्थ है; यदि तुम अन्यथाचरण करते तो मैं उसे जानके अवश्य ही तुम्हें अभिशाप देता। हे तात! तुमने यथार्थ रीतिसे रक्षा की है और वह वृत्तान्त मुझे सुनाया है। हे पुत्र! इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं। तुम सुखी रहके स्वर्गमें गमन करोगे। महर्षि देवशर्म्माने

प्रसन्न होकर बिपुलसे इतनी कथा कहके भार्य्या और शिष्यके सहित स्वर्गमें जाकर अतिप्रीति लाभ की थी।

हे राजन्! पहले समयमें महामुनि मारकण्डेयने कथा प्रसङ्गमें मेरे समीप यह उपाख्यान कहा था। हे पार्थ! इस ही लिये तुमसे कहता हूं, सदा स्त्रियोंकी रचा करनी चाहिये। स्त्रियें सदा साधु और दुष्ट दोनोंही दीख पड़ती हैं। हे महाराज! महाभागा बधूगण सब लोकोंकी माता हैं, येही बन और काननके सहित इस पृथ्वीमण्डलको धारण किये हुई हैं। हे नरपाल! असाध्वी दुर्वृत्ता कुलघ्नी पाप कर्म्मवाली स्त्रियोंको शरीरमें उत्पन्न हुई हाथ पांवकी रेखा तथा दुष्टलचणसे मालूम करना चाहिये। महानुभाव मनुष्य इस ही प्रकार स्त्रियोंकी उत्तम रीतिसे रचा करनेमें समर्थ हैं। हे नृपश्रेष्ठ! अन्यथा स्त्रियें रचणीय नहीं हैं। हे मनुजश्रेष्ठ! ये तीच्ण तथा तीच्ण पराक्रमशालिनी हैं, मैथुनमें जो इनके साथ सहवास करता है, वही इनके लिये प्रिय है, उसके अतिरिक्त और कोई भी प्रिय नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! ये कृत्या अर्थात् प्राणघातिनी मृत्युरूपी हैं, व्यभिचारिणी होनेपर प्राण हरण किया करती हैं, कार्य्यरूपिणी और एक पुरुषको अङ्गीकृत हैं। हे पाण्डुनन्दन! ये एक पुरुषमें रत नहीं होती, हे प्रजानाथ! स्त्रियोंके बिषयमें मनुष्योंको स्नेह अथवा ईर्षा करनी उचित नहीं है। ऋतु कालके अनुरोधसे अप्रीतिपूर्व्वक इन्हें भोग करे। हे कौरवनन्दन! मनुष्य इसमें अन्यथा करनेसे निहत हुआ करता है। हे राजश्रेष्ठ! योग सब भांतिसे सब ठौर समादरणीय है। एकमात्र उस बिपुलने ही स्त्री की रचा की थी। हे नृप! तीनों लोकोंके बीच कोई भी स्त्रियोंकी रचा करनेमें समर्थ नहीं है।

४३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पितृलोक, देवता, अतिथि, स्वजन, गृह और सब धर्म्मोंका जो मूल है, आप मुझसे वही कहिये। हे पृथ्वीनाथ! यही सब धर्म्मोंके बीच अत्यन्त चिन्तनीय करके सम्मत है, कि कैसे वरको कन्या दान करे?

भीष्म बोले, स्वभाव चरित्र बिद्या योनि अर्थात् मातृकुल और पितृकुलकी शुद्धि तथा कर्म्मको भली भांति जानके साधु पुरुष गुणवान् वरको कन्यादान करें। उक्तगुणोंसे युक्त बिवाहके योग्य वरको बुलाकर धन दानादिसे सन्तुष्ट करके जो कन्यादान की जाती है, साधु ब्राह्मणोंका यही ब्राह्मधर्म्म है और शिष्टचत्रियोंका भी यही सनातन चात्रधर्म्म है। हे युधिष्ठिर! अपने अभिप्रायका परित्याग करके जिस वरको कन्या चाहती हो और जो वर कन्याको चाहता हो, उसहीको कन्या दान करनेको वेद जाननेवाले पुरुष गान्धर्व्व बिवाह कहा करते हैं। हे महाराज! बान्धवोंको लुभाके अथवा बहुतसे धनके सहारे मोल लेके जो बिवाह होता है, पण्डित लोग उसे आसुर बिवाह कहते हैं। हे तात! रोते हुए मनुष्योंको मारके तथा उनका सिर काटके रोती हुई कन्याको गृहसे जबर्दस्ती हरके जो बिवाह होता है, वह राचस बिवाह कहा जाता है। राचस बिवाहके अन्तर्गत पैशाच बिवाह है, इन पांच प्रकारके बिवाहोंमेंसे तीन धर्म्मसङ्गत हैं और दो धर्म्मबिरुद्ध हैं, अर्थात् कन्या हरण करके जो बिवाह होता है, वह और आसुर बिवाह किसी प्रकार भी न करना चाहिये। हे राजन्! ब्राह्म, चात्र और गान्धर्व्व, ये तीन प्रकारके बिवाह ही धर्म्मसंगत हैं, पृथक् अथवा मिश्रित रीतिसे ये तीन प्रकारके बिवाह ही करने योग्य हैं, इस बिषयमें सन्देह नहीं है। ब्राह्मणोंके लिये ब्राह्मण, चत्रिय और वैश्य जातीय तीन भार्य्या, चत्रियोंको चत्रिय तथा वैश्य जातीय दो भार्य्या और

वैश्यके लिये स्वजातीय भार्य्या होवे, इन सब स्त्रियोंसे जो सन्तान उत्पन्न हों वे सब सम्मानित होंगे। ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणी भार्य्या और चत्रियोंकी चत्रियापत्नी ज्येष्ठा कहाती है। रतिके लिये ब्राह्मणकी शूद्रा भार्य्या न होगी, ऐसा ही दूसरे लोग कहा करते हैं। शूद्रा स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न करना साधु पुरुषोंके बीच प्रशंसित नहीं है, यदि ब्राह्मण शूद्रा स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न करे, तो वह प्रायश्चित्त करनेके योग्य होता है। तीस वर्षका पुरुष अजात कुचोद्भव आदि लक्षणवाली दश वर्षकी कन्या और इक्कीस वर्षकी अवस्थावाला पुरुष सात वर्षकी कन्याको भार्य्यारूपसे ग्रहण करे। हे भरतश्रेष्ठ! जिस कन्याके भाई अथवा पिता न हो, उसे कदापि न व्याहे, क्यों कि वह कन्या अपने पिताके पुत्र-स्थानीय होसकती है। कन्या ऋतुमती होनेपर तीन वर्ष-तक उपेक्षा करे, चौथा वर्ष लगनेपर स्वयं स्वामी खोज लेवे। स्वयं पति खोज लेनेसे स्त्री सन्तान-रहित वा रतिविहीन नहीं होती। जो नारी इसमें अन्यथाचरण करती है, वह प्रजापतिके निकट निन्दनीय होती है। जो कन्या माताकी सपिण्ड और पिताकी सगोत्रा न हो, उसे ही व्याहे, मनुने इसे ही सनातन धर्म्म कहा है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कोई शुल्क दान करे, दूसरा मैंने दान किया, ऐसा वचन कहे, कोई जबर्दस्ती हरनेको कहे, कोई पुरुष धन दिखावे, और कोई पाणिग्रहीता हो, तब उनमेंसे वह कन्या किसकी भार्य्या होगी? हम तत्वजिज्ञासुओंके पक्षमें आप नेत्रस्वरूप हैं।

भीष्म बोले, मनुष्योंके हितजनक "यह इसकी भार्य्या है" इत्यादि व्यवस्थाजनित जो कुछ कर्म्म मन्त्र जाननेवाले पुरुषोंके द्वारा मन्त्रित दीख पड़ता है, उसे मिथ्या करनेसे पाप हुआ करता है। भार्य्या, पुत्र, ऋत्विक, आचार्य्य शिष्य और उपाध्याय मिथ्या कहनेपर प्रायश्चित्तके भागी होते हैं, दूसरे नहीं,—ऐसाही कहा गया है। अकाम मनुष्योंके सङ्ग सहवास करनेकी मनु प्रशंसा नहीं करते, मिथ्या धर्म्म प्रकाश करना अयश और अधर्म्मयुक्त है; एक पुरुषमें एकान्त दोष उत्पन्न नहीं होता। पाणिग्रहण विधिके अनुसार बन्धु जन जो कन्या दान करें, उसे हरनेमें दोष नहीं है। हे भारत! बन्धु जन धर्म्मके अनुसार जो कन्या प्रदान करें, अथवा जिसे बेंचें, बान्धवोंकी अनुज्ञा होनेपर उसके सम्बन्धमें मन्त्र और होम प्रयोग करे, तब वे सब मन्त्र सिद्ध होते हैं, बान्धवोंके द्वारा अदत्ता कन्याके सम्बन्धमें मन्त्र प्रयोग करनेसे वह किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। यद्यपि स्वजनोंका किया हुआ सम्प्रदान नियम गुरुतर है, परन्तु पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं कि बन्धुजनोंके सम्प्रदानके अनन्तर भार्य्या-पति दोनोंके लिये निर्ज्जनमें मन्त्रके द्वारा किया हुआ नियम अत्यन्त गुरुतर है। पति धर्म्मके शासन वशसे भार्य्याको प्राक्तन कर्म्मदत्ता अथवा ईश्वरकी दी हुई जानके ग्रहण करता है; वह दैवी और मानुषोवाणीकी मिथ्या समझके परित्याग करता है।

युधिष्ठिर बोले, यदि कन्याके लिये किसी पुरुषने शुल्क दान किया हो, फिर धर्म्म, काम, अर्थ और कुलशील आदिसे युक्त दूसरा वर यदि उस कन्याको ग्रहण करे, तो वह निन्दनीय होगा, अथवा वह विवाह असिद्ध होगा। शिष्टातिक्रम और बन्धु सम्मतिपूर्व्वक विक्रयातिक्रम दोनों और दोष उपस्थित होनेपर कर्त्ता किस श्रेष्ठ पक्षको कल्याणकारी समझके अवलम्बन करे? यही हम लोगोंको सब धर्म्मोंके बीच अत्यन्त विचारणीय है। हम तत्व-जिज्ञासा कर रहे हैं आप हमारे नेत्रस्वरूप होइये, इन सब विषयोंको वर्णन करिये, आपका वचन सुनके हम लोगोंकी तृप्तिकी सीमा नहीं होती है।

भीष्म बोले, शुल्क ग्रहण करनेसे ही विवाहकी सिद्धि होती है, कर्त्ता ऐसा जानके कुछ

शुल्क ग्रहण नहीं करता और साधु लोग शुल्क ग्रहण करके कदापि कन्या दान नहीं करते, इसलिये यादृच्छिक क्रयविक्रय व्यवहार कन्यापहरण दोषमें कारण नहीं होता। यदि वर अवस्थामें अधिक होता है, तो बान्धवगण शुल्क मांगते हैं। जो अनुकूल भावसे दान करता है वह कन्याको आभूषण देके बिवाह करनेको कहता है। जो कन्याको इस प्रकार दान करता है, वैसा बिवाह शुल्क ग्रहणपूर्व्वक बिक्रय नहीं होता। प्रतिग्रह करनेसे ही दान करना पड़ता है, यही सनातन धर्म्म है। मैं तुम्हें कन्या दान करूंगा, जो पहले ऐसा वचन कहे और जो पुरुष अवश्य दान करनेकी प्रतिज्ञा करता है, वे सब अनुक्त वचनके समान हैं, इसलिये जबतक पाणिग्रहण नहीं होता, तबतक कन्या और वर परस्पर प्रार्थना किया करते हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि जबतक कन्या प्रदान नहीं की जाती, तबतक उसके निमित्त सभी प्रार्थना कर सकते हैं, देवताओंने कन्याके सम्बन्धमें ऐसा ही बरदान किया है, अनिष्टपात्रको कन्या दान न करे, यह ऋषि वाक्य है। कन्या ही काम और अपत्यको मूल है, इसलिये जो पुरुष उत्तम दौहित्रकी इच्छा करता है, वह कन्याके निमित्त श्रेष्ठ पात्रको कन्या दान करे, मुझे ऐसा ही निश्चय है। चिरपरिचय वशसे क्रय बिक्रयके बहुतेरे दोषोंको देखकर मालूम करे, शुल्क जो कभी बिवाह सिद्धिके बिषयमें कारण नहीं था, उसे कहता हूं सुनो।

पहले जब मैं मगध, काशी और कौशल देशीय राजाओंको जीतके बिचित्रबीर्य्यके लिये दो कन्या हरण की थीं, उनमेंसे एकका पाणिग्रहण हुआ था, दूसरी पराक्रमसे निर्जित होके भी गृहीता नहीं हुई; क्यों कि मेरे चाचा कुरुवंशीय वाह्लिकने उसे बिदा करके दूसरी कन्याके संग बिवाह करनेके लिये कहा था। मैंने उनके बचनमें शङ्का करके दूसरे पक्षोंसे यह बिषय पूछा; पितृव्यके समीप धर्म्म जाननेके लिये मेरी अत्यन्त प्रबल इच्छा हुई थी; हे राजन्! अनन्तर आचार जाननेके लिये अभिलाषी होकर मैंने बार बार कहा, कि मैं यथार्थ रीतिसे आचार जाननेकी इच्छा करता हूं।

हे महाराज! जब मैंने ऐसा कहा, तब धार्म्मिक-श्रेष्ठ मेरे पितृव्य बाह्लिक बोले, यदि तुम्हारे मतमें शुल्कसे ही बिवाह सिद्ध हो, तो फिर पाणिग्रहणको क्या आवश्यकता है, जिस कन्याके लिये शुल्कदिया गया है, उसके निमित्त होमकी वस्तुओंको लानेका क्या प्रयोजन है? धर्म्म जाननेवाले पुरुष वाग्दानको कन्या दान बिषयमें प्रमाण नहीं कहते, जिसका शुल्क दानसे ही बिवाह सिद्ध होता हो, उसका पाणिग्रहण वैसा कार्य्यकारी नहीं है। ऐसा अभिप्राय है, कि दान बिषयमें उनके बचन प्रसिद्ध नहीं हैं और इसमें लोगोंको बिश्वास नहीं होता। शुल्कको जो लोग क्रयमूल्य समझते हैं, वे धर्म्मज्ञ नहीं हैं, वैसे पुरुषोंको कन्यादान करना उचित नहीं है और इस प्रकारकी कन्याको भी व्याहना अनुचित है। कदाचित भार्य्याको क्रय अथवा बिक्रय करना उचित नहीं है। जो लोग भार्य्याको दासीकी भांति क्रय बिक्रय करते हैं, उन पापबुद्धि मनुष्योंको उस ही भांति बिवाह निष्पत्ति हुआ करती है, परन्तु उसमें भार्य्यात्व सिद्ध नहीं होता। पहले समयमें लोगोंने यही बिषय सत्यवानसे पूछा था, कि जिस किसी कन्याके निमित्त किसी पुरुषने शुल्क प्रदान किया हो, उसके शरीर त्याग होनेपर दूसरा पुरुष पाणिग्रहण किया करता है, इसलिये इस बिषयमें हम लोगोंको धर्म्ममें सन्देह होता है। हे महाप्राज्ञ! आप प्राज्ञसम्मत हैं, इसलिये हम लोगोंका यह सन्देह दूर करिये, हम तत्व जिज्ञासा करते हैं आप हम लोगोंके निमित्त नेत्र स्वरूप होइये। उन सब लोगोंके ऐसा कहते रहने पर सत्यवान बोले, जिसे इच्छा

हो, उसी हो कन्यादान करे, इस विषयमें विचार करना उचित नहीं है ; जीवित शुल्कदाताको भी अनादर करके शिष्ट लोग इस ही प्रकार इच्छानुसार दान किया करते हैं इसलिये मरे हुएके विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं है। शुल्क-दाताके मरनेपर युगान्तरमें कन्या देवरको वरण करे, अथवा उस पाणिग्रहीताको कामनासे व्रत अवलम्बन करके तपस्याचरण करे। किसी किसी पुरुषके मतमें देवर प्रभृति अनुपभुक्त भ्रातृ भार्य्याको सुरतकार्य्यमें प्रवृत्त करे, दूसरे लोगोंके मतमें यह प्रवृत्ति मन्थरा अर्थात् यह ऐच्छिको प्रवृत्ति वैधी नहीं है। इस विषयमें जो लोक विवाद करते हैं, वे पूर्व्वोक्त रीतिसे निश्चय किया करते हैं, इसलिये पाणिग्रहणके पहले अथवा उसके बीच जो सब हरिद्रा-लेपन स्नान प्रभृति मङ्गल कार्य्य और मन्त्र पाठ आदि जिसमें निष्पन्न होते हैं, वैसा अवकाशकाल जिसमें रहता है, उसमें ही पूर्व्वोक्त नियमसङ्गत होते हैं और सङ्कल्पपूर्व्वक प्रदानकी हुई कन्याको हरने तथा उसके लिये मिथ्या वचन कहनेसे पाप होता है। सात पद चलनेके अनन्तर पाणिग्रहणके मन्त्रोंकी निष्पत्ति हुआ करती है, जल स्पर्श करके जिसे कन्या दान की जाती है, उस ही पाणिग्रहीताको भार्य्या हुआ करती है। वक्ष्यमाण रीतिसे कन्या सम्प्रदान करना योग्य है, पण्डित लोग इसे निश्चय ही जानते हैं, द्विजश्रेष्ठ अनुकूल स्ववंश और अनुरूप भ्रातृदत्ता कन्याको अग्निके निकट न्यायपूर्व्वक परिक्रमा देकर ग्रहण करे।

४४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यदि कन्याका शुल्कप्रद पति प्रोषित हो, तब उस विषयमें उसे कैसा व्यवहार करना योग्य है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, समृद्धिशाली अपुत्रक पिताकी प्रतिपालनीय कन्याके लिये जो शुल्क ग्रहीत हुआ था, यदि वह वरपक्षीय पुरुषोंको प्रत्यर्पित किया जाय, तो वह कन्या पिताकी ही प्रतिपाल्य रहेगी और यदि शुल्क प्रत्यर्पण न किया जाय, तो उसे शुल्कदाताकी मोल ली हुई होकर रहना होगा। उस शुल्कदाताके निमित्त जिस प्रकार होसके, सन्तानोत्पत्तिके लिये चेष्टा करे; इसलिये उस शुल्कदाताके अतिरिक्त और कोई भी उस कन्याके सङ्ग मन्त्र उच्चारण करके विवाह न करे।

सावित्रीने पिताकी आज्ञानुसार जिसे स्वयं वरण किया था। उसहीके सङ्ग विवाह किया, उसके वैसे कार्य्यको कोई प्रशंसा करते हैं, परन्तु धर्म्मज्ञ मनुष्य उस विषयका अनुमोदन नहीं करते, क्योंकि दूसरे साधु पुरुषोंने ऐसा आचरण नहीं किया है, साधुओंका आचार ही धर्म्मका गुरुतर लक्षण है। विदेहराज महाराज जनकके नाती सुक्रतुने इस प्रकरणमें ही वक्ष्यमाण वचन कहा है, कि दुष्टोंके आचरित पथमें किस प्रकार अनुवर्त्तन किया जा सकता है ? इस विषयमें साधुओंके निकट प्रश्न अथवा संशय करे। स्त्रियोंके अस्वाधीनता-धर्म्मको खण्डन करना आसुरधर्म्म है, पहलेके बूढ़ोंके विवाह-कार्य्यमें स्त्रियोंको स्वाधीनतापद्धति मैंने कदापि नहीं सुनी है। भार्य्या और पतिके अदृष्ट सम्बन्धरूपी धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म है, वह सर्व्वाङ्गसुन्दर न होनेपर सिद्ध नहीं होता, इसलिये वैसा सम्बन्ध उपस्थित न होनेपर केवल रतिके निमित्त कदापि दारपरिग्रह करना उचित नहीं है। उस राजाने यह भी कहा था, कि रति साधारण धर्म्म है। युधिष्ठिर बोले, जब पिताके निकट कन्या भी पुत्रके तुल्य है, तब किस प्रमाणके अनुसार अन्य पुरुष धन ग्रहण करते हैं ?

भीष्म बोले, जैसी आत्मा है, पुत्र भी वैसा ही है, पुत्री पुत्रके तुल्य है, इसलिये आत्मस्व-

रूपी पुत्रीके उपस्थित रहते किस प्रकार दूसरा पुरुष धन हरण कर सकता है? पुत्र रहे वा न रहे, माताका जो कुछ यौतुक धन रहता है, उसमें कन्याका अधिकार है, उसमें पुत्रोंका अंश नहीं है; अपुत्रक पुरुषके धनको लेनेके लिये दौहित्र ही अधिकारी है, क्योंकि दौहित्र ही अपने पिता और मातामहको पिण्डदान किया करता है, इसलिये धर्म्मानुसार पुत्र और दौहित्रमें कुछ विशेष नहीं है। पुत्र उत्पन्न होनेके पहले यदि पुत्री उत्पन्न हो, तो वह यदि पुत्रीकरण नियमके अनुसार पुत्रस्थानीय की जावे, तब यदि उसके अनन्तर पुत्र उत्पन्न हो, तो पितृधनको पांच हिस्सेमें बांटके तीन भाग पुत्र ले और दो भाग कन्या ग्रहण करे, दत्तक प्रभृति पुत्रोंसे निज तनसे उत्पन्न हुई कन्या श्रेष्ठ है, इसलिये पुत्रीकरण धर्म्ममें कुछ भी कारण नहीं दीख पड़ता। औरसके अतिरिक्त कोई पुत्रके वर्त्तमान रहते बेंची हुई कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र दायभागी न होगा। कन्याको बेंचके जो लोग आसुर बिवाह करते हैं, उनके असूयायुक्त अधर्म्मनिष्ठ और शठ प्रभृति बिषम बृत्तिवाले, पुत्र उत्पन्न होते हैं। धर्म्मशास्त्रके जाननेवाले धर्म्मपाशमें बंधे हुए इतिहासवेत्ता पण्डित लोग आसुर बिवाहकी निन्दामें यमकी कही हुई कथा वर्णन किया करते हैं। जो मनुष्य पुत्रको बेंचके धन लाभ करते हैं, अथवा जीविकाके लिये शुल्क ग्रहण करके कन्या प्रदान करते हैं, वे मूढ़ पुरुष कालसूत्र नामक घोर सातवें नरकके परिवर्त्ती निरयमें स्वेद, मूत्र और विष्ठा भोग किया करते हैं। हे राजन्! कोई कोई आर्ष बिवाहमें जो मिथुन शुल्क कहा करते हैं, वह भी मिथ्या बचन है; क्योंकि चाहे शुल्क थोड़ा हो वा अधिक हो, लेनेसे ही बेंचना सिद्ध होता है; यद्यपि किसी किसी पुरुषोंके द्वारा यह आचरित हुआ है, तोभी यह सनातन धर्म्म नहीं है। बलपूर्व्वक कन्या हरनेवाले, राक्षसोंकी भी लोकमें इस ही भांति प्रवृत्ति दीख पड़ती है। जबरदस्ती वशमें करके जो लोग क्वारीकन्या उपभोग करते हैं, वे पापाचारी मनुष्य अन्धतामस नरकमें शयन किया करते हैं। जब कि अन्य पशुओंका बेचना भी योग्य नहीं है, तब मनुष्य-सन्तानका बेचना कदापि धर्म्मसङ्गत नहीं हो सकता, कन्याको बेंचके अधर्म्ममूलक धनसे कुछ भी धर्म्म नहीं होता।

४५ अध्याय समाप्त।

—— ——

भीष्म बोले, पुराण जाननेवाले मनुष्य प्राचेतस दक्षके बचनके अनुसार कहते हैं, कि कन्यादानके समय उसके पक्षवाले जातीय पुरुष यदि कुछ भी धन न लेकर कन्याके लिये आभूषण मांगे, तो कन्याका बेचना नहीं कहा जाता, कन्याके विषयमें नृशंस व्यवहार न करनेसे ही उसका सत्कार होता है, पुत्रीको सभी वस्तु दान करना उचित है। अधिक कल्याणकी इच्छा करनेवाला पिता, भाई, श्वशुर और देवरवृन्द स्त्रियोंका सम्मान तथा भूषण दान करें। यदि स्त्री पुरुषसे प्रीति नहीं करती, तो उसे प्रमुदित भी नहीं कर सकती, अप्रमोद-निबन्धनसे पुरुषको प्रजनक शक्ति संकुचित होती है, इसहीसे सन्तति नहीं होती। हे जननाथ! स्त्रियें सदा सत्कार और लालन करने योग्य हैं, जिस गृहमें स्त्रियोंका सत्कार होता है, वहांपर देववृन्द अनुरक्त रहते हैं, और जिन गृहोंमें स्त्रियोंका आदर नहीं होता, वहांपर सब कार्य्य ही विफल होते हैं। जिस समय स्त्रियें शोक प्रकाश करती हैं, उस ही समय वह कुल बिनष्ट होता है, हे राजन्! जिस कुलको स्त्रियें अभिशाप देती हैं, वे सब गृह विच्छिन्न होते तथा श्रीहीन होके शोभा नहीं पाते और न उनकी बृद्धि ही होती है। स्वर्गमें

जानेकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको मनुने स्त्री दान की है, स्त्रियोंके तन ढांपनेका वस्त्र थोड़े ही परिश्रमसे छीना जाता है, इसको सुहृत् तथा अत्यंजिष्णु मनुष्य ईर्षायुक्त होकर कामना करते हैं, उग्रस्वभाववाले मनुष्य सुहृदता नहीं करते और कुछ भी नहीं समझते। हे मनुष्य-वन्द ! स्त्रियें सम्मानभाजन हैं, इसलिये उनका सम्मान करो। स्त्रीसे ही धर्म और रति भोग हुआ करता है, तुम्हारी परिचर्य्या तथा नमस्कार स्त्रियोंके वशमें होवे। देखिये, पुत्र उत्पन्न करने उत्पन्न हुए पुत्रोंको पालने और लोकयात्राकी प्रीतिके विषयमें स्त्री ही कारण है। इनके सम्मान करनेसे सब कार्य्य प्राप्त होंगे, विदेहराजकी दुहिताने इस स्त्री-धर्मके विषयमें श्लोक कहा है, कि स्त्रियोंके लिये कोई यज्ञ, क्रिया, श्राद्ध तथा उपवास नहीं है; स्त्रियोंके लिये निज पतिकी सेवा ही धर्म है, उसहीसे वे स्वर्गको जीतती हैं। बालकपनमें पिता कन्याकी रक्षा करता है, जवानीमें पति स्त्रीकी रक्षा किया करता है और बुढ़ापेमें पुत्रगण रक्षा करते हैं, इसलिये स्त्रियें कभी स्वाधीनता पानेके योग्य नहीं हैं। स्त्रियें श्रीस्वरूप हैं, ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले पुरुष उनका सम्मान करें। हे भारत! स्त्रियें पाली जाने तथा उत्तम रीतिसे रक्षित होनेपर लक्ष्मीस्वरूप होती हैं।

४६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्व शास्त्र विधानके जाननेवाले राजधर्मज्ञ श्रेष्ठ पितामह! आप अत्यन्त संशयच्छेता कहके पृथ्वीपर विख्यात् हैं, मुझे कुछ सन्देह है, उसे आप दूर करिये। हे राजन्! ऐसा संशय उपजनेपर हम लोग दूसरे किससे पूछेंगे? हे महाबाहो! धर्म-मार्गमें गमन करनेवाले मनुष्यका जो कुछ कर्त्तव्य हो, आपको वह सब वर्णन करना उचित है। हे पितामह! रतिकी कामनावाले ब्राह्मणके निमित्त ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा, ये चार प्रकारकी भार्य्या विहित हुई हैं। हे कुरुनन्दन! उन सबसे ही पुत्र उत्पन्न होनेसे उनमेंसे आनुपूर्व्विक क्रमसे कौन पैतृक-अंश पानेके योग्य होगा? हे पितामह! उनके बीच कौन पुत्र कितने परिमाणसे उस पिताका धन लेगा? शास्त्रके अनुसार उन लोगोंका जैसा हिस्सा है, उसे आप वर्णन करिये, मैं यही सुननेकी अभिलाष करता हूं।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनों वर्ण द्विजाति हैं, इन सबके लिये ब्राह्मणोंका धर्म विहित हुआ है। हे शत्रुतापन! वैषम्य अथवा लोभ तथा कामवशसे ब्राह्मणकी शूद्रा पत्नी होती है, शास्त्रके अनुसार वह नहीं होसकती। ब्राह्मण शूद्रा स्त्रीको निज शय्यापर सुलानेसे अधोगति पाता है और विधि दृष्ट कर्मके द्वारा प्रायश्चित्ताई हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! शूद्रा स्त्रीमें सन्तान उत्पन्न होनेपर ब्राह्मणको द्विगुण प्रायश्चित्त करना पड़ता है। हे भारत! जो जैसा अंश पावेगा, वह कहता हूं। लक्षणयुक्त गज, वृषभ, सवारी तथा दूसरे जो कुछ अत्यन्त उत्तम वस्तु रहेगी, ब्राह्मणीका पुत्र पितृधनमेंसे उस ही मुख्य हिस्सेको पावेगा। हे युधिष्ठिर! शेषमें जो कुछ ब्राह्मणस्व रहेगा, वह दश हिस्सेमें बटेगा, ब्राह्मणीका पुत्र उस पितृधनमेंसे चार भाग लेगा क्षत्रिया स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र भी निःसन्देह ब्राह्मण है, वह पुत्र माताकी विशिष्टताके अनुसार तीन हिस्सा पावेगा। हे युधिष्ठिर! तृतीय वर्णवाली वैश्या स्त्रीसे जो पुत्र ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न होता है, वह ब्राह्मस्वमेंसे दो भाग ग्रहण करेगा। ब्राह्मणके द्वारा जो पुत्र शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न होता है, उसे नित्य देय धन कहा जाता है अर्थात् उसे सब भांतिसे धन अदेय है।

हे भारत ! शूद्रा स्त्रीके पुत्रको एक अंश धन देना योग्य है। दश हिस्सेमें बटे हुए धनके विभाग क्रमसे इस ही प्रकार देना चाहिये और सवर्णा स्त्रीसे उत्पन्न हुए पुत्रोंमें समान हिस्सा देना योग्य है। बिना समन्त्रक संस्कार हुए शूद्रा स्त्रीके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न हुए पुत्रको अब्राह्मण समझा जाता है। ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्याके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न हुए सन्तान ब्राह्मण हुआ करते हैं।—चारवर्ण ही शास्त्र सिद्ध हैं, इनसे भिन्न पांच वर्ण नहीं हैं, शूद्राका पुत्र पितृ धनमेंसे दसवां हिस्सा पावेगा शूद्रापुत्रको पिता जो कुछ दे, वह उसे ही लेवे बिन दी हुई वस्तुको न ले सकेगा। हे भारत ! शूद्रापुत्रको अवश्य धन दान करना उचित है, अनृशंसता ही परम धर्म्म है, इस ही निमित्त उसे देना पड़ता है। अनृशंसता जिस स्थानमें अनुष्ठित होती है, वहांपर ही गुणकी हेतु हुआ करती है। हे भारत ! ब्राह्मण चाहे सपुत्र हो अथवा पुत्ररहित हो हो, शूद्रापुत्रको दशवें भागसे अधिक न देवे। ब्राह्मणके समीप त्रैवार्षिक धनसे जब अधिक धन इकट्ठा हो, तो उस ही धनसे यज्ञ करना होगा, यज्ञादि प्रयोजनके अतिरिक्त धनको वृथा व्यय करना योग्य नहीं है। अधिक वित्तवाला पुरुष भी स्त्रीको तीन सहस्रसे ज्यादा धन न देवे। पति भार्य्याको जो धन देता है, पत्नी यदि पतिकी उस धनको भोगने न दे, तो वह उसे भोग नहीं कर सकता, स्त्री पतिके धन केवल उपभोग करें, किसी भांति विनष्ट न कर सकेंगी। हे युधिष्ठिर ! स्त्रियोंके समीप पिताका दिया हुआ जो धन रहे, ब्राह्मणीका होनेपर उसे कन्या लेगी, क्योंकि जैसा पुत्र है, कन्या भी उस ही भांति है। हे कुरुनन्दन भरतश्रेष्ठ महाराज ! कन्यापुत्रके समान कही गई है और ऐसा ही धर्म्म पूरी रीतिसे निर्दिष्ट है, इसलिये इस धर्म्मको स्मरण करके धनको वृथा व्यय न करे।

युधिष्ठिर बोले, शूद्राके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रको यदि धन अदेय है, तो किस प्रकारकी विशेषतासे उसे दशवां हिस्सा दिया जाता है। ब्राह्मणी स्त्रीमें ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ पुत्र निःसन्देह ब्राह्मण होता है, क्षत्रिया और वैश्याके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न हुआ सन्तान भी वैसा ही है। हे नृपसत्तम ! इससे जब आपने इन तीनों वर्णोंको ब्राह्मण कहा है, तब वे किस लिये न्यून हिस्सा भोग करेंगे ?

भीष्म बोले, हे परन्तप ! लोकसमाजके बीच धर्म्म कामकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके आदरकी पात्र दारा है, इस ही एक मात्र नामसे भार्य्या नाम कहा जाता है; पहले कहे हुए नामसे यही अत्यन्त महान् विशेषता होती है, कि यदि ब्राह्मण पहले क्षत्रिया आदि तीन भार्य्याके साथ पाणिग्रहण करके पश्चात् ब्राह्मणीके सङ्ग विवाह करे, तब वह ब्राह्मणी कनिष्ठा होनेपर भी पितृ गौरवके कारण जेठी पूजनीय तथा गरीयसी भार्य्या होती है। पतिके स्नान प्रसाधन दन्तधावन अञ्जन और हव्यकव्य आदि जो कुछ धर्म्म कार्य्य गृहमें करना योग्य हो, ब्राह्मणीके घरमें उपस्थित रहते, क्षत्रिया प्रभृति दूसरी स्त्रियें उसे कदापि नहीं कर सकतीं। हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणीही ब्राह्मणके उन सब कार्य्योंको निबाहेगी, ब्राह्मणी ही पतिको अन्न पान वस्त्र आभूषण और माला आदि देगी, क्योंकि वह पतिकी गरीयसी भार्य्या है। हे कुरुनन्दन महाराज ! जो शास्त्र मनुके द्वारा वर्णित हुआ है, उसमें भी यही सनातन धर्म्म दीख पड़ता है। हे युधिष्ठिर ! यदि कोई इसमें स्वेच्छापूर्व्वक अन्यथाचरण करे, तो पहले कहे हुए ब्राह्मणक्षेत्रमें शूद्रसे उत्पन्न हुआ जैसा ब्राह्मण-चण्डाल होता है, कर्म्मवशसे वह भी वैसा ही हो जाता है।

हे राजन् ! क्षत्रियाका पुत्र ब्राह्मणीके पुत्रके समान है, परन्तु दोनोंमें वर्णगत विशेषता

रहती है, जगत्के बीच जातिमें चत्रिया ब्राह्मणोंके समान नहीं होसकती। हे राजसत्तम युधिष्ठिर! ब्राह्मणीका पुत्र पहला तथा जेठा होता है और वह पितृधनमेंसे अधिक अंश पानेका अधिकारी है, जैसे चत्रिया कभी ब्राह्मणीके समान नहीं होसकती, वैसे ही वैश्या भी कदापि चत्रियाके सदृश नहीं है। हे युधिष्ठिर! राज्य सम्पत्ति खजाना और सागर मेखला पृथिवी चत्रियोंके ही निमित्त विहित हुई दीख पड़ती है, क्यों कि चत्रिय निज धर्मके सहारे बहुत सी सम्पति प्राप्त करता है। हे राजन्! चत्रिय ही राज्यदण्ड धारण करता है, चत्रियके अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष रचा करनेमें समर्थ नहीं है। महाभाग ब्राह्मणवृन्द देवताओंके भी देवता हैं। हे राजन्! ऋषियोंके प्रणीत शाश्वत अव्यय धर्मकी आलोचना करके विधिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करनेमें प्रवृत्त रहे। डाकुओंसे धन लुटे जाने तथा स्त्री हरी जानेपर चत्रिय ही सब भांतिसे उसकी रचा किया करता है, राजा ही सब वर्णोंका त्राणकर्त्ता होता है; इसलिये वैश्याके पुत्रसे चत्रियाके पुत्रको श्रेष्ठताके विषयमें सन्देह नहीं है। हे युधिष्ठिर! पूर्व्वोक्त कारणसे ही चत्रियाका पुत्र पितृधनमेंसे वैश्यापुत्रसे अधिक हिस्सा लेगा।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने ब्राह्मणके दायविभागके नियम विधिपूर्वक कहे, दूसरे लोगोंके विषयमें उक्त नियम किस प्रकारका होगा।

भीष्म बोले, हे कुरुनन्दन! चत्रियके निमित्त चत्रिया और वैश्या, येही दो भार्य्या विहित हैं तीसरी शूद्रा भार्य्या शास्त्रके अनुसार सम्भव नहीं होती, तब केवल कामभोगके लिये हुआ करती है। हे प्रजानाथ युधिष्ठिर! चत्रियोंके दायविभागका यह नियम है, कि चत्रियस्व आठ हिस्सेमें विभक्त करना होगा, चत्रियाका पुत्र उस पितृ-धनमेंसे चार हिस्सा ग्रहण करे और पिताके रथ, हाथी, घोड़े आदि जो कुछ युद्धको उपयोगी वस्तु हों, उन्हें भी वही लेगा। वैश्याका पुत्र तीन भाग और शूद्राका पुत्र एक हिस्सा पावेगा, अन्यथा उसे अदत्त धन ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं है। हे कुरुनन्दन! वैश्य जातिके लिये एक ही भार्य्या विहित है, दूसरी शूद्रा भार्य्या शास्त्रके अनुसार नहीं होसकती, किन्तु काम क्रीड़ाके निमित्त हुआ करती है। हे भरतश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र! वैश्या अथवा शूद्रापत्नीमें वर्त्तमान वैश्यका समान नियम न होगा। हे प्रजानाथ भरतर्षभ! वैश्यस्वको पांच हिस्सेमें विभक्त करना होगा। वैश्या और शूद्रासन्तानके विषयमें जैसा हिस्सा मिलेगा, वह कहता हूं।

हे भारत! वैश्याका पुत्र पितृधनमेंसे चार हिस्सा लेगा और शूद्रासन्तानके लिये केवल पांचवां भाग कहा गया है। शूद्रापुत्र पिता-कादिया हुआ धन ले और यदि पिता उसे न दे तो वह उसे हरण न कर सकेगा, ब्राह्मण, चत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंके द्वारा उत्पन्न हुआ शूद्रापुत्र पितृधनका अधिकारी नहीं होता, तब पिता इच्छा करनेसे उसे केवल एक हिस्सा दे सकता है। शूद्रके लिये केवल सवर्णा भार्य्या हुआ करती है, किसी भांति दूसरी भार्य्या नहीं होती। उसके यदि सौ पुत्र भी हों, तथापि वे समान हिस्सा पावेंगे। समान वर्णवाली भार्य्याके गर्भसे उत्पन्न हुए सब पुत्र ही पितृधनके समभागी होंगे, किन्तु जेठे पुत्रकी प्रधानताके हेतु उसके लिये एक भाग पृथक् देना होगा, हे पार्थ! पहले स्वयम्भुके द्वारा यह विधि वर्णित हुई है। हे राजन्! सवर्णा भार्य्यासे उत्पन्न हुए पुत्रोंमें अन्य कुछ भी विशेष नहीं है, केवल विवाहकी विशिष्टता निबन्धनसे पहले पहलके पुत्रही श्रेष्ठ होते हैं, सवर्णा भार्य्यासे उत्पन्न हुए पुत्रोंके समान होने

पर भी जेठा पुत्र प्रधान हिस्सा लेगा, मभला मध्यम अंश और छोटा पुत्रन्यून हिस्सा पावेगा। इस ही प्रकार सब जातिमें ही सवर्णज सन्तानोंको श्रेष्ठता व्याप्त हुई है, महर्षि मरीचिके पुत्र कश्यपने ऐसा ही कहा है।

४७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोभ अथवा कामवशसे तथा सब वर्णोंके निश्चय न होनेपर अर्थात् प्रसिद्ध है, कि उत्तम वर्णवाली स्त्री नीचगामिनी होती है, इस ही कारण गूढ़ोत्पत्ति सम्भव निबन्धनसे वर्णका निश्चय नहीं होता, तब वर्णको न जाननेसे वर्ण सङ्करकी उत्पत्ति होती है। ऐसी ही विधिके अनुसार सङ्करवर्णमें उत्पन्न हुए पुरुषोंके लिये कौनसे धर्म्म और कर्म्म हैं? यह विषय आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, पहली समयमें प्रजापतिने यज्ञके निमित्त चारों वर्णोंके कर्म्म और केवल चारों वर्णोंको उत्पन्न किया था, तिसके बीच शूद्रके लिये साक्षात् सम्बन्धमें यज्ञकार्य्य नहीं है, सेवासे ही उसे सिद्धि प्राप्त हुआ करती है। ब्राह्मणोंके लिये चार भार्य्या हैं, उनमेंसे ब्राह्मणी पत्नीसे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे ब्राह्मण हैं और क्षत्रिया भार्य्यासे जो पुत्र होते हैं, वे उनसे किञ्चित हीन हैं; क्रमसे मातृजातीय वैश्याके पुत्र पहले कहे हुए दोनों पत्नियोंके पुत्रोंसे हीन कहे गये हैं। ब्राह्मणके द्वारा शूद्राके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शव अर्थात् शवस्थान श्मशान तुल्य शूद्रसे परे अर्थात् श्रेष्ठ है, इस ही निमित्त पण्डित लोग शूद्रापुत्रको पराशव कहा करते हैं। वह पुत्र अपने कुलका सेवक होवे और सदा अपने चरित्रको परित्याग न करे। वह सब उपायका निश्चय करके अपने कुलकी सामग्रियोंका पूर्ण रीतिसे उद्धार करे, पराशव ब्राह्मणसे अवस्थामें जेठा होनेपर भी ब्राह्मणके निकट कनिष्ठकी भांति व्यवहार करे और सेवाके सहित दानपरायण होवे। क्षत्रियकी तीनों भार्य्याके बीच क्षत्रिया और वैश्यासे क्षत्रिय पुत्र उत्पन्न होता है और यह स्मरण है, कि शूद्रा पत्नीसे हीनवर्ण उग्रनाम शूद्रजाति उत्पन्न होती है। वैश्यके लिये दो भार्य्या हैं, दोनों स्त्रियोंसे ही वैश्यपुत्र जन्मता है। शूद्रके लिये केवल शूद्राभार्य्या है, उससे शूद्र जातीय पुत्र उत्पन्न होता है।

निज पितासे अवशिष्ट अधम शूद्र यदि ब्राह्मणी गमन करे, तो चारोंवर्णोंसे बहिर्भूत चाण्डाल आदि बाह्यवर्ण उत्पन्न किया करता है। क्षत्रियके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे चारोंवेदोंसे पृथक् राजाओंकी स्तुति करनेवाला सूत जातीय पुत्र उत्पन्न होता है। वैश्य ब्राह्मणीके गर्भसे अन्तःपुरके रक्षा-कार्य्य करनेवाले संस्कार रहित वैदेह जातीय सन्तान उत्पन्न किया करता है। शूद्रके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे अत्यन्त उग्रस्वभाव बधाई चार प्रभृतिके सिरको काटना प्रभृति कार्य्योंको करनेवाला और ग्रामके बाहिरी भागमें निवास करनेवाला चाण्डाल सन्तान उत्पन्न होता है, ये प्रतिलोम जात सब जातियें कुलपांसन हैं। हे मतिमान् विभु! येही वर्णसङ्कर जाति हैं। वैश्यके द्वारा क्षत्रिया स्त्रीसे वाक्यजीवी बन्दी मागध जातीय सन्तान जन्मता है। शूद्रके द्वारा क्षत्रियामें व्यतिक्रम होनेपर मत्स्यघाती निषाद सन्तान उत्पन्न होता है, वैश्यासे ग्राम्यधर्म्म विशिष्ट सन्तान जन्मता है, उसे अयोगव कहा जाता है, वह स्वधनजीवी तथा ब्राह्मणोंके अप्रतिग्राह्य है। अम्बष्ट, पाराशव, उग्रसूत, वैदेहक, चाण्डाल, मागध, निषाद और अयोगव, ये लोग स्वयोनि और अनन्तर योनि अर्थात् व्यवहित नीच योनिमें समवर्ण तथा मातृजातीय सन्तान उत्पन्न करते हैं। चारोंवर्णोंके बीच ब्राह्मणी

आदि दो भार्य्यामें सजातीय सन्तान उत्पन्न होती है, स्वजातिके अनन्तर प्रधानताके अनुसार बाह्य वर्णोंकी उत्पत्ति हुआ करती है, वे भी स्वयोनिसे सदृश वर्णवाले सन्तान उत्पन्न करते हैं और परस्परमें अन्य स्त्रियोंसे निन्दनीय सन्तानोंका जन्म हुआ करता है। जैसे शूद्रके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे अत्यन्त नीचवर्ण चाण्डाल उत्पन्न होता है, वैसे ही चारोंवर्णोंसे पृथक् हीन वर्णोंसे अत्यन्त नीचवर्णोंकी उत्पत्ति हुआ करती है। हीन वर्णोंसे प्रतिलोमजात वर्णोंकी वृद्धि होती है। नीच वर्णसे दास आदि पन्द्रह निकृष्ट वर्ण उत्पन्न हुआ करते हैं। अगम्यागमन निबन्धनसे वर्ण सङ्करोंकी उत्पत्ति होती है। चारों वर्णोंसे पृथक् सब वर्णोंके बीच सैरिन्ध्री और मागध जातिसे राजाओंके प्रसाधन कार्य्यज्ञ तथा दिव्य अङ्गराग घर्षण और स्तुति आदिसे सन्तुष्ट करनेवाला अदास वा दास जीवन जाति उत्पन्न होती है। मागध विशेषसे सैरन्ध्री योनिमें वागुरावन्धजीवी अयोगव जातिकी उत्पत्ति होती है। मागधीमें वैदेहके द्वारा मद्यकर मयेरक नामकी सन्तान उत्पन्न हुआ करती है। निषाद जातिसे मजगुर अर्थात् मदगु नाम मत्स्योपजीवी नौकोपजीवी दास सन्तान उत्पन्न होती है और चाण्डाल स्वपाक नामसे विख्यात मृतप अर्थात् श्मशानाधिकारी सन्तान उत्पन्न किया करता है। मागधीसे वागुरोपजीवीचार प्रकारके क्रूर पुत्र उत्पन्न होते हैं, उनका कार्य्य मांस बेचना है। और मांस संस्कारवशसे उनका मांस तथा स्वादुकर नाम हुआ है। अन्य दो चौद्र और सौगन्ध नामसे वर्णित हुए हैं, इसलिये मागध जातिके निमित्त चार प्रकारकी वृत्ति निर्दिष्ट हुई है। अयोगवीसे पापी वैदेहके द्वारा मायोपजीवी, क्रूर निषादके द्वारा गधेके सवारी पर चलनेवाले मद्रनाभ और चाण्डालके द्वारा गज घोड़े तथा हाथियोंके मांस खानेवाली पुक्कश जाति उत्पन्न होती है, यह जाति मृतकका वस्त्र पहिरती और टूटे पात्रमें भोजन किया करती है, अयोगवीसे तीन नीच वर्ण उत्पन्न होते हैं। निषादीसे वैदेहके द्वारा चुद्र, अन्ध और जङ्गली पशुओंके मांससे जीविका निवाहनेवाले कौमार नामक चर्म्मकार, ये तीन प्रकारके पुत्र उत्पन्न होते हैं, ये लोग ग्रामसे बाहिरी हिस्सेमें निवास किया करते हैं। निषादीके गर्भसे चर्म्मकारके द्वारा कारावर और चाण्डालसे वेणुव्यवहारोपजीवी पाण्डुसौपाकजाति उत्पन्न होती है। वैदेहीके गर्भसे निषादके द्वारा आहिण्डक नाम पुत्र उत्पन्न होता है। चाण्डालके द्वारा सौपाकीमें चाण्डाल सदृश व्यवहारयुक्त पुत्र उत्पन्न हुआ करता है, निषादीके गर्भसे चाण्डालके द्वारा बाह्यवर्णोंसे पृथक् श्मशानवासी अन्तेवसायी सन्तान उत्पन्न होती है। माता पिताके रद-बदलसे येही सब सङ्कर जाति उत्पन्न होती हैं। ये चाहे छिपी रहें अथवा प्रकाश भावसेही रहें, इन्हें इनके स्वकर्म्मके सहारे जाना जाता है। शास्त्रमें ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके धर्म्म कहे गये हैं, अन्य धर्म्म हीनजाति भेदके बीच किसीके धर्म्मका नियम अथवा विधि नहीं है। ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंसे छः अनुलोमजात और छः विलोमजात हुए हैं। इन बारह प्रकारके संकीर्ण वर्णोंसे छाछठ अनुलोम और छाछठ प्रतिलोम हुए हैं; इसके अतिरिक्त एक सौ बत्तीस वर्णसङ्कर जाति हुई हैं, फिर उनके अनुलोम और प्रतिलोमकी गिनती करनेसे अनन्त भेद होजाते हैं, इसलिये इनमें ही प्रागुप्त पन्द्रह भेदके बीच अन्तर्भाव हुआ करता है, इस ही लिये सबकी संख्या नहीं कही गई। यदृच्छाक्रम अर्थात् जातिका नियम न रहनेपर मिथुनीभावसे प्राप्त यज्ञ तथा साधुओंसे पृथक् बाह्य सब वर्णसङ्कर जातियें स्वेच्छानुरूप कर्म्मके अनुसार जीविका और जाति विशेषको प्राप्त हुआ

करती हैं। ये चतुष्पथ, श्मशान, पर्व्वत और वृक्षोंके निकट सदा लोहमयो काली आभूषणोंको पहरकर निज कर्म्मोंसे जीविका निर्व्वाह करती हुई सबको जानकारीमें वास करें, आभूषण और गृहके योग्य सब सामग्री तैयार करती रहें; वे सब गऊ और ब्राह्मणोंकी निःसन्देह सहायता करेंगी। अनृशंसता, दया, सत्यवचन, क्षमा और निज शरीरसे विपद्में पड़े हुए लोगोंको उबारना बाह्य वर्णोंकी सिद्धिका कारण है। हे पुरुषश्रेष्ठ! इस विषयमें मुझे सन्देह नहीं है। बुद्धिमान् मनुष्य उपदेशके अनुसार कही हुई होनजातिको विचारके पुत्र उत्पन्न करे, क्यों कि जैसे जलमें तैरनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको भंवर अवसन्न करती है, वैसे ही अत्यन्त होनयोनिमें उत्पन्न हुआ पुत्र वंशको नष्ट किया करता है इस लोकमें स्त्रियें विद्वान अथवा अविद्वान पुरुषोंको काम क्रोधके वशमें करके अति ही कुपथमें ले जाती हैं। स्त्रियोंका स्वभाव ही दोषकी खान है, इसलिये विपश्चित पुरुष स्त्रियोंमें अधिक आसक्त नहीं होते।

युधिष्ठिर बोले, पापयोनिमें उत्पन्न हुए पुरुषको विशेष रीतिसे जानके श्रेष्ठ गृहमें जन्मनेसे आर्य्यरूपी तथा उत्पत्तिवशसे अनार्य्य पुरुषको हम किस प्रकार जाननेमें समर्थ होंगे।

भीष्म बोले, अनार्य्योंके पृथक् पृथक् भाव तथा चेष्टायुक्त मनुष्योंको सङ्करयोनिज जानना चाहिये और सज्जनोंके आचरित कर्म्मके सहारे योनि-शुद्धता जाने। इस लोकमें अनार्य्यता, अनाचार, क्रूरता और निष्क्रियात्मता दूषित योनिमें उत्पन्न हुए पुरुषको प्रकाशित कर देती है। नीचजाति पितृस्वभाव अथवा माताके चरित्र तथा पिता माता दोनोंके ही स्वभावको प्राप्त होता है, वह कदापि निज प्रकृतिको गुप्त नहीं रख सकता। जैसे तिर्य्यग्‌योनिमें उत्पन्न हुए व्याघ्र आदि विचित्र वर्णके सहित माता पिताके रूपसदृश होके जन्मते हैं, वैसे ही पुरुष निज योनिको प्राप्त होता है। वंशस्रोतके डगमगानेपर जिसकी योनि सङ्कर होती है, वह मनुष्य जिस पुरुषके औरससे उत्पन्न होता है, उसके थोड़े अथवा अधिक चरित्र अवश्य ही उसमें दीख पड़ते हैं। आर्य्यरूपसे कृत्रिम पथमें विचरनेवाले पुरुषके उत्तम वा निकृष्ट वर्णके निश्चय विषयमें उसके स्वभाव ही उसे प्रकाश किया करते हैं। जैसे सुवर्ण कठिन होनेपर भी कार्य्यके समय कोमल होता है और दुर्व्वर्ण अर्थात् रूपा जैसे सदा कोमल रहके भी कार्य्यके समय कठोर हो जाता है, सुजात और कुजात पुरुषोंके चरित्र भी वैसे ही हैं। विविध कर्म्मोंमें रत अनेक प्रकारके चरित्र जीवोंके चरित्र उपचरित व्यवहारको परित्याग करके अन्यथा रूपसे निवास करता है। सङ्करवर्णोंके चरित्र शास्त्रीय बुद्धिके सहारे आकृष्ट नहीं होते, बीजगुणकी प्रबलताके कारण कालभेदसे बुद्धिवृत्तिकी प्रधानता होनेपर भी शरीरान्तक ज्येष्ठता, मध्यता और अवरत्वके अनुसार जो तुल्य होता है, वही आनन्दित हुआ करता है, अन्य स्वत्व उत्पन्न होते ही शरत्कालके बादलकी भांति लीन होजाते हैं। वर्णज्येष्ठ पुरुष यदि सदाचारसे रहित हो, तो उसका सम्मान करना योग्य नहीं और शूद्र यदि सदाचारसे युक्त तथा धर्म्मज्ञ हो, तो उसका सम्मान करना चाहिये। मनुष्य शुभाशुभ कर्म्म सुशीलता सच्चरित्र और कुलके द्वारा अपनेको प्रकाशित करता है, कुल नष्ट होनेपर पुरुष निज कर्म्मके सहारे फिर शीघ्र ही उसका उद्धार किया करता है। इन सब सङ्कीर्ण और इतर योनियोंके बीच जिससे सन्तान उत्पन्न करना योग्य न हो, पण्डित पुरुष वैसी स्त्रीको परित्याग करें।

४८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतकुल श्रेष्ठ! आप सब वर्णोंके पृथक् पृथक् विषय वर्णन करिये। कैसी पत्नीसे कैसे पुत्र होंगे। वे सब पुत्र किसके तथा क्या कहे जांयगे? हे राजन्! पुत्र विषयमें विविध प्रवाद सुना जाता है, इसहीसे इस विषयमें हम मुग्ध होते हैं, इसलिये आप ही हमारे सन्देहको छुड़ाने योग्य हैं।

भीष्म बोले, आत्मा ही पुत्र रूपसे कहा गया है, उसके बीच अनन्तरज (औरस) निज क्षेत्रमें दूसरेको वीर्य्य डालनेके लिये नियुक्त करने पर उससे जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे निरुक्तज जानो और अनिरुक्त अर्थात् नियुक्त न होने पर भी कोई यदि चपलताईसे दूसरेके क्षेत्रमें वीर्य्य डाले, तो उससे जो सन्तान उत्पन्न हो, उसका नाम प्रसृतज है। निज भार्य्यामें पतित पुरुषके द्वारा उत्पन्न हुआ पुत्र, दत्तक, मोल लिया हुआ और अध्यूढ़ अर्थात् जिसकी माता गर्भवती होनेपर व्याही गई थी, वह और नीच कहे हुए छः प्रकारके अपध्वंशजकानीन अर्थात् विवाहके पहिले कन्याके गर्भसे उत्पन्न सन्तान तथा छः प्रकारके अपसद,—येही बीस प्रकारकी सन्तान कही जाती हैं। हे भारत! इसलिये इन्हें विशेषरीतिसे मालूम करो।

युधिष्ठिर बोले, छःप्रकारके अपध्वंसज कौन हैं और छः प्रकारके अपसद ही आपको किनके होते हैं। कहना उचित है, मेरे समीप इस विषयको यथार्थ रीतिसे व्याख्या करिये।

भीष्म बोले, हे भारत युधिष्ठिर! ब्राह्मणसे अन्य तीन वर्णोंमें अनुलोमजात जो तीन प्रकारकी सन्तान होती हैं, क्षत्रियसे अन्य दो वर्णोंमें अनुलोमजात दो प्रकारकी सन्तान हुआ करती हैं और वैश्यसे दूसरे वर्णमें जो एक प्रकारकी सन्तान जन्मती हैं, इन छहोंको अपध्वंसज जानो अब अपसदका विषय सुनो। शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुई सन्तान चाण्डाल, क्षत्रियामें व्रात्य अर्थात् संस्कार रहित और वैश्यामें वैद्य, ये तीन प्रकारके अपसद जाने जाते हैं, फिर वैश्यके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे मागध तथा क्षत्रियासे नामक ये दो, सन्तान दीख पड़ती हैं, और क्षत्रियके द्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे केवल अकेला सूत जातीय सन्तान दीखता है, इसलिये येही छः प्रकारको सन्तान अपसद नामसे वर्णित हुए हैं। हे नरनाथ! इन्हें सन्तान मिथ्या करने अर्थात् ये सन्तान नहीं हैं, ऐसा कोई भी नहीं कह सकता।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! किसी किसी सन्तानको क्षेत्रज और किसी किसीको शुक्रज कहते हैं, ये सन्तानत्व रूपसे तुल्य होनेपर भी किसके कहाते हैं, इसे ही आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, रेतज अर्थात् औरस और बीजके लिये परित्यक्त पत्नीसे जो सन्तान होती है, वह क्षेत्रज है, औरस तथा क्षेत्रज सन्तान तुल्य हैं, और नियम भङ्ग करके गर्भवतीको व्याहने पर उससे जो सन्तान होती है, उसे अध्यूढ़ कहा जाता है, मेरे समीप इस विषयको सुनो।

युधिष्ठिर बोले, हम औरस सन्तानको ही सन्तान कहके जानते हैं, परन्तु क्षेत्रज सन्तानके विषयमें सन्तानत्व किस प्रकार सिद्ध होता है, औरसमयकी भङ्ग करके अध्यूढ़ किस प्रकार सन्तान हो सकता है? मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, जो पुरुष आत्मज सन्तान उत्पन्न करके लोकापवादवशसे उसे परित्याग करता है, उसमें वीर्य्य कारण नहीं है, उस पुत्रका क्षेत्र स्वामी अधिकारी होता है। हे नरनाथ! पुत्रकी इच्छा करनेवाला पुरुष पुत्रके निमित्त जिस गर्भवती कन्याको ग्रहण करता है, उसके गर्भसे जो पुत्र होता है, वह परिणीताका क्षेत्रज कहके माना जाता है, वीर्य्य डालनेवालेका न कहा जावेगा। हे भरतश्रेष्ठ! पराये क्षेत्रमें उत्पन्न पुत्र अमुकके सदृश कहलाके उसहीके

रूप अनुसार जाना जाता है, अपनेको छिपाया नहीं जा सकता, वह प्रत्यक्ष ही मालूम हुआ करता है, इसलिये अध्यूढ़ पुत्र अप्रकाशित नहीं रहता, परिणेताको पुत्रको इच्छा न हो, तो अध्यूढ़ पुत्र वीर्य्य डालनेवालेका ही हुआ करता है। हे भारत! शुक्र और क्षेत्र इन दोनोंमें जब पुत्रका प्रमाण नहीं मालूम होता, तब किसी स्थलमें संग्रहवशसे कृतक पुत्र कहा जाता है।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जब शुक्र और क्षेत्रका परिमाण नहीं मालूम होता, तब संग्रहवशसे कृतक पुत्र जाना जाता है, वह कैसा है?

भीष्म बोले, माता-पिताके द्वारा जो पुत्र मार्गमें परित्यक्त होता है, उसे ही कृतक पुत्र जानना चाहिये। उसके पितामाता ऐसा न जानें कि वह कृत्रिम हुआ है। जिसका कोई स्वामी न हो, उसका जो मालिक बने, तथा जिस वर्णका मनुष्य उसे प्रतिपालन करे, वह उस ही प्रतिपालकके वर्णको प्राप्त होगा।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो पुरुष पितामातासे परित्यक्त हुआ हो, उसका किसके द्वारा किस प्रकार संस्कार होगा और वह किसका पुत्र कहावेगा, किस भांतिसे उसे कन्या दान की जावेगी? आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये

भीष्म बोले, पितामातासे त्यागे जानेपर अस्वामिक पुरुष जब स्वामीके वर्णको प्राप्त होता है, तब स्वामीकी भांति उसका संस्कार करना योग्य है। हे नाशरहित युधिष्ठिर! जब उसका दूसरा वर्ण निश्चय होवे, तब स्वामी उस ही वर्ण और गोत्रके अनुसार उसका संस्कार करे तथा उस ही वर्णके योग्य कन्या प्रदान करे। संस्कारकी सामर्थ्य अनुसार वर्ण हुआ करता है, भिन्न वर्ण तथा भिन्न गोत्र होनेपर भी संस्कार कर्त्ताके वर्ण और गोत्रको प्राप्त होता है। संस्कार करनेके निमित्त वर्ण और गोत्रका प्रयोजन हुआ करता है। मातृवर्णका निश्चय होनेपर कानीन और अध्यूढ़ पुत्रको निकृष्ट जाने। यह निश्चय है, कि अपने पुत्रकी भांति उनका भी संस्कार करना चाहिये। क्षेत्रज, अपसद अथवा जो अध्यूढ़ पुत्र हों ब्राह्मण आदिको चाहिये अपने समान उनका संस्कार करें। धर्मशास्त्रोंमें सब वर्णोंका ऐसा ही निश्चय दीख पड़ता है। मैंने यह समस्त विषय तुमसे कहा, अब किस विषयके सुननेकी इच्छा करते हो?

४६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दूसरेकी पीड़ा देखके कैसा स्नेह करना चाहिये तथा दूसरोंके सङ्गमें किस भांति अनृशंसताका अनुष्ठान करना योग्य है और गौवोंका कैसा माहात्म्य है, इस विषयको आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाद्युति! बहुत अच्छा, मैं तुम्हारे समीप नहुष राजा और च्यवन महर्षिके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहास कहता हूं। हे भरतश्रेष्ठ! पहले समयमें भृगुवंशमें उत्पन्न हुए महाव्रती च्यवन महर्षिने जलमें वास करना आरम्भ किया, वह अभिमान क्रोध, हर्ष और शोकको नष्ट करके बारह वर्षतक मौनावलम्बी होकर जलवास व्रतधारी हुए थे। सर्व्वशक्तिमान चन्द्रमाकी भांति सब जलचर जीवोंके विषयमें परम पवित्र विश्वास स्थापित करते हुए स्थाणुभूत और पवित्र होके देवताओंको प्रणाम करनेके अनन्तर गङ्गा और यमुनाके बीच जलके भीतर प्रवेश किया था। गङ्गा-यमुनाके वायुसदृश वेगवान अत्यन्त भयङ्कर शब्दके सहित वेगको सिरपर धारण किया था। गङ्गा-यमुना प्रभृति सब नदियें और तालाव ऋषिकी प्रदक्षिणा करते थे, कदापि उन्हें पीड़ित नहीं

करते थे, महामुनि काष्ठरूपी होके जलके बीच ही रहते थे। हे भरतर्षभ! अनन्तर वह धीमान मुनि वहां बैठके स्थित रहते थे और वे जलवासी जीवोंके प्रीतिपात्र हुए थे। उस समय सब जलचर प्रसन्नचित्त होकर उनके ओठको सूंघते थे। उनके उस जलमें निवास करते रहनेपर बहुत समय बीत गया। हे महातेजस्वी! अनन्तर किसी समयमें किसी देशके मछुवाहे हाथमें जाल लेकर उस स्थानमें गये। मछलियोंके धरनेका निश्चय करके बलवान शूर जलमें भ्रमण करनेमें अपरांमुख बड़े शरीरवाले निषादोंने वहां जाल फैलानेका निश्चय किया। हे भरतसत्तम प्रजानाथ! वे उस ही स्थानमें मछलियोंसे परिपूरित जल पाके लगातार जाल फैलाने लगे। अनन्तर उन मछलियोंके अभिलाषी मल्लाहोंने अनेक प्रकारसे उपाय रचके जालके सहारे गङ्गा और यमुनाके जलको रोका, उन लोगोंने उन स्थानमें जो जाल छोड़ा था, वह अत्यन्त दृढ़ नये सूतोंसे बना हुआ लम्बा और चौड़ा था। अनन्तर वे लोग जलमें उतरकर महत् और बलवत् जालको खींचने लगे। वे सब निर्भय प्रसन्न और परस्परमें वशवर्त्ती होकर मछलियों तथा अन्य जलचरोंको बांधने लगे। हे महाराज! उन लोगोंने यदृच्छाक्रमसे मछलियोंसे घिरे हुए भृगुनन्दन च्यवन मुनिको जालके सहारे आकर्षण किया। उस हरिश्मश्रु जटाधारी अङ्गमें नदीके सिवार लिपटे तथा शङ्ख नाम जलजन्तुओंके नख लिपटे हुए शरीरसे युक्त वेद जाननेवाले मुनिको जालके द्वारा खिंचे हुए देखके वे सब हाथ जोड़कर सिर नीचा करके पृथ्वीपर गिरे। जालके द्वारा खिंचे जानेसे शोक तथा भयसे सब मछलियें स्थल स्पर्श करते ही विपद्ग्रस्त हुईं। मुनि उस समय उन मछलियोंको महत् पीड़ा देखकर बार बार लम्बी सांस छोड़ते हुए अत्यन्त कृपायुक्त हुए।

निषादोंने कहा, हे महामुनि! हम लोगोंने बिना जाने जो पाप किया है, उस विषयमें आप क्षमा कीजिये। हम लोग आपका कौन सा प्रियकार्य्य करें, उसके लिये हमें आज्ञा करिये मछलियोंके बीचमें च्यवन मुनि मल्लाहोंका ऐसा वचन सुनके बोले, इस समय मेरी जो महत् अभिलाषा है, उसे तुम लोग सावधान होकर सुनो। मैं मछलियोंके सहित प्राणत्याग वा इनके सङ्ग अपनेको बेचूंगा, जलके बीच एकत्र सहवासके कारण इन्हें परित्याग न कर सकूंगा, जब मुनिने ऐसा कहा, तब निषादोंने भयसे कांपते तथा तन क्षीण होके नहुष राजाके निकट जाके समस्त वृत्तान्त कह सुनाया।

५० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर राजा नहुष च्यवन मुनिको वैसी अवस्थामें सुनके मन्त्री और पुरोहितके सहित शीघ्र ही वहां गये। राजाने यथा रीतिसे शरीर शुद्धि करके हाथ जोड़कर और सिरसे प्रणाम करके च्यवन मुनिके निकट अपना नाम कहा। हे महाराज! राजाका पुरोहित उस सत्यव्रती देवसदृश महात्माको पूजा करनेमें प्रवृत्त हुआ।

नहुष बोले, हे द्विजश्रेष्ठ! कहिये मैं आपका कौनसा प्रिय कार्य्य करूं? हे भगवन्! यदि कर्त्तव्य कार्य्य अत्यन्त दुष्कर भी होगा, तौभी मैं उसे सिद्ध करनेमें समर्थ हूं।

च्यवन बोले, मत्स्यजीवी मल्लाहवृन्द बहुत थक गये हैं, इसलिये इन लोगोंको मछलियोंके मूल्यके सहित मेरा भी मूल्य दो।

नहुष बोले, हे पुरोहित! भगवान भृगुनन्दनने जिस प्रकार कहा, उन्हें मोल लेनेके लिये निषादोंको एक सहस्र मुद्रा दो।

च्यवन बोले, हे महाराज! मैं सहस्र मुद्रा मूल्यके योग्य नहीं हूं, भला तुमही क्या विचार

करते हो? अपनी बुद्धिके सहारे निश्चय करके मेरा उपयुक्त मूल्य दो।

नहुष बोले, हे विप्र! निषादोंको एक लाख मुद्रा दो। हे भगवन्! यही मूल्य हुआ न? अथवा आप क्या समझते हैं?

च्यवन बोले, हे सत्तम! मैं एक लक्ष मुद्राके मोलमें बिकने योग्य नहीं हूं, मन्त्रियोंके साथ बिचार करके मेरा उपयुक्त मूल्य दीजिये।

नहुष बोले, हे पुरोहित! निषादोंको एक करोड़ मुद्रा दो, यदि यह भी मूल्य न होता हो, तो इससे भी अधिक मूल्य प्रदान करो।

च्यवन बोले, हे महातेजस्वी महाराज! करोड़ अथवा उससे अधिक धनके भी मैं उपयुक्त नहीं हूं, ब्राह्मणोंके सङ्ग बिचार करके मेरे सदृश मूल्य दो।

नहुष बोले, निषादोंको अर्द्ध राज्य अथवा समग्र राज्य दे दो, मैं यही मूल्य समझता हूं, हे द्विजवर! आपके बिचारमें क्या आता है?

च्यवन बोले, हे महाराज! आधा अथवा सारा राज्य मेरे उपयुक्त नहीं है, ऋषियोंके सङ्ग बिचार करके मेरे सदृश मूल्य प्रदान करो।

भीष्म बोले, वह नहुष राजा च्यवन महर्षिका वचन सुनके दुःखित होकर उस समय मन्त्री और पुरोहितके सहित चिन्ता करने लगा, उस समय गवीके गर्भसे उत्पन्न फल मूल भोजन करनेवाले अन्य एक बनबासी मुनि नहुष राजाके निकट आया, उस द्विजसत्तमने राजा नहुषसे कहा, आप जिस प्रकार तुष्ट होंगे, मैं उसही भावसे शीघ्रही इन्हें प्रसन्न करूंगा। मैं स्वेच्छापूर्व्वक कभी मिथ्या वचन नहीं कहता दूसरेको प्रवर्त्तनामें उसे क्यों कहूंगा, शङ्कारहित होके उस विषयको तुम्हें प्रतिपालन करना योग्य है।

नहुष बोले, हे भगवन्! आप कहिये महर्षि भृगुनन्दनके सदृश कितना मूल्य होगा? मुझे और मेरे राज्य तथा वंशका परित्राण करिये। भगवान भार्गव क्रुद्ध होनेपर तीनों लोकोंको नष्ट कर सकते हैं मैं केवल बाहुबलसे युक्त तपस्यासे रहित हूं, इसलिये मुझे जो बिनष्ट करेंगे, उसमें कौनसी विचित्रता है? हे विप्रर्षि! मैं मन्त्री और पुरोहितके सहित अगाध जलमें डूब रहा हूं, आप हमारे लिये नौका स्वरूप होइये, महर्षिका मूल्य विशेष रीतिसे निश्चय करिये।

भीष्म बोले, प्रतापशाली गवीजने नहुषका वचन सुनके मन्त्रियोंके सहित उस राजाको हर्षयुक्त करते हुए कहा, हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज! वर्णोंके बीच ब्राह्मण और गऊश्रेष्ठ तथा अनर्घेय हैं अर्थात् गऊ और ब्राह्मणका मोल नहीं है, इसलिये गऊका मूल्य समझिये। हे महाराज! अनन्तर नहुष महर्षिका वचन सुनके मन्त्री और पुरोहितके सहित अत्यन्त हर्षित होकर संशितव्रती भृगुनन्दन च्यवनके समीप जाके उन्हें बचनसे प्रसन्न करके कहने लगे। नहुष बोले, हे भृगुनन्दन बिप्रर्षि! आप उठिये, आप गऊके द्वारा मोल लिये गये। हे धार्म्मिक श्रेष्ठ! मैंने यही आपका मूल्य बिचारा है।

च्यवन मुनि बोले, हे पापरहित राजेन्द्र! अब मैं उठता हूं, तुमने यथार्थमें मुझे मोल लिया, हे नाश-रहित! मैं इस लोकमें गऊके सदृश कुछ भी धन नहीं देखता। हे पृथ्वीनाथ! गौओंकी कथा कहना सुनना और उनका दान दर्शन सब पापोंको हरने तथा कल्याण साधन करनेसे प्रसंशित हुआ करता है। गऊही लक्ष्मीका मूल है, गौओंमें पाप नहीं है, गौवेंही सदा देवताओंकी हविरूप परमअन्न हैं। गौओंसेही स्वाहा और वषट्कार सदा प्रतिष्ठित हो रहा है, गौवेंही यज्ञोंको सिद्ध करती हैं और वेही यज्ञके मुख-स्वरूप हैं, गौवोंमें ही दिव्य अक्षय अमृत बहता तथा झरता है। सब लोकोंकी नमस्कृत ये सब गौवें अमृतके स्थान हैं। भूलोकमें तेज और तनके सहारे गोवृन्द अग्नि सदृश हैं, गऊ ही प्राणियोंके लिये उत्तम

महत् तेज और सुख देनेवाली है, गौवें जिस स्थानमें स्थित होकर निर्भय होके सांस लेती हैं, उस स्थानको भूषित करती हुई उसका पाप दूर किया करती हैं। गऊ ही स्वर्गकेलिये सोपान स्वरूप हैं, गौवोंका समूह स्वर्गमें भी पूजित हुआ करता है, गऊ देवी स्वरूप हैं, वे काम दोहन किया करती हैं। यह स्मरण है, कि दूसरी कुछ भी वस्तु गौवोंसे श्रेष्ठ नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! यह गौवोंका माहात्म्य कहा गया, इनके एकही गुणको आदिसे अन्त तक वर्णन करना असाध्य है, सब गुणोंकी वर्णन करना तो बहुत दूरकी बातहै।

निषादवृन्द बोले, हे मुनि! आपका हम लोगोंके सङ्ग दर्शन और वार्त्तालाप हुआ है, साधुओंको सातपग उच्चारण-निबन्धनसे मित्रता होती है, हे प्रभु! इसलिये आप हम लोगोंपर प्रसन्न हूजिये। जैसे अग्नि समस्त हवि उपभोग करती है, वैसे ही आप भी धर्म्मात्मा प्रतापवान् पुरुषाग्नि हैं। हे विद्वन्! हम लोग प्रणत होके आपको प्रसन्न करते हैं, हमपर कृपा करके आप इस गऊको प्रतिग्रह करिये।

च्यवन बोले, जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखे तृणोंको जलाती है, वैसे ही दीन होन कृपण मुनि और विषधर सर्पके नेत्र मनुष्योंको मूलके सहित भस्म किया करते हैं। हे कैवर्त्तवृन्द! मैंने तुम लोगोंको गऊ प्रतिग्रह किया, तुम लोग पापरहित होके जलसे उत्पन्न हुई मछलियोंके सहित शीघ्र ही स्वर्गमें गमन करो।

भीष्म बोले, अनन्तर निषादोंने उस पवित्रचित्तवाले महर्षिके प्रभावसे उनके वचनके अनुसार मछलियोंके सहित स्वर्गमें गमन किया। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर राजा नहुष मछलियोंके सहित मल्लाहोंको स्वर्गमें जाते देखके विस्मित हुए। अन्तमें वह गवोज और भृगुनन्दन च्यवन मुनि राजा नहुषको यथा इच्छा वर देनेके लिये सम्मान करनेमें प्रवृत्त हुए। हे भरतसत्तम! अनन्तर महापराक्रमी पृथ्वीपति राजा नहुषने उस समय प्रसन्न होके कहा, उत्तम बार्त्ता है। उस इन्द्रतुल्य राजाने धर्म्ममें निष्ठा रहनेके निमित्त वर मांगा, उन्होंने भी कहा, कि ऐसा ही होवे। तब राजाने प्रसन्न होके दोनों ऋषियोंकी पूजा की। च्यवन मुनि दीक्षा समाप्त करनेके अनन्तर अपने आश्रमपर गये, महातेजस्वी गवोजने भी निज आश्रमकी ओर गमन किया। राजा नहुष वर पाके अपने नगरमें आये। हे तात युधिष्ठिर! दर्शन और सहवाससे जैसा स्नेह होता है तथा गौवोंका माहात्म्य और धर्म्मनिश्चय विषयमें तुमने जो मुझसे प्रश्न किया था, वह सब मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। हे वीर! फिर क्या कहूं? तुम्हारे अन्तःकरणमें किस विषयके जाननेकी अभिलाषा है?

५१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ महाबाहो! मुझे समुद्र समान महान् सन्देह है, आप उसे सुनिये और सुननेपर उस विषयकी व्याख्या करनेके लिये आपही उपयुक्त हैं। हे प्रभु! धार्म्मिकश्रेष्ठ जामदग्न्य रामके विषयमें मुझे अत्यन्त आश्चर्य होरहा है। आप मेरे समीप इस ही विषयको वर्णन करिये। वह सत्य पराक्रमी राम किस प्रकार उत्पन्न हुए थे? उनकी उत्पत्तिका विषय आप विस्तारपूर्व्वक वर्णन करिये। हे महाराज! क्षत्रिय कौशिकवंशमें किस प्रकार ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई? हे पुरुषश्रेष्ठ! महानुभाव राम और विश्वामित्रमें अत्यन्त महत् आश्चर्य प्रभाव था, पुत्रोंको छोड़के नातियोंमें यह दोष किस प्रकार सम्भव हुआ, आप उसे यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें च्यवन और कुशिकके सम्वादयुक्त

पुराना इतिहास कहा करते हैं। महाबुद्धिमान् मुनिसत्तम तपोधन भृगुनन्दन च्यवनने उस समय निज वंशमें इस भविष्य दोषको पहली ही देखके मन ही मन समस्त गुण दोष और बलाबलका निश्चय करके कुशिककुलको भस्म करनेकी इच्छा की। च्यवन मुनि कुशिकके समीप पहुंचके बोले, हे पापरहित! तुम्हारे सङ्ग एकत्र वास करनेकी मुझे इच्छा हुई है।

कुशिक बोले, हे भगवन्! बुद्धिमान पण्डितोंके द्वारा कन्यादान करनेके समय यह सहधर्म्म निश्चित हुआ करता है। हे तपोधन! उस ही धर्म्मके सहारे जो अतिक्रान्त हुआ है, उसे कर्तव्य समझके करूंगा, इसलिये उस विषयमें आज्ञा करिये।

भीष्म बोले, अनन्तर भार्य्याके सहित कुशिक महामुनि च्यवनके लिये आसन लेकर जिस स्थानमें वह खड़े थे, वहां आये। राजाने भृङ्गार (जलपात्रविशेष) ग्रहण करके मुनिका पैर धोनेके लिये जल दिया और उस महात्माके सब कार्य्योंको पूरा कर दिया। अनन्तर महानुभाव नियतव्रती राजाने सावधानीके सहित च्यवनको विधिपूर्व्वक मधुपर्क दिया। उसने इस प्रकार उस विप्रका सत्कार करके फिर उनसे कहा, हे भगवन्! हम आपके अधीन हैं, इसलिये कहिये क्या करें? हे संशितव्रती! यदि राज्य, धन, पशु, यज्ञ, दान प्रभृतिका प्रयोजन हो, तो मुझे आज्ञा करिये, मैं आपको सब दान करता हूं, यह गृह, राज्य और धर्म्मासन सब आपका ही है, आप ही राजा होके पृथ्वी शासन करिये, मैं आपके अधीन हुआ हूं। कुशिकके ऐसा कहनेपर भृगुनन्दन च्यवन अत्यन्त हर्षित होके उनसे कहने लगे। च्यवन बोले, हे महाराज! मैं राज्य, धन, स्त्री, पुत्र, परिवार, पशु, देश अथवा यज्ञकी इच्छा नहीं करता; मुझे जो अभिलाषा है, वह कहता हूं, सुनो। मैं कोई नियम आरम्भ करूंगा, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम दोनों निःशङ्क हृदयसे प्रणत होकर मेरी सेवा करो। हे भारत! च्यवनके ऐसा कहनेपर राजा और रानी दोनोंने अत्यन्त हर्षित होके ऋषिको उत्तर दिया 'ऐसा ही होगा'। अनन्तर कुशिक प्रसन्न होकर उन्हें अत्यन्त रमणीय मन्दिरमें लेगये और देखने योग्य सब वस्तुओंको उन्हें दिखाके बोले,—हे भगवन्! यही आपकी शय्या है, आप इच्छानुसार इस स्थानमें निवास करिये। हे तपोधन! हम आपकी प्रीति पूरी करनेके लिये प्रयत्न करेंगे, उन लोगोंके इस ही प्रकार वार्त्तालाप करते रहनेपर सूर्य्यदेवने अस्ताचल पर गमन किया। अनन्तर महर्षि च्यवनने अन्नजल लानेके लिये आज्ञा की, राजा कुशिकने उस समय प्रणत होके ऋषिसे पूछा, हे भगवन्! कैसे अन्न आपको रुचते हैं? मैं कैसी भोजनकी सामग्री मंगाऊं। हे भारत! अनन्तर उस महर्षिने परम हर्षके सहित राजाको उत्तर दिया, कि युक्तिसंगत अन्न प्रदान करो। राजा कुशिक च्यवनके वचनका आदर करके बोले, कि 'ऐसा ही होगा।' नरनाथ कुशिकने उन्हें युक्तियुक्त अन्न प्रदान किया। धर्म्म जाननेवाले भगवान् च्यवन भोजनके अनन्तर राजदम्पतीसे बोले, हे राजन्! निद्रा मुझे बाधा देरही है, इसलिये मैं सोनेकी इच्छा करता हूं। अनन्तर ऋषिसत्तम भगवानने शय्यागृहमें जाके शयन किया। राजा भार्य्याके सहित वहां स्थित रहा।

अनन्तर भृगुनन्दनने कहा, मेरे निद्रित होनेपर मुझे न जगाना, तुम लोग मेरे चरणकी सेवा करते हुए सदा जाग्रत अवस्थामें स्थित रहो; धर्म्म जाननेवाले राजा कुशिकने शङ्कारहित होके कहा, 'ऐसाही होगा।' फिर रात बीतनेपर भी उन दोनोंने उन्हें न जगाया, हे महाराज! वे दम्पती उस समय महर्षिकी आज्ञाके अनुसार प्रयत्नवान होकर उनकी सेवा

करने लगे। अनन्तर उस विप्र भगवानने राजाको इसही प्रकार आज्ञा करके इक्कीस दिन तक एक पार्श्वसे सोके निद्रावस्थामें समय व्यतीत किया। हे कुरुनन्दन! राजा कुशिक पत्नीके सहित निराहार होके च्यवनकी आराधनामें अनुरक्त और प्रसन्न रहके सब भांतिसे उनकी उपासना करने लगे, तपोधन भृगुनन्दन स्वयंही उठे, वह महातपस्वी कुछ भी बचन न कहके गृहसे बाहर निकले। राजा और रानी दोनों-नेही भूखे श्रमयुक्त होके भी उनके पीछे चले। उनके आनेपर भी मुनिने उनकी ओर न देखा, हे राजेन्द्र! भार्य्याके सहित राजा कुशिकने देखते रहनेपर भी भृगुकुलोद्वह च्यवन अन्तर्द्धान हुए, उनके अन्तर्हित होते ही राजा पृथ्वीपर गिर पड़ा। महातेजस्वी राजाने भार्य्याके सहित मुहूर्त्त भरके अनन्तर धीरज धरके उस समय उन्हें अन्वेषण करनेमें अत्यन्त यत्न किया।

५२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, भार्य्याके सहित वह राजा ऋषिको न देखनेपर बहुत थकके लज्जित तथा चेतरहित होके निवृत्त हुआ। वह दुःखित होके नगरमें प्रवेश करके कुछ भी न बोला, केवल च्यवनके उसही कार्य्यकी चिन्ता करने लगा। अनन्तर राजा चुपचाप निज भवनमें प्रवेश करके भृगुनन्दन च्यवनको उसही शय्यापर सोये हुए देखा। दम्पती उस समय ऋषिको देखके विस्मित हुए और उस विषयको आश्चर्य्य समझके उनके दर्शन निबन्धनसे विश्राम करने लगे। वे यथा स्थानमें स्थित होके फिर ऋषिकी चरण सेवा करनेमें प्रवृत्त रहे। महामुनि दूसरी करवट होके निन्द्रा-सुख भोगने लगे। वीर्य्यवान च्यवन जितने दिनतक एक पार्श्वसे निद्रित थे, उतने ही समयतक दूसरी करवट निद्रित रहके जागे। भार्य्याके सहित राजाने भयसे शङ्कित होकर किसी प्रकार विचार नहीं किया। हे भारत नरनाथ! उस मुनिने साव-धान होके उनसे कहा, मेरे समस्त शरीरमें तेल लगाओ, मैं स्नान करूंगा। भार्य्याके सहित राजा भूखे और श्रमयुक्त होनेपर भी उनका वचन अङ्गीकार करके महा मूल्यवान शतपाक तेल ले आया। अनन्तर वे दोनों वाक्संयम करके उस सुखसे बैठे मुनिके शरीरमें तेल मलने लगे। महातपस्वी भार्गवने कहा यह पर्य्याप्त हुआ। अनन्तर जब भृगुनन्दनने उस राजा और राजरानीको निर्व्विकार देखा, तब सहसा उठके स्नानगृहमें गये, स्नानशालामें राजाके योग्य स्नानीय जल आदि सब वस्तु तैय्यार थीं, वह राजाके सम्मुखमें ही उन सबका निरादर करके उसही स्थानमें फिर अन्तर्द्धान हुए।

हे भरतश्रेष्ठ! राजदम्पतीने उस विषयमें कुछ भी असूया न की। हे कुरुनन्दन! अनन्तर निग्रहानिग्रहमें समर्थ च्यवन भगवान्‌ने स्नान करके सिंहासनपर बैठके सपत्नीक कुशिक राजाको दर्शन दिया। प्रज्ञायुक्त राजाकुशिकने भार्य्याके सहित प्रसन्न बदन और निर्व्विकार-चित्त होके मुनिसे कहा, कि भोजन तय्यार है, मुनिने भी राजासे कहा, लाओ। तब राजा भार्य्याके सहित वह प्रस्तुत अन्न मुनिके समीप ले आया। अनेक प्रकारके मांस विविध शाक अनेक भांतिके रसमिश्रित पिष्टक विचित्र लड्डू अपूर्व्व खाण्डव अनेक प्रकार रस मुनि-भोजनके योग्य बनके फल उसके अतिरिक्त सब राज्यभोग बहुतसे विचित्र फल बदर, इंगुद, काश्मर्य्य, भल्लातक आदि गृहस्थ और बनवा-सियोंके खाने योग्य जो सब फल हैं, मुनिके शापभयसे राजाने वह सब मंगाया था, अनन्तर च्यवनके अगाड़ी समस्त भोजनकी सामग्री रखी गई। भृगुनन्दन च्यवन मुनि उन सब भोजनके पात्रोंके सहित शय्या और आसन संगाकर उसे सफेद वस्त्रसे ढांकके जला दिया महाबुद्धिमान

दम्पती उससे भी क्रुद्ध न हुए। उनके देखते ही देखते वह मुनि फिर अन्तर्द्धान हुए, राजर्षि श्रीमान् कुशिकभार्य्याके सहित वाक्संयत होकर उस रात्रिमें उस ही भावसे निवास किया, उस समय वह क्रुद्ध नहीं हुए। राजभवनमें प्रतिदिन विविध अन्न और उत्तम शय्या उपस्थित रहती थीं, बहुतसे स्नान योगत्र तथा अनेक प्रकारके वस्त्र सज्जित रहते थे, इसीसे च्यवन कोई त्रुटि नहीं देखते थे। विप्रर्षिने फिर राजा कुशिकसे कहा, मैं जिस स्थानमें कहूं, वहांपर तुम भार्य्याके सहित मुझे रथपर ले चलो। उस समय राजाने निःशङ्क होकर महर्षिसे कहा, कि 'ऐसा ही होगा'। हे भगवन्! हम क्रीड़ा रथ अथवा सांग्रामिक रथमें आपको ले चलें। राजाने जब प्रसन्नचित्त होकर मुनिसे ऐसा कहा, तब च्यवन हर्षित होके उसपर पुरञ्जय राजासे बोले, तुम्हारा जो सांग्रामिक रथ है, उसे ही शीघ्र सज्जित करो। जो रथ शस्त्र, पताका, शक्ति, स्वर्णयष्टियुक्त किङ्किणिशब्दसे सम्पन्न, सोनेके तोरण और सैकड़ों उत्तम अस्त्रोंसे युक्त है, उसे ही लाओ। अनन्तर राजाने 'ऐसा ही होवे' यह वचन कहके उस महारथको सजाकर धुरीको बांई तरफ प्रियभार्य्याको और दहिनी ओर अपनेको योजित करते हुए त्रिदण्ड और वज्रसूच्यग्र प्रतोद स्थापित किया। राजाने यह सब सामग्री रथमें स्थापित करके कहा, हे भगवन् भृगुनन्दन! कहिये, रथ कहांपर ले चलें? हे विप्रर्षि! आप जिस स्थानमें कहेंगे, वहां ही आपका रथ जावेगा। भगवान् च्यवनने ऐसा वचन सुनके उस राजासे कहा, इस स्थानसे धीरे धीरे एक एक पग चलना होगा, जिससे मुझे बहुत श्रम न हो, उस ही भांति मेरे अभिप्रायके अनुसार तुम दोनों चलोगे। तुम लोग परम सुखसे मुझे ले चलो और सब लोग देखें। मार्गसे पथिकोंको न हटाओ, क्यों कि मैं उन्हें धन दान करूंगा। मार्गमें ब्राह्मण लोग मेरे समीप जिस वस्तुके लिये प्रार्थना करेंगे, मैं बहुतायतके सहित उन्हें वही धन, रत्न प्रदान करूंगा, हे राजन्! मैंने जो कहा, वह सब तुम सिद्ध करो, इस विषयमें कुछ भी विचार मत करो। राजा उनका वचन सुनके सेवकोंसे बोला, मुनि जो कुछ कहें, तुम लोग शङ्कारहित होकर वह सब प्रदान करना। अनन्तर विविध रत्न स्त्रीवृन्द, सवारी, बकरे, मेढ़े, शुद्ध तथा अविशुद्ध सुवर्ण पर्व्वतसदृश हाथियोंके समूह और समस्त राजसेवक उस ऋषिके पीछे पीछे गमन करने लगे। नगरवासी सब लोग आरत होके हाहाकार करने लगे। राजा और राजमहिषी तीक्ष्णाग्र कोड़ेके द्वारा ताड़ित तथा पुरोवर्त्ती गण्डस्थल विद्ध होनेपर भी निर्व्विकार भावसे रथ खींचने लगे। वे वीर दम्पती पचास रात्रितक थके हुए तथा भूखे रहने पर भी कांपते शरीरसे किसी प्रकार उस उत्तम रथको खींचने लगे। हे महाराज! वे दोनों बार बार अत्यन्त विद्ध होनेपर घावोंसे रुधिर झरनेसे फूले हुए किंशुक वृक्षकी भांति दिखाई देने लगे, पुरवासीवृन्द उन्हें देखके शोकसे व्याकुल होनेपर भी शापभयसे डरके कुछ भी न कह सके, सब कोई आपसमें कहने लगे, "तपस्याका फल देखो" हम लोग क्रुद्ध होके भी मुनिश्रेष्ठकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हैं। इस भावितात्मा महर्षिका क्या ही आश्चर्य्य बल है और भार्य्याके सहित राजाका जैसा आश्चर्य्यमय धीरज है, वह भी अवलोकन करो। ये दोनों थकनेपर भी अत्यन्त कष्टसे इस रथको खींच रहे हैं, भृगुनन्दनने इनमें कुछ भी विकार नहीं देखा।

भीष्म बोले, अनन्तर भृगुकुलधुरन्धर च्यवन उन्हें निर्व्विकार देखके कुवेरकी भांति बहुत धन दान किया, तौभी राजा प्रसन्नचित्त होकर उनके कहे हुए कार्य्यको करनेमें कुण्ठित नहीं हुआ। अन्तमें मुनिसत्तम भगवान च्यवन उन-

पर प्रसन्न हुए और उस श्रेष्ठ रथसे उतरकर उन्हें छोड़ दिया। हे भारत! भृगुनन्दन उस राजा और राजमहिषीको विधिपूर्व्वक रथसे मुक्त करके उत्तम कोमल गम्भीर प्रसन्नचित्तसे यह बचन बोले, मैं तुम्हें अत्यन्त उत्तम वर दूंगा, जो इच्छा हो वह मांगो। हे भरतसत्तम! उस मुनिसत्तमने स्नेहवशसे अमृतमय हाथसे अत्यन्त विद्ध सुकुमार दम्पतीका शरीरस्पर्श किया। अनन्तर राजाने भार्गवसे कहा, आपकी कृपासे हमें श्रम नहीं हुआ, अब हम श्रमरहित हुए हैं, शीघ्रमें भगवान च्यवन अत्यन्त हर्षित होकर उस समय उनसे बोले, जब मैंने पहले कभी वृथा बचन नहीं कहा, है, तब वह अवश्य ही सिद्ध होगा। हे महाराज! पवित्र गङ्गाका तट अत्यन्त रमणीय स्थल है, मैं कुछ समयतक व्रतनिष्ठ होकर इस ही स्थलमें निवास करूंगा, तुम अपने नगरमें जाओ, वहां विश्राम करके फिर इस ही स्थानमें आना। हे नरनाथ! कलह तुम भार्य्याके सहित आके मुझे यहां ही देखोगे। तुम क्रोध अथवा शोक मत करो, तुम्हारे कल्याणका समय उपस्थित हुआ है, तुम्हारे हृदयमें जो अभिलाष है, वह निश्चय ही सिद्ध होगी। कुशिक ऐसा बचन सुनके प्रसन्न चित्त होकर उस मुनिश्रेष्ठसे यह अर्थयुक्त बचन बोले, हे महाभाग! हमें क्रोध अथवा शोक नहीं है, हम आपके प्रसादसे पवित्र हुए। हम तेज और बलसे युक्त होकर वनस्थ हुए हैं। आपने कोड़ेसे हमारे शरीरमें जो सब घाव उत्पन्न किये थे, उसे अब नहीं देखता हूं, इस समय मैं भार्य्याके सहित स्वस्थ हुआ हूं। इस देवीको मैंने पहले जिस प्रकार देखा था, उससे भी बढ़के श्री सम्पन्न और शरीरकी सुघराईमें अप्सरासदृश देखता हूं। हे महामुनि! आपके प्रसादसे ही यह सब हुआ है। हे सत्य-पराक्रमी भगवन्! आपमें ये सब आश्चर्य्य नहीं हैं, च्यवन उस समय ऐसा सुनके कुशिकसे बोले, हे नरनाथ! तुम भार्य्याके सहित इस ही स्थानमें आना। राजर्षि कुशिकने महर्षिका ऐसा बचन सुनके उन्हें प्रणाम करके उनकी आज्ञानुसार बिदा होके सौन्दर्य्ययुक्त शरीरसे देवराजकी भांति नगरमें गमन किया। अनन्तर पुरोहि-तके सङ्ग अमात्यवृन्द, सेना और गणिकाओंके सहित समस्त प्रजा उनके निकट उपस्थित हुई। कुशिकने उस समस्त प्रजासमूहसे घिरके परम श्रीसम्पन्न और बन्दिजनोंसे पूजित होकर नगरमें प्रवेश किया। अनन्तर महातेजस्वी राजा नगरमें प्रविष्ट होकर पूर्व्वाह्निकी क्रिया समाप्त करनेके अनन्तर भोजन करके भार्य्याके सहित रात्रि बिताने लगा। उस समय वे शोक-रहित होके देवसदृश परस्परको नवयौवन देखके हिलसे उठके दिये हुए श्रीसम्पन्न शरीर धारण करके होकर आनन्दित हुए। अनन्तर भृगुकुलकी कीर्त्ति बढ़ानेवाले तपस्वी च्यवनने मनीषीके द्वारा अनेक प्रकारके रत्नभूषित स्तम्भयुक्त अत्यन्त रमणीय ऐसा बगीचा रचा कि जिसका इन्द्रका अमरावती नगरीमें भी दर्शन होना दुर्लभ है।

५३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर महात्मा राजा कुशिक रात्रि बीतनेपर सावधान होके पूर्व्वा-ह्निक कार्य्योंको समाप्त करके भार्य्याके सहित उस बगीचेमें गये। हे भारत! अनन्तर राजा कुशिकने गन्धर्व्व नगर सदृश सहस्र मणिमय स्तम्भोंसे युक्त एक सुवर्णमय प्रासाद देखा। वह उस समय वहांपर सब दिव्य अभिप्राय देखने लगे। रमणीय सानुमय पर्व्वत, कमलोंके सहित नलिनीदल अनेक प्रकारकी चित्रशाला और विचित्र तोरण अवलोकन किया। सुवर्ण प्रासा-दके नीचेके हिस्सेमें शाद्वल शस्यासे युक्त भूमि प्रफुल्लित केतकी, उद्दालक, धव, अशोक, कुन्द,

फले हुए अतिमुक्तक, चम्पक, तिलक, सुन्दर पनस, वञ्जुल और फूले हुए कर्णिकाके वृक्ष उस स्थानमें देखे, श्यामवर्ण वारणपुष्प और अष्टपदिका लताओंको राजाने उस स्थानमें फैली हुई देखा। हे भारत! किसी स्थलमें सब ऋतुके पल्लोपलघव आदि सब वृक्ष विमानकी भांति पर्व्वत सदृश ऊंचे समस्त प्रासाद, उत्तम शीतल जल, किसी किसी स्थलमें गर्म्म जल किसी स्थानमें विचित्र आसन उत्तम शय्या, बहुमूल्य आस्तरणयुक्त रत्न, सुवर्ण मय पलङ्ग और अनेक प्रकारके भक्ष्य और भोजनकी सामग्री उस स्थानमें उत्तम रीतिसे सज्जित तथा प्रस्तुत थीं। वाक्पटु शुक, सारिका, भृङ्गराज, कोकिल, सारस, टिट्टिभक, वनकुक्कुट, मयूरकुक्कुट, दात्यूह जीवञ्जीव चकोर हंस और चक्रवाक आदि अत्यन्त मनोहर पक्षियों और वानरोंके समूहको राजाने चारों ओर प्रमुदित देखा। किसी किसी स्थलमें अप्सरा और गन्धर्व्वृन्द, कहीं पर स्त्रियोंके संग रत अन्यान्य पुरुषोंको देखा, देखके फिर उनकी ओर दृष्टि नहीं की, राजाने उस स्थानमें उत्तम मधुर संगीत शब्द अध्ययन ध्वनि और हंसोंका शब्द सुना। राजाने उस अद्भुत कार्य्यको देखकर उस समय मन ही मन चिन्ता किया, कि यह स्वप्न अथवा चित्ता विभ्रम है, वा सत्य ही होगा? क्याही आश्चर्य है, मैं सशरीर ही परम गतिको प्राप्त हुआ, अथवा पवित्र उत्तर कुरुदेश वा अमरावतीमें पहुंचा हूं। ओहो! क्या ही महत् आश्चर्य्य देख रहा हूं, इस ही प्रकार चिन्ता करने लगा। उसने इस ही प्रकार चिन्ता करते करते ही उस मणिस्तम्भसे युक्त सुवर्णके विमानमें महार्ह दिव्य शय्यापर सोये हुए मुनिश्रेष्ठ भृगुनन्दनका दर्शन किया। देखतेही राजा हर्षित होकर भार्य्याके सहित उस महर्षिके सामने गया। तब च्यवन उस शय्याके सहित फिर अंतर्द्धान हुए।

अनन्तर राजाने किसी दूसरे वन स्थलमें उस महाव्रती जपमें रत मुनिका फिर दर्शन किया। विप्रवर च्यवन मुनि इस ही प्रकार योगबलसे राजाको मोहित करने लगे, क्षणभरके बीच उस बगीचेमें अप्सरा गन्धर्व्वोंके सहित सब वृक्ष अन्तर्हित हुए, महाराज गंगाका तट फिर निःशब्द हुआ जैसे पहले उसमें बहुतसे कुश और वाल्दके कण थे, वैसे ही रहे। अनन्तर राजा भार्य्याके सहित महत् अद्भुत कार्य्य देखके अत्यन्त विस्मित हुआ। अन्तमें हर्षयुक्त होके भार्य्यासे बोला, हे कल्याणी! हमने भृगुनन्दनके प्रसादसे अत्यन्त दुर्ल्लभ विचित्र व्यापार अवलोकन किया, वह क्या तपोबलके अतिरिक्त अन्य कारणसे हो सकता है? जो मनोरथसे प्राप्त नहीं होता, वह तपस्याके सहारे प्राप्त हुआ करता है; तीनों लोकोंके राज्यसे तपस्या ही श्रेष्ठ है। उत्तम रीतिसे तपस्या करनेसे उस ही तपोबलसे मोक्षलाभको सामर्थ होती है। महानुभाव ब्रह्मर्षि च्यवनका कैसा आश्चर्य्य प्रभाव है। ये इच्छा करनेसे ही तपोबलसे दूसरी सृष्टि कर सकते हैं। ब्राह्मण ही पुण्यवाक् पूतबुद्धि और पवित्रकर्म्मा होकर जन्मते हैं। इस लोकमें च्यवनके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष ऐसा कार्य्य करनेके लिये उत्साहवान हुआ करता है? इस लोकमें मनुष्योंके लिये ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्ल्लभ है, राज्य बहुत सहजमें प्राप्त होता है, ब्राह्मणके प्रभावसे ही हम निज रथको धुरीमें जुते थे। राजाने इस ही प्रकार चिन्ता करते करते च्यवनको देखा। महर्षिने राजाको देखके कहा, जल्दी आओ। राजा महर्षिकी ऐसी आज्ञा सुनके भार्य्याके सहित उस महामुनिके सम्मुख उपस्थित हुआ और उस बन्दनीय मुनिको सिर नीचा करके बन्दना की। हे पुरुषश्रेष्ठ! बुद्धिमान मुनि उस राजाको आशीर्व्वाद देकर उसे धीरज देते हुए बैठाकर बोले, हे राजन्! तुमने

स्वयं मनके सहित सब इन्द्रियोंको पूरी रीतिसे जय किया है, इस ही निमित्त इस क्लेशसे मुक्त हुए। हे तात! वक्तृवर! मैं तुम्हारे द्वारा पूर्ण रीतिसे पूजित हुआ हूं तुममें सूक्ष्म परिमाणसेभी किञ्चितमात्र पाप नहीं है। हे महाराज! अब मुझे निज स्थानपर जानेके लिये अनुमति दो। हे राजेन्द्र! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम वर मांगो।

कुशिक बोले, हे भृगुश्रेष्ठ! मैं आपके समीप अग्निके बीच पड़े हुए पुरुषकी भांति बिद्यमान रहके जो भस्म नहीं हुआ, यही बहुत है। हे ब्रह्मन् पापरहित भृगुनन्दन! यही मैंने मुख्य वर पाया, कि आप मुझपर प्रसन्न हुए और मेरे कुलकी रक्षा हुई है। यही मेरे ऊपर कृपा हुई है, यही मेरे जीवनका प्रयोजन है और यही मेरे राज्य और तपस्याका फल है। हे बिप्र भृगुनन्दन! यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हों, तो मुझे कुछ सन्देह है, उस बिषयकी आपको व्याख्या करनी उचित है।

५४ अध्याय समाप्त।

च्यवन बोले, हे राजन्! मेरे समीप वर ग्रहण करो और तुम्हारे मनमें जो सन्देह हो, वह भी कहो, मैं तुम्हारी सब कामना सिद्ध करूंगा।

कुशिक बोले, हे भगवन् भार्गव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं, तो आपने मेरे गृहमें जिस लिये निवास किया था, उसका कारण कहिये, मैं उसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे मुनिश्रेष्ठ! आप एक पार्श्वसे सोये रहके कुछ भी न कहके बाहर निकले और अकस्मात् अन्तर्द्धान हुए, फिर दर्शन दिया। फिर इक्कीस दिनतक सोये रहे, तेल लगाके गमन किया, मेरे भवनमें बिबिध भोजनकी सामग्री मंगाके अग्निसे सहारे उसे भस्म कराया, सहसा रथपर चढ़के नगरमें घूमे, धन दान किया और बन प्रदर्शित करके अनेक प्रकारके सुवर्णमय प्रासाद मणि और बिद्रुमनिर्म्मित पलङ्ग आदि प्रदर्शित किया, फिर उन सब वस्तुओंका अदर्शन हुआ। हे महामुनि! इन सबके कारणको मैं सुननेकी इच्छा करता हूं। हे भृगुकुलधुरन्धर! मैं इन सब बिषयोंकी चिन्ता करते हुए अत्यन्त मुग्ध होरहा हूं। हे तपोधन! इसलिये मैं यह समस्त बिषय सत्य तथा यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

च्यवन बोले, हे महाराज! ये सब बिषय जिस कारणसे हुए हैं, उसे सुनो। जिसने इसे देखा है, वह इन सब बिषयोंको नहीं कह सकता। पहले समयमें देवताओंके इकट्ठे होने पर पितामहने जो कथा कही थी, उसे मैंने सुना था। हे राजन्! इस समय उसे कहता हूं सुनो। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके परस्पर बिरोधके कारण कुल सङ्कर होगा। हे महाराज! तेज और पराक्रमसे युक्त तुम्हारे एक पौत्र जन्मेगा। इस ही लिये मैं तुम्हारा वंश नाश करनेके निमित्त तुम्हारे समीप आया था, कुशिकवंशके नाश करनेकी कामना करते हुए तुम्हारे वंशको जलानेके लिये मेरी इच्छा थी। उस ही निमित्त मैंने तुम्हारे गृहमें आके पहलेही यह वचन कहा था, कि मैं कोई नियम आरम्भ करूंगा, तुम लोग मेरी सेवा करो। मैंने तुम्हारे गृहमें कोई दुष्कर कार्य्य नहीं किया; हे राजर्षि! इस ही लिये तुम जीवित हो, तुम्हारी प्रकृतिमें कुछ बिकृत नहीं हुई है। मैं यही बिचारके इक्कीस दिनतक गृहमें सोया था, कि यदि कोई इतने समयके बीच मुझे जगावे। हे नृपसत्तम! परन्तु मेरे सोनेपर जब भार्य्याके सहित तुमने मेरी सेवा करते हुए निद्रा भङ्ग नहीं की, उस ही समय मैं तुम्हारे ऊपर मन ही मन प्रसन्न हुआ था। हे महाराज! जब मैं उठके बाहर निकला, उस समय यदि तुम

मुझसे पूछते, कि 'कहां जाओगे?' तो मैं तुम्हें शाप देता। हे महाराज! अनन्तर मैं अन्तर्द्धान होकर तुम्हारे गृहमें योग अवलम्बन करके फिर इक्कीस दिन सोया था। हे नरनाथ! तुम लोग भूखे अथवा परिश्रमसे थककर मेरे विषयमें असूया करो,—ऐसा ही विचारके मैंने तुम्हें क्षुधासे कर्षित किया था। हे नरश्रेष्ठ महाराज! भार्य्याके सहित तुम्हारे अन्तःकरणमें अत्यन्त सूक्ष्म परिमाणसे भी बिकार नहीं हुआ, इसहीसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं। भोजनकी सारी सामग्री मंगाके उस समय मैंने जो भस्म कराई थी, उसका यही तात्पर्य्य था, कि यदि तुम लोग मत्सरताके वशमें होकर मेरे विषयमें क्रोध करते, तो मैं तुम्हें शाप देता; परन्तु उस समय तुमने मेरे विषयमें क्षमा की थी। हे नरनाथ! अनन्तर मैंने रथपर चढ़के तुमसे कहा कि तुम भार्य्याके सहित "रथमें जुतकर मुझे खींचलो" तुमने शङ्कारहित होके वही किया। हे राजन्! उस कारणसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं। मैं जब तुम्हारा धन लोगोंको दे रहा था, तब भी क्रोध तुम्हें आक्रमण न कर सका। हे नरनाथ महाराज जान रखो, कि इन्हीं कारणोंसे भार्य्याके सहित तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर मैंने फिर उस बनको उत्पन्न किया था। मैंने तुम्हारी प्रसन्नताके लिये तुम्हें स्वर्ग दिखाया है। हे राजन्! इस बनके बीच तुमने दिव्य-निदर्शन देखा है, उसहीसे भार्य्याके सहित मुहूर्त्त भर तुम्हें स्वर्गसुख अनुभव हुआ है। हे नरनाथ! तपस्या और धर्म्मके निदर्शनके विषयमें उस समय तुम्हारे मनमें जो स्पृहा हुई थी, वह भी मुझे अविदित नहीं है। हे पृथ्वीनाथ! तुमने नरेन्द्रत्व तथा देवेन्द्रपदकी भी अवज्ञा करके ब्राह्मणत्व तथा तपस्याकी आकांक्षा की है। हे तात! तुमने जो ब्राह्मणत्वको अत्यन्त दुर्लभ कहा, वह यथार्थ है। ब्राह्मणत्व होनेपर ऋषित्व दुर्लभ है, ऋषित्व पदकी प्राप्ति होनेपर तपस्विता अत्यन्त दुर्लभ है। जो हो तुम्हारी यह कामना सफल होगी कुशिकसे कौशिक द्विज जन्मेगा; तुम्हारी तीसरी पीढ़ीमें ब्राह्मणत्व संक्रान्त होगा। हे नृपश्रेष्ठ। भृगुवंशके तेजसे तुम्हारा वंश बर्द्धित होगा, तुम्हारा पौत्र ब्राह्मण तपस्वी और अग्निके समान तेजस्वी होगा, वह तीनों लोकोंके बीच सदा ही देववृन्द और मनुष्योंको भय उत्पन्न करेगा; यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं। हे राजर्षि! तुम्हारे अन्तःकरणमें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो, मैं सब तीर्थोंमें घूमनेके लिये जाऊंगा, समय बीत रहा है।

कुशिक बोले, हे महामुनि! आप जो मुझपर प्रसन्न हुए, यही मेरे लिये वर है। हे पापरहित! आप जैसा कहते हैं, मेरा पौत्र वैसाही होवे। हे भगवन्! मेरा वंश ब्राह्मण होवे, यही मेरे लिये वर है। मेरी यह अभिलाषा है, कि इस विषयको आप फिर विस्तारपूर्व्वक वर्णन करें। हे भृगुनन्दन! किस प्रकार मेरे कुलमें ब्राह्मणत्व आवेगा? कौन मुझसे सम्मत मेरा बन्धु होगा?

५५ अध्याय समाप्त।

च्यवन बोले, हे नरनाथ! जिस निमित्त मैं तुम्हारा नाश करनेके लिये आया था, वह तुमसे अवश्य कहना योग्य है। हे प्रजानाथ! क्षत्रिय लोग भृगुवंशियोंके सदासे यजमान हैं, दैववश उनमें बिभिन्नता होगी। हे नरनाथ! सारेदैव दण्डसे निपीड़ित होकर गर्भ पर्य्यन्त नष्ट करते हुए भृगुवंशियोंका बध करेंगे। अनन्तर हमारे कुल और गोत्रकी वृद्धि करनेवाले अग्निदेव तथा सूर्य्यके समान तेजसे युक्त उर्व्व नाम एक महातेजस्वी पुरुष उत्पन्न होगा। वह तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिये कोपानल

उत्पन्न करेगा, पर्व्वतों और वनोंके सहित पृथ्वी मण्डलको भस्मीभूत करेगा। वह मुनिसत्तम समुद्रके बीच बाड़वामुखमें उस अग्निको डाल कर कुछ समयके लिये शान्त रखेगा। हे पाप-रहित महाराज! उनके पुत्र भृगुनन्दन ऋचिकके समीप समस्त धनुर्व्वेद प्रत्यक्षमेंही उपस्थित होगा। दैव कारणसे क्षत्रियोंके अभावके हेतु वह उस धनुर्व्वेदको ग्रहण करके तपस्याके सहारे शुद्ध चित्तवाले निजपुत्र जमदग्निमें उसे स्थापित करेंगे। हे भृगुश्रेष्ठ! जमदग्नि उसही धनुर्व्वेदको धारण करेंगे। हे धर्म्मात्मन! वही जमदग्नि तुम्हारे वंशसे कन्या ग्रहण करके उससे वंशकी उत्पत्तिके निमित्त विवाह करे। महातपस्वी जमदग्नि तुम्हारे पौत्र गाधिकी पुत्रीको पाके उसके गर्भसे क्षत्रिय-धर्म्मयुक्त ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न करेगा और वही महातेजस्वी तुम्हारे वंशमें गाधिके वीर्य्यसे तेजमें वृहस्पतिके समान अत्यन्त धार्म्मिक महातपस्याशाली विप्रकर्म्म करनेवाला विश्वामित्र नामक क्षत्रिय पुत्र प्रदान करेगा। उस परिवर्त्तन विषयमें दोनों स्त्रीही कारण होंगी; पितामहके नियोगसे यह अन्यथा न होगा। तीसरी पीढ़ीमें तुम्हारे वंशमें ब्राह्मणत्व होगा। तुम शुद्धचित्त भार्गवोंके सम्बन्धी होगे।

भीष्म बोले, हे भरत सत्तम! उस समय धर्म्मात्मा राजा कुशिक महानुभाव च्यवन मुनिका वचन सुनके आनन्दित हुए और कहा कि ऐसाही होवे। महातेजस्वी च्यवनने फिर उस राजासे वर मांगनेको कहा। राजा उनसे बोला, हे महामुनि! अच्छा मैं आपके समीप इच्छानुसार वर मांगता हूं, मेरा वंश ब्राह्मणकुलमें परिणत होवे और इस वंशकी बुद्धि धर्म्ममें रत रहे। च्यवन मुनि राजाका वचन सुनके बोले, कि ऐसा ही होगा, अनन्तर राजासे अनुमति लेकर तीर्थ यात्राके लिये गमन किया। हे राजन्! यह मैंने भृगु और कुशिक गणके परस्पर सम्बन्धका कारण विस्तारपूर्व्वक तुमसे कहा है। हे महाराज! च्यवन ऋषिने राम और विश्वामित्र मुनिके जन्म विषयमें जिस प्रकार कहा था, उस समय वैसा ही हुआ।

५६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत पितामह! मैं आपका वचन सुनके बार बार उसे विचारके तथा श्रीमान् राजाओंसे रहित इस पृथ्वीके दशाको पर्य्यालोचना करके बहुत ही मुग्ध होता हूं। हे भारत! मैं पृथ्वीमण्डल जीतकर सैकड़ों राज्य पाके भी करोड़ों पुरुषोंका संहार करनेसे इस समय परिताप करता हूं। जो सब वरवर्णिनी स्त्रियें पति, पुत्र, भ्राता और मामा आदिसे हीन हुई हैं, उनकी कैसी अवस्था होगी? हम उस कुरुकुल, स्वजनों और सुहृदोंको मारनेसे अवाक्सिरा होके निःसन्देह नरकमें पड़ेंगे। हे भारत! मैं उग्र तपस्यासे शरीरको संयुक्त करनेकी इच्छा करता हूं। हे नरनाथ! इस समय मुझे आपका यथार्थ उपदेश सुननेकी अभिलाष है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महात्मा भीष्म युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके बोले, हे नरनाथ! तुममें जो अद्भुत रहस्य प्रकट भया है। उस विषयमें मरनेके अनन्तर जिस पुरुषकी जो गति प्राप्त होती है, उसे कहता हूं, सुनो।

हे विभु! तपस्याके सहारे स्वर्ग मिलता है, तपस्यासे योग लाभ हुआ करता है, तपस्यासे ही परमायुकी प्रकर्षता तथा भोग प्राप्त होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! तपस्याके सहारे ज्ञान, विज्ञान, आरोग्यता, रूप, सम्पत्ति और सौभाग्य प्राप्त होता है। मौनव्रतसे जगत्के प्राणियों पर आज्ञा प्रदान करनेकी सामर्थ प्राप्त होती है। दानसे समस्त उपभोग और ब्रह्मचर्य्यके द्वारा

उत्तम दीर्घ परमायु प्राप्त होती है। अहिंसाका फलरूप है, दीक्षाका सत्कुलमें जन्म, फल, मूल, भोजन करनेवाले मनुष्योंका फल राज्य और पत्ते खानेवालोंको स्वर्गप्राप्ति हुआ करती है। जो लोग दूध पीके रहते हैं, उन्हें स्वर्ग मिलता है। दानके सहारे मनुष्य अधिक द्रविणयुक्त हुआ करता है, गुरुसेवासे विद्या मिलती है और प्रतिदिन श्राद्ध करनेसे सङ्गति प्राप्त होती है। शाक भोजन करनेसे मनुष्य गोधनसे युक्त हुआ करता है। ऋषि लोग कहा करते हैं, कि तृण भक्षकोंको स्वर्ग मिलता है। जो लोग तीन बार स्नानकर वायु पान तथा प्राणायाम करके निवास करते हैं, उन्हें प्रजापति लोक प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन स्नान करके प्रातः और सायं सन्ध्याके समय जप करता है, वह दक्ष प्रजापति होता है, जो पुरुष जलरहित स्थलमें साधना करता है, उसे राज्य मिलता और अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे नाकपृष्ठमें वास हुआ करता है। कुशापर सोनेवाले तपस्वियोंको गृह और शय्या मिलती है, चीर और वल्कल वसन दान करनेसे विचित्र वस्त्र तथा समस्त आभूषण मिलते हैं। योगयुक्त तपस्वियोंके निकट शय्या, आसन, तथा समस्त सवारियें उपस्थित होती हैं, अग्निमें प्रवेश करनेसे सदा ब्रह्मलोकमें वास हुआ करता है। रसोंको परित्याग करनेसे इस लोकमें सौभाग्य प्राप्त होता है, मांस त्यागनेसे आयुष्मती सन्तान उत्पन्न हुआ करती है, जो लोग जलके बीच वास करते हैं, वे स्वर्गमें राजा होते हैं। सत्यवादी मनुष्य देवताओंके सहित आनन्दित हुआ करते हैं। दानसे कीर्त्ति होती है, अहिंसाके सहारे निरोगता प्राप्त हुआ करती है, द्विजसेवासे प्रचुरराज्य और द्विजत्व प्राप्त होता है। जल दान करनेसे शाश्वती कीर्त्ति प्राप्त हुआ करती है, अन्न दान करनेसे काम भोग दीखता है। जो लोग सब भूतोंके विषयमें सान्त्व वचन कहते हैं, वे सब शोकोंसे विमुक्त होते हैं। देवसेवासे राज्य और दिव्यरूप प्राप्त होता है, दीपककी रोशनी दान करनेसे मनुष्य नेत्रवान हुआ करते हैं। प्रेक्षणीय प्रदान करनेसे स्मृति और बुद्धि प्राप्त होती है, सुगन्ध और माला दान करनेसे बहुतेरी कीर्त्ति हुआ करती है, केश तथा श्मश्रुधारी मनुष्योंको श्रेष्ठ सन्तति होती है।

हे महाराज! बारह वर्षतक सब भोगोंको परित्याग करके जप आदि नियमोंको स्वीकार और त्रिकाल स्नान करनेसे वीरस्नानसे भी श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। हे पुरुषश्रेष्ठ! ब्राह्मविवाहकी विधिके अनुसार कन्या दान करनेसे मनुष्य दासदासी आभूषण चेत्र और गृह आदि पाता है। हे भारत! यज्ञ और उपवासके द्वारा मनुष्य सुरपुरमें गमन करता है, फल फूलसे परमेश्वरको आराधना करनेसे मनुष्य बन्धन छुड़ानेवाला ज्ञान लाभ किया करता है। सोनेकी शौंगसे शोभित करके सहस्र गऊ दान करनेसे मनुष्य स्वर्गके बीच पवित्र देवलोक पाता है, स्वर्गवासी देववृन्द ऐसा ही कहा करते हैं। जो लोग कांसेके दोहनपात्रसे युक्त सुवर्ण भूषित सींगवाली सवत्सा गऊ दान करते हैं, वह गऊ उन्हीं गुणोंके द्वारा उस दान देनेवालेके निकट प्रयोजन सिद्ध करनेवाली होकर स्वयं उपस्थित होती है। गऊके शरीरमें जितने परिमाणसे रोएं रहते हैं, गोदान करनेवाला उतने ही परिमाणसे फल पाता और पुत्र पौत्र लाभ करके परलोकके सात पुरुष पर्य्यन्त कुलका उद्धार करता है। सुवर्णके द्वारा सुन्दर सींगवाली कांसेके दोहन पात्रसेयुक्त द्राविणोत्तरीय तिलगऊ दक्षिणाके सहित जो लोग ब्राह्मणको देते हैं, उनके लिये वसुगणका लोक सुलभ होता है। जब मनुष्य निज कर्मोंसे घोर अन्धकारसे रुककर नरकमें पतित होने लगता है, तब महासागरमें नौकाकी भांति गऊ उसका

उद्धार करते है। जो लोग ब्राह्मविवाहकी विधिके अनुसार कन्यादान करते, जो लोग ब्राह्मणको भूमि प्रदान करते अथवा जो लोग विधिपूर्व्वक अन्न दान करते हैं, उन्हें इन्द्रलोक मिलता है। जो मनुष्य स्वाध्याय, चरित्र और गुणयुक्त ब्राह्मणको सर्व्व गुणमयी गृहकी सामग्री शय्या आदि प्रदान करते हैं, उनका उत्तर कुरुदेशमें निवास हुआ करता है। धूर्य्य प्रदान और गज दान करनेसे मनुष्यको वसुगणोंका लोक मिलता है, सुवर्ण दान स्वर्गका हेतु हुआ करता है और अच्छी रत्तीके परिमाणसे कनकका दान उससे भी श्रेष्ठ है। छत्र-दान करनेसे उत्तम स्थान, उपानह दानसे सवारी और वस्त्र दान करनेसे मनुष्यको सुन्दर रूप प्राप्त होता है और सुगन्धित वस्तु दान करनेसे मनुष्य सुगन्धशाली हुआ करता है। जो मनुष्य ब्राह्मणको फल अथवा फले हुए वृक्ष दान करता है, उसे सहजमें ही स्त्री, समृद्धि और अनेक रत्नोंसे युक्त गृह प्राप्त होता है। ब्राह्मण भोजनके योग्य अन्न और पीने योग्य रस दान करनेवाले मनुष्योंको विधिपूर्व्वक सब रस प्राप्त होते हैं और जो लोग घर छानेकी सामग्री दान करते हैं, उन लोगोंको निःसन्देह वे समस्त उत्तम विषय प्राप्त होते हैं।

हे नरनाथ! जो मनुष्य ब्राह्मणोंको माला, धूप, लगानेको सुगन्ध-और स्नानकी वस्तु दान करता है, वह इस लोकमें परम सौन्दर्य्य लाभ करके रोगरहित हुआ करता है। हे राजन्! जो पुरुष ब्राह्मणको अन्नसे भरा हुआ शय्यायुक्त गृहदान करता है, वह अनेक रत्नोंसे युक्त पवित्र और मनोहर निवासस्थान पाता है। जो लोग ब्राह्मणोंको तकिये और विचित्र बिछावनेके सहित सुगन्धियुक्त शय्या दान करते हैं, उन्हें सहजमें ही रूपवती मनकी हरनेवाली महत्कुलमें उत्पन्न हुई भार्य्या प्राप्त होती है। जो मनुष्य वीरशय्यापर शयन करता है, वह जिससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, उस पितामहके समान होता है,—ऐसा महर्षि लोग कहा करते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुनन्दन युधिष्ठिरने भीष्मके यह समस्त वचन सुनके प्रसन्नचित्त होकर वीरमार्गकी कामना करके आश्रममें वास करनेकी अभिलाष नहीं की। अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ प्रजापति युधिष्ठिर पाण्डवगणसे बोले, कि पितामहने जो कथा कही है, उसमें तुम लोगोंकी रुचि होवे। उस समय पाण्डवगण और यशस्विनी द्रौपदीने युधिष्ठिरके बचनको स्वीकार करके उनका सम्मान किया।

५७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुपुङ्गव भरतश्रेष्ठ! आराम तथा तालाबोंके उत्सर्ग निबन्धनसे जो फल होता है, इस समय आपके निकट मैं उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, इस लोकमें उत्तम देखने योग्य अनेक शास्त्रोंके उत्पत्तिकी मूल विचित्र धातुओंसे विभूषित समस्त प्राणियोंसे युक्त भूमिही श्रेष्ठ रूपसे वर्णित हुआ करती है। वैसी भूमिके चित्र विशेषसे आराम और तड़ाग प्रभृति समस्त जलाशयोंके विषयको मैं क्रमसे कहता हूं और तड़ाग आदि बनानेसे जो फल होते हैं, वह भी कहूंगा। तड़ागवान् मनुष्य तीनों लोकोंके बीच सब स्थानोंमें पूजनीय होते हैं, अथवा मित्र गृह सदृश उपकारक मत्स्य उत्पत्तिके हेतु मैत्र अर्थात् सूर्य्यके प्रीतिपात्र और मित्र अर्थात् देवताओंके विशेष रीतिसे पोषक तड़ागको स्थापन करना बहुत ही कीर्त्तिजनक हुआ करता है। देशके बीच उत्तम रीतिसे बनेहुए महाश्रय तड़ागको मनीषि लोग धर्म्म, अर्थ और कामके फल स्वरूप कहा करते हैं। जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज, इन चार प्रका-

रकी प्राणियोंके पक्षमें तड़ाग उपकार जनक है, तड़ाग आदि सब जलाशय श्रेष्ठ श्री प्रदान करते हैं। देवता, मनुष्य, गन्धर्व्व, पितर, सूर्य्य, राक्षस और समस्त स्थावरोंके लिये जलाशय अवलम्ब हुआ करता है। उस तालावमें स्नान करनेसे जो फल होता है और उस विषयमें ऋषियोंने जिस प्रकार जल प्राप्तिका विषय वर्णन किये हैं, वह भी कहता हूं, वर्षा-कालमें जिसके तालावमें जल रहता है, उसे अग्निहोत्रका फल मिलता है, ऐसा मनीषिवृन्द कहा करते हैं। शरत्कालमें जिसके तालावमें जल रहता है, वह परलोकमें जाके सहस्र गोदानके तुल्य फल पाता है। हेमन्त ऋतुमें जिसका तालाब जलरहित नहीं होता, उसे बहुतसे सुवर्ण दानसे युक्त यज्ञके फल प्राप्त होते हैं। शिशिर कालमें जिसका तालाब जलसे परिपूर्ण रहता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है, पण्डित लोग ऐसा ही कहा करते हैं। जिनके तालाब बसन्तऋतुमें विधिपूर्व्वक सबके अवलम्ब रूप होते हैं, वे अतिरात यज्ञके फल भोग करते हैं। ग्रीष्मकालमें जिसके तालावमें पीनेके लिये जल विद्यमान रहता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है, मुनियोंने ऐसा ही निश्चय किया है। जिसके खोदे हुए तालावमें गऊ और साधु पुरुष सदा जल पीते हैं, उसके समस्त कुलका उद्धार हो जाता है। जिसके तालावमें तृषित गऊ, हरिण, पक्षी और मनुष्य वृन्द जल पीते हैं, उसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है। तालावमें जल पीने, नहाने और विश्राम करनेसे तालावके स्वामीको जो पुण्य होता है, परलोकमें उसके लिये वह अनन्त हुआ करता है। हे तात! जल सहजमें ही दुर्ल्लभ है, विशेष करके परलोकमें वह बहुत ही दुष्प्राप्य है, इसलिये जल प्रदान करनेसे शाश्वती प्रीति होती है। तिल, जल, और दीप दान करो, जाग्रतभावसे निवास करो और स्वजनोंके सङ्ग आमोद करो क्योंकि परलोकमें ये समस्त विषय अत्यन्त दुर्लभ हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! जलदान समस्तदानसे वृहत् तथा विशिष्ट है, इसलिये जलदान अवश्य करना चाहिये। यह सब तालाबके श्रेष्टफल कहे गये, अब वृक्षोंके लगानेका फल कहता हूं। स्थावर प्राणियोंकी छः प्रकारकी जाति कही गई है, उसके बीच अश्वत्थ बट प्रभृति वृक्ष, कुशस्तम्ब आदि गुल्म, वृक्षादिकों पर फैली हुई पाटली आदि लता, पृथ्वीपर पड़ी हुई कूष्माण्ड प्रभृति बल्ली बांस आदित्वक्सार उलप प्रभृति तृण जाति हैं। इन छः प्रकारकी वृक्ष जातिके लगानेसे ये समस्त गुण प्राप्त हुआ करते हैं,—मनुष्य लोकमें कीर्त्ति और परलोकमें शुभ फल मिलता है तथा जो लोग वृक्ष लगाते हैं, उनका पितरोंके सङ्ग एकत्र बास होता है, देवलोकमें जानेपर भी उनका नाम लुप्त नहीं होता। हे भारत! जो लोग वृक्ष लगाते हैं, वे अतीत और अनागत दोनों ओरके पितृवंशका उद्धार किया करते हैं, इसलिये वृक्षोंको लगाना चाहिये। जो पुरुष वृक्षोंको लगाता है, वृक्ष प्रभृतिही निःसन्देह उसके पुत्र बनते हैं,—उनके परलोकमें गमन करने पर उन्हें स्वर्ग तथा समस्त अव्यय लोक प्राप्त होते हैं। हे तात! पृथ्वी पर वृक्ष समूह फूलोंसे पितर और शाखाओंके सहारे अतिथियोंकी पूजा करते हैं। किन्नर, सूर्य्य, राक्षस, देव, गन्धर्व्व और ऋषि प्रभृति सभी लोग वृक्षोंको अवलम्बन किया करते हैं। फूले तथा फले हुए वृक्ष इस लोकमें मनुष्योंको तृप्त करते और परलोकमें पुत्रोंकी भांति वृक्षदाताका परित्राण किया करते हैं, इसलिये कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्य तालावके चारों ओर सदा सुन्दर वृक्षोंको लगावें और उन वृक्षोंको पुत्रकी भांति प्रतिपालन करें क्योंकि वे सब धर्म्म अनुसार पुत्र रूपसे कहे गये हैं। तालाब स्थापन करनेवाला, वृक्ष लगाने-

वाले और जिन ब्राह्मणोंने यज्ञ किये हैं तथा जो सत्यवादी हैं, वे सभी लोग स्वर्गमें निवास किया करते हैं, इसलिये तालाव खुदवाना और बाड़ीमें वृक्ष लगाना चाहिये, विविध यज्ञके सहारे देवताओंको तृप्त करे और सदा सत्य वचन कहे।

५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुश्रेष्ठ! बाहरी वेदोंके बीच जो सब दानके विषय कहे गये, उनमेंसे आपके मतमें विशिष्ट दान कौनसा है? हे प्रभु! उस विषयमें मुझे बहुत ही संशय है, इसलिये जो दान दाताका अनुगमन करता है, आप मेरे समीप उस ही दानका विषय वर्णन करिये।

भीष्म बोले, सब प्राणियोंके विषयमें अभय दान, विपत्कालमें अनुग्रह और प्यासे याचकोंका जो अभिलषित वस्तु दान की जाती है, उसे ही देके दाता दी हुई समझे, वह दान सबसे श्रेष्ठ कहा गया है। हे भरतश्रेष्ठ! जो दान दिये जानेपर दाताका अनुगमन करता है, वह यही है,—जीवोंके विषयमें अभयदान और विपत्कालमें अनुग्रह प्रकाश करनेपर समय और सामर्थ्य होनेपर उपकृत पुरुषका ऋण चुकानेके लिये दाताके अनुगत हुआ करता है। सुवर्ण, गज और पृथ्वी,—इन तीनोंका दान ही पवित्र है, ये पापी पुरुषका भी उद्धार करते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! इसलिये तुम साधुओंको सदा इन्हीं वस्तुओंका दान करो। दान ही केवल सब पापोंसे अवश्य मुक्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। लोगोंको जो जो वस्तुएं इष्ट हों तथा घरके बीच दाताको जो प्यारी वस्तु हों, उन प्रिय वस्तुओंको अक्षय करनेवाले मनुष्योंको योग्य है, कि वे उन्हें गुणवान मनुष्योंको दान करें। प्रियवस्तु देने तथा प्रियकार्य्य करनेवाले पुरुष सदा प्रिय हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर! जो दीन पुरुष दूसरेको समर्थ जानके अनासक्त भावसे उसके समीप प्रार्थना करे, उसे यदि वह शक्तिके अनुसार दान न करे, तो नृशंस कहाता है। शत्रु भी यदि दीन होकर शरणागत होवे, उसपर भी विपत्कालमें जो पुरुष कृपा करता है, वही पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। जो लोग कृश, कृतविद्य, वृत्तिरहित और अवसन्न पुरुषकी क्षुधाकी शान्ति करते हैं, उनके समान पुरुष और कोई भी नहीं है। हे कुन्तीपुत्र! निज धर्ममें रत साधु, पुत्र और भार्य्या आदिसे कर्षित तथा अयाचक मनुष्यका सब प्रकारके उपायसे निमन्त्रण करे। हे भारत! जो लोग देवता और मनुष्योंके निकट कुछ आशा नहीं करते उन पूजनीय सदा सन्तुष्ट और प्राप्त हुई वस्तुसे जीविका निबाहनेवाले विषैले सर्पके समान ब्राह्मणोंसे अपनी रक्षा करो वैसे ब्राह्मण और उत्तम ऋत्विकोंके भावको जानके जो कार्य्यको करनेमें समर्थ हो, वैसे मनुष्यके द्वारा पूछके निमन्त्रण करना।

हे कौरव! सर्व्वकाम सुखप्रद प्रेष्य और परिच्छदके सहित आश्रम प्रभृति प्रदान करके उन पुरुषोंको निमन्त्रण करना योग्य है। हे युधिष्ठिर! यदि वे पुण्यकर्म्मशील धार्म्मिक पुरुष श्रद्धाके सहित उन वस्तुओंको ग्रहण करें, तो वे धर्म्मार्थ ही धर्म्म किया करते हैं। जो लोग विद्यास्नात, व्रतस्नात तथा जो स्वामीके आसरेगीर न होकर जीवन धारण करनेकी अभिलाष करते हैं, जिनके स्वाध्याय और तपस्या अत्यन्त गूढ़ तथा जो संशितव्रती हैं, उन पापरहित जितेन्द्रिय निज स्त्रीमें ही सन्तुष्ट रहनेवाले ब्राह्मणोंका यदि तुम उपकार करोगे, तो तुम्हारा वह कल्याण लोकमें विधुत होवेगा। जैसे सन्ध्या और सवेरेके समय द्विजातियोंके अग्निहोत्र उत्तम रीतिसे जलते रहते हैं, वैसे ही संयतचित्तवाले ब्राह्मणोंको जो दान

किया जाता है, वह वैसा ही है। हे तात! तुम्हारे समीप श्रद्धायुक्त सदक्षिणा यज्ञका विषय कहा गया, यही सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ है। तुम दाता हो, इसलिये तुम्हारे समीप सदा ये यज्ञ वर्त्तमान रहें। हे युधिष्ठिर! वैसे ब्राह्मणोंको जो दान किया जाता है, वह पितृतर्पणके समान है. उन लोगोंके अवलम्बसे वास करो और उनकी पूजा करो, तो देवताओंके समीप अऋण होगे। जो ब्राह्मण प्रियवादी होते हैं, वे कदापि क्रोध नहीं करते और तृणमात्र भी लोभ नहीं करते, वेही हमारे लिये अत्यन्त पूजनीय हैं। ये लोग निःस्पृह हैं, इसलिये दाताका बहुमान नहीं करते और अन्य विषयमें भी प्रवृत्त नहीं होते, वे लोग पुत्रकी भांति सब प्रकारसे प्रतिपालन करने योग्य हैं, उन्हें नमस्कार करता हूं, उनके ही प्रसन्न तथा क्रुद्ध होनेपर स्वर्ग और नरक दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं। ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य्य और शिष्यके विषयमें वत्सल वेदज्ञ ब्राह्मण क्षेत्रके सहित सख्त होनेसे उनका तेज शान्त होता है, शान्त द्विजमें दीप्यमान तेज सदा स्थित रहता है। हे युधिष्टिर! 'मेरे धन है, मैं बलवान हूं, मैं राजा हूं"—ऐसा अभिमान करके ब्राह्मणोंको परित्याग करके पहरने और खानेकी वस्तुओंको स्वयं भोग न करना। हे पापरहित! तुम्हारे बल तथा शोभाके लिये जो धन है, तुम निज धर्म्मका अनुष्ठान करते हुए उस धनके सहारे ब्राह्मणोंकी पूजा करो। ब्राह्मण किसी प्रकारके रूपसे क्यों न वर्त्तमान रहें, वे अवश्य ही तुम्हारे नमस्कारके योग्य हैं, तुम्हारे समीप वे लोग पुत्रकी भांति उत्साहके अनुसार यथायोग्य सुख पावें। हे कुरुसत्तम! तुम्हारे अतिरिक्त कौन पुरुष अक्षय सुख देनेवाले, थोड़ेमें ही सन्तुष्ट सुहृदोंके लिये वृत्ति देनेमें समर्थ होगा? जैसे स्त्रियोंके सनातन धर्म्मका पति ही अवलम्ब है तथा उनके लिये जैसे दूसरी गति नहीं है, हमारे लिये ब्राह्मणवृन्द भी वैसे ही हैं। हे तात! क्षत्रियोंका दारुण कर्म्म देखकर ब्राह्मण लोग अपूजित होके यदि हमें परित्याग करें, तो ब्राह्मणाश्रयके बिना वेदरहित यज्ञहीन लोकनिन्दित वृत्तिरहित क्षत्रियोंके जीनेका क्या प्रयोजन है? हे राजन्! इस विषयमें जो सनातन धर्म्म है, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं। ऐसी जनश्रुति है, कि पहले समयमें क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंकी सेवा की थी, वैश्य क्षत्रियोंकी और शूद्र वैश्योंकी सेवा करते थे। शूद्र दूरसे जलती हुई अग्निकी भांति ब्राह्मणकी सेवा करे। क्षत्रिय और वैश्य छूके ब्राह्मणोंकी सेवा करें। कोमलता, सत्यशीलता और सत्यधर्म्मके पालन निबन्धनसे उन क्रुद्ध सर्पसदृश ब्राह्मणोंकी सेवा करो। अन्य श्रेष्ठ जातियोंसे श्रेष्ठ होकर तेज और बलके सहारे जो क्षत्रिय प्रतापी हुए हैं, ब्राह्मणोंके समीप उन क्षत्रियोंकी तपस्या और तेज शान्त होजाते हैं।

हे तात महाराज! हमारे लिये पिता, तुम, पितामह, आत्मा और जीवन भी ब्राह्मणोंके समान प्रिय नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! पृथ्वीपर मेरे लिये तुमसे बढ़के प्यारा और कोई नहीं है, परन्तु ब्राह्मण लोग तुमसे भी अधिक प्रिय हैं। हे पाण्डुनन्दन! जो मैं यह सत्य वचन कहता हूं, तो उस ही सत्यके सहारे उन लोकोंमें गमन करूंगा, जहांपर मेरे पिता शान्तनु निवास करते हैं। मैं ब्रह्मलोक प्रभृति सैकड़ों लोकोंको देख रहा हूं, सदाके लिये शीघ्र ही वहां गमन करूंगा। हे भरतसत्तम महाराज! मैंने ऐसे लोकोंको देखकर ब्राह्मणोंके विषयमें जो कार्य्य किया है, उस ही कारणसे इस समय परिताप नहीं करता।

५९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, यदि दो ब्राह्मण समान आचार, जन्म और विद्यामें सदृश हों, उनमेंसे एक याचक और दूसरा अयाचक हो, तो उन दोनोंमेंसे किसे दान करनेसे विशेष फल होता है?

भीष्म बोले, हे पार्थ! याचककी अपेक्षा न मांगनेवाले ब्राह्मणको दान करना कल्याणकारी है, धीरज रहित दीनकी अपेक्षा धैर्यशाली पूजनीय है। रक्षा करना ही क्षत्रियोंका धैर्य है और न मांगनाही ब्राह्मणोंका धैर्य है, सन्तुष्ट चित्त धृतिमान् विद्वान ब्राह्मण देवताओंको सन्तुष्ट किया करते हैं। हे भारत! दरिद्र पुरुषके यांचनेकोही पण्डित लोग तिरस्कार कहते हैं, जब मनुष्य जांचते हैं, तब वे दस्युकी भांति उद्वेगजनक हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर! मांगनेवाले, मनुष्य ही मरे हुएके तुल्य हैं, देनेवाला कदापि नहीं मरता, दाता दान करते हुए याचक तथा अपनेको जीवित करता है। याचक पुरुषोंको जो वस्तु प्रदानकी जाती है, वह अनृशंसताही परम धर्म है, बिना जाचे जो लोग अवसन्न होरहे हों, उन्हें जिस उपायसे हो सके निमन्त्रण करना योग्य है। यदि वैसे श्रेष्ठ द्विज तुम्हारे राज्यमें बास करें, तो तुम यत्न पूर्व्वक उन्हें छाईसे छिपी हुई अग्निकी भांति जानना। हे कुरुवंशावतंस! तपस्याके सहारे दीप्यमान ब्राह्मण यदि पुजित न हों, तो वे इस पृथ्वीको जला सकते हैं, इसलिये वैसे पुरुष अवश्य पूजाके योग्य हैं। हे शत्रुतापन! वे लोग ज्ञान, विज्ञान, तपस्या और योग युक्त होनेसेही पूजनीय हैं, इसलिये उन ब्राह्मणोंकी पुजा करना। वेदविद्या व्रतसे युक्त अयाचक ब्राह्मणोंके निकट जाके अनेक प्रकारसे धन प्रभृति दान करनेसे पुरुष दाता होता है, सन्ध्या और भोरके समय अग्निहोत्रमें होम करनेसे जो फल होता है, उन्हें दान करनेसे वैसा ही फल कहा गया है। हे कौन्तेय! जो लोग विद्यास्नात, वेदस्नात, व्रतस्नात और स्वामीके आसरेमें रहके जीविका निर्व्वाहकी इच्छा नहीं करते, जिनके निज शाखोक्त वेदपाठ और तपस्या अत्यन्त गूढ़ है, उन संशितव्रती ब्राह्मणोंको बने हुए मनोहर आश्रम, वस्त्र सेवक तथा दूसरी समस्त आवश्यकीय वस्तुओंके द्वारा निमन्त्रण करे।

हे युधिष्ठिर! वे सूक्ष्मदर्शी धर्म्मज्ञ ब्राह्मण लोग कर्त्तव्य कार्य्य जानके श्रद्धापूर्व्वक दान प्रतिग्रह किया करते हैं, वैसेही ब्राह्मणोंके भोजन करनेके अनन्तर घर जानेपर जिनकी स्त्रियां जांचनेवाले बालकोंको निज स्वामीके आनेपर "खानेको दूंगी,"—ऐसा कहके धीरज दिया करती हैं, वैसे ब्राह्मणोंको निमन्त्रण करे। हे तात! प्रातःकालमें सदा ब्रह्मचारी ब्राह्मण अन्न भोजन करते हुए गार्हपत्य आवहनीय और दक्षिणाग्नि, इन तीनों अग्नियोंको प्रसन्न करते हैं। हे तात! दिनके मध्यानमें तुम यज्ञ करते हुए गऊ, सुवर्ण और वस्त्र दान करो, उससे इन्द्र तुमपर प्रसन्न होंगे, हे युधिष्ठिर! तीसरी बार सन्ध्याको वैश्वदेव करना चाहिये जोकि देवता, पितर और ब्राह्मणोंको प्रदान किया जाता है। सब प्राणियोंके विषयमें अहिंसा, भाग्यके अनुसार संविभाग, दम, त्याग, धृति और सत्य तुम्हारे अवभृतके निमित्त हुआ करते हैं। यह तुम्हारे निकट श्रद्धायुक्त सदक्षिणा यज्ञका विषय कहा गया, यही सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ है। हे तात! तुम्हारी इस यज्ञमें सदा प्रवृत्ति होवे।

६० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! इस लोकमें दान और यज्ञ करनेसे परलोकमें महाफल होता है, परन्तु इन दोनोंके बीच किसका फल श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है? कैसे पुरुषोंको दान करना चाहिये और किस प्रकारसे किस

समयमें यज्ञ करना उचित है? हे भारत! इसे मैं यथार्थ रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं। हे विद्वन्! मैं यही पूछता हूं, मुझे समस्त दान धर्म्मका उपदेश करिये। हे तात! अनृशंस पुरुषोंके द्वारा अन्तर्व्वेदिके बीच श्रद्धा पूर्व्वक जो दिया जाता है, क्या वही कल्याणकारी हुआ करता है? इसही विषयको मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! क्षत्रियोंमें सदा ही रौद्र कर्म्म रहते हैं, इसलिये दान ही उनके निमित्त पवित्र यज्ञ है। साधु पुरुष पाप करनेवाले, राजाओंका दान नहीं लेते, इसलिये राजा दक्षिणायुक्त यज्ञ करे। यदि राजा परम श्रद्धाके सहित प्रतिदिन दान करे और ब्राह्मण लोग उसे प्रतिग्रह करें, तो वही परम पवित्र दान है। सब प्राणियोंके अभयदाता वेदज्ञ, शील, सद्वृत्त और तपस्यायुक्त ब्राह्मणोंको तृप्त करके शेषमें यज्ञविषयमें यतव्रती होवे, ब्राह्मण लोग यदि तुम्हारा दान ग्रहण न करेंगे, तो तुम्हें सुकृत न होगा; इसलिये सुकृतके निमित्त यज्ञ करो और साधुओंको दक्षिणाके सहित सुस्वादु अन्न दो। दानकर्म्मके सहारे अपनेको यज्ञ करनेवाला तथा दाता जानो, क्योंकि दान ही यज्ञ आदिके अन्तर्भूत होता है। यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंकी पूजा करो और उन्हें दान करनेसे तुम भी उनके यज्ञमें सदा अनन्त कल्याणलाभके अंशभागी होगे। प्रजावान् पुरुष अनेक कार्य्य करनेवाले ब्राह्मणोंका भरण करें, तो वे प्रजावान होंगे, साधु लोग ही समस्त साधुकर्म्मोंकी वृद्धि करते हैं, इसलिये जो मनुष्य बहुतसे उपकार किया करते हैं, राजाको योग्य है, कि उन लोगोंका सब प्रकारसे भरण करे। हे भरतवंशावतंस युधिष्ठिर! तुम समृद्धियुक्त हो, इसलिये याचक ब्राह्मणोंको गऊ, गाड़ीमें जुतने योग्य बैल, अन्न, छाता, वस्त्र, जूता, घृत, बहुतसी भोजनकी वस्तु, घोड़ेयुक्त सवारी, गृह और शय्या प्रभृति दान करना। हे भारत! निन्दा न जानके वृत्तिकर्षित ब्राह्मणोंको ये सब समृद्धियुक्त विषय दान करने योग्य हैं। प्रच्छन्न वा प्रकाश्य भावसे वृत्ति दान करके ब्राह्मणोंको प्रतिपालन करना उचित है, क्षत्रियोंके लिये यह कार्य्य अश्वमेध और राजसूय यज्ञसे भी श्रेष्ठ है। इस ही प्रकार तुम पापोंसे छूटके तथा पवित्र होके स्वर्गलोक पाओगे; तुम फिर कोश सञ्चय करके राज्य पालन करोगे, उसहीके सहारे तुम्हें समस्त धन और ब्राह्मणत्व प्राप्त होगा। हे भारत! तुम अपनी और दूसरेकी वृत्तिकी रक्षा करो, पुत्रकी भांति निज सेवक और प्रजा समूहको प्रतिपालन करो। हे भारत! ब्राह्मणोंमें सदा तुम्हारा योगक्षेम रहे, तुम्हारा जीवन ब्राह्मणोंके निमित्त ही व्याप्त होवे। उन लोगोंके प्रतिपालन करनेमें कदापि विरत न होना, यह जो उत्तम धनकी महान राशि है, वह तुम्हारा नहीं वरन ब्राह्मणोंका ही धन है। सदा सम्पत्तिका सहवास मनुष्योंको अभिमान और मोहसे मुग्ध करता है, ब्राह्मणोंके विमूढ़ होनेपर निश्चय ही धर्म्म नष्ट होता है, धर्म्मके नष्ट होनेपर निःसन्देह प्राणियोंका अभाव हुआ करता है। जो राजा संग्रहके अनन्तर लोगोंको धन दान करके शेषमें यज्ञके लिये "उसी राज्यसे धन लाओ" ऐसा वचन कहके राष्ट्र-लोप करता है तथा जो आज्ञानुसार धनवान पुरुषोंके द्वारा प्राप्त हुए उस दारुण धनको लेकर यज्ञ करता है, साधुजन उसके वैसे यज्ञकी प्रशंसा नहीं करते। जो सब अत्यन्त धनवान पुरुष अपीड़ित होकर अनुकूल भावसे देवें, वैसे ही उपायके सहारे यज्ञ करना उचित है, प्रजाको पीड़ित करके यज्ञ करना योग्य नहीं है। इसलिये यह उचित है, कि जब प्रजाओंके हितकरनेवाला राजा प्रजा समूहके धनसे अभिषिक्त हो, तब अनेक दक्षिणायुक्त महायज्ञके द्वारा याग करे। बूढ़े, बालक

और कृपापात्र अन्धोंके धनकी रक्षा करनी चाहिये और सूखा पड़नेपर जो लोग कूआं खोदके खेतके धान्यको सींचते हैं, उनके और रुदन करनेवालोंके धन यज्ञके लिये हरना उचित नहीं है। जो राजा कृपणकी भांति व्यवहार करता है, वही व्यवहार उसके राजश्रीको विनष्ट करता है, इसलिये राजा उत्तम महत् भोग्यवस्तु दान करे और साधुओंकी क्षुधा तथा भय दूर करे। बालकवृन्द जिसके भोजनकी सुस्वादु वस्तुओंको केवल देखा ही करते हैं, कदापि पाते नहीं, अथवा विधिपूर्वक भोजन नहीं कर सकते, उससे अधिक दूसरा पातकी कौनसा है? तुम्हारे ऐसे राज्यमें विद्वान् ब्राह्मण यदि क्षुधाके द्वारा अवसन्न होंगे, तो मानो तुम अत्यन्त पाप करके भ्रूणहत्या अपराधका फल पाओगे। राजा शिविने ऐसा कहा है, कि जिसके राज्यमें ब्राह्मण अथवा अन्य कोई मनुष्य क्षुधासे खिन्न होता है, उस राजाके जीनेको धिक्कार है। जिस राजाके राज्यमें स्नातक ब्राह्मण क्षुधासे अवसन्न होते हैं, उसके राज्यकी वृद्धि नहीं होती और इकबारगी बहुतसे राजा एकत्र होके उसके विपक्षी बनते हैं। जिसके राज्यमें रोनेवाले पति और पत्रोंके बीचसे रुदन करती हुई स्त्री हरी जाती है, वह राजा मरे हुएके तुल्य है, उस समय वह जीता नहीं है। अरक्षित, हर्त्ता, लोपकर्त्ता, अनायक और निकृष्ट कलि समान राजाका प्रजा एकत्र होके नाश करे। मैं तुम लोगोंका रक्षक हूं। ऐसा वचन कहके जो राजा रक्षा नहीं करता, उस उन्मत्त तथा आतुर राजाको प्रजा इकट्ठी होके कुत्तेकी भांति मार डालती है।

हे भारत! प्रजा राजासे अरक्षित होनेपर जो कुछ पाप करती है, राजा उसमेंसे चौथा भाग ग्रहण करता है। कोई कहते हैं, प्रजाका किया हुआ समस्त पाप राजाको लगता है, कोई कहते हैं, आधा हिस्सा मिला करता है, मनुकी आज्ञा सुनके चौथा भाग ही मुझे अभिमत है। हे भारत! राजासे सुरक्षित प्रजा जो सब शुभ कर्म्म करती है, उस पुण्यमें भी उसे चतुर्थ भाग प्राप्त होता है। हे युधिष्ठिर! तुम जीवित रहो, प्रजा तुम्हारी अनुजीवी होवे। जैसे समस्त प्राणी जलके, पक्षीवृन्द महावृक्षके, राक्षसगण कुवेरके और देववृन्द महेन्द्रके अनुजीवी होते हैं, वैसे ही स्वजन और सुहृद्गण तुम्हारे अनुजीवी होवें।

६१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, यह देय है, यह दातव्य है, इस ही प्रकार श्रुति अत्यन्त आदरके सहित दानकी विधि कहा करती है; राजा लोग बहुतेरे कुटुम्बका भरण करते हैं, उनके लिये सबसे श्रेष्ठ दान कौनसा है?

भीष्म बोले, सब दानोंमें भूमिदान सबसे श्रेष्ठ है, अचला और अचला भूमि समस्त उत्तम कामना पूरण किया करती है। वस्त्र, रत्न, व्रीहि यव प्रभृतिको पृथ्वीही दोहन किया करती है, इसलिये भूमि देनेवाला सब प्राणियोंके बीच सदा ही वर्द्धित होता है। हे युधिष्ठिर! इस लोकमें जबतक भूमि विद्यमान रहती है, भूमि दान करनेवाला उतने समय पर्य्यन्त वर्द्धित होता है; इसलिये भूमिदानसे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। हमने सुना है, कि सबके बीच बहुत ही थोड़े लोग भूमिदान किया करते हैं, वे भूमि भोग करनेमें समर्थ होते हैं। पुरुष इस लोक और परलोकमें निज कर्म्मको ही उपजीव्य करके जीवन बिताता है, महादेवी पृथ्वी भूमिदाताको अपना पति किया करती है। हे राजसत्तम! जो लोग इस अक्षया भूमिको दक्षिणामें दान करते हैं, वे फिर मनुष्यत्व लाभ करके पृथ्वीपति होते हैं। जैसा देगा वैसा ही भोग प्राप्त होगा, यह

धर्म्मशास्त्रसे निश्चय है, चाहे संग्राममें शरीर परित्याग करे, अथवा इस पृथ्वीको दान करे। पण्डित लोग इसी हो चलवस्तुओंको परम श्री कहते हैं, मैंने सुना है, कि दान की हुई पृथ्वी दाताको पवित्र करती है। पाप करनेवाले व्रतघ्न और मिथ्यावादी मनुष्योंको पापसे पृथ्वी ही उद्धार करती है और वही उन लोगोंको पापोंसे मुक्त किया करती है। साधुजन पापाचारी राजाओंके भूमिदानको ही प्रतिग्रह करते हैं, अन्यधन ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करते, क्यों कि पृथ्वीही सबको पवित्र करनेवाली तथा सबकी जननी है। पृथ्वी देवीका सनातन गूढ़ नाम प्रियदत्ता है, प्रियके द्वारा दत्ता अथवा प्रिय पुरुषोंको दत्ता, इन दोनों भांतिके अर्थ अनुसार लोग इसे दान किम्वा आदान करते हैं। इसलिये तुम भूमिदान करके पहले पृथ्वीके प्रियपात्र बनो। जो पृथ्वीपति विद्वान् पुरुषको भूमिदान करता है, वह राजा इस लोकमें पृथ्वीके बीच अभिलषित राज्य पाता है, फिर वही दाता दूसरे जन्ममें राजाके समान होता है, इसमें सन्देह नहीं है। हे महाराज! इसलिये भूमि प्राप्त होते ही उसे ब्राह्मणोंको दान करना उचित है, जो भूमिपति नहीं है वह किसी प्रकार पृथ्वी पर निवास करनेमें समर्थ नहीं होता, अपात्रको दान करना उचित नहीं, अपात्र पुरुषको भूमिदान लेना भी अनुचित है और अपने दिये हुए स्थानमें विचरना भी अयोग्य है। दूसरे जो कोई पुरुष भूमिलाभकी इच्छा करें, वे निःसन्देह इस ही प्रकार करें। जो लोग साधु पुरुषोंको भूमि अन्याय पूर्व्वक लेते हैं, वे कभी भी भूमि नहीं पा सकते। साधुओंको भूमिदान करनेसे उत्तम भूमि मिलती है, धर्म्मात्मा मनुष्यको इस लोक और परलोकमें महत् यश प्राप्त होता है। हे महाराज! साधु लोग जिसके भूमिकी सदा प्रशंसा किया करते अर्थात् कहा करते हैं, कि एक पुरुषकी दी हुई भूमिमें निवास किया करता हूं, उसके शत्रुगण वसुन्धराकी प्रशंसा नहीं करते। पुरुष जीविकाके लिये क्लेशित होकर जो कुछ पाप करता है, वह गोचर्म्म परिमाणसे भी भूमि दान करने पर पापसे छूट जाता है। जो सब राजा संक्रुद्ध अथवा भयङ्कर कर्म्म करते हैं, उनके निकट सबसे उत्तम पवित्र भूमिदानका विषय वर्णन करना चाहिये। प्राचीन लोग वक्ष्यमाण दोनों विषयोंका अल्प ही अन्तर जानके कहा करते हैं, कि अश्वमेध यज्ञ करे अथवा साधु पुरुषोंको भूमिदान करे। पण्डित लोग सुकृत करके किसी भांति यदि शंकित हों, तौभी अनुत्तम भूमि दान करना उनके लिये बहुत ही अशक्य कार्य्य है। महाबुद्धिशाली मनुष्य भूमि दान करनेसे सोना, रूपा, वस्त्र, मणि, मोती और समस्त धन दानका फल पाते हैं। तपस्या यज्ञ श्रुतिशील अलोभ सत्यसन्धता गुरुपूजा और देवपूजा, ये सब भूमिदाताका अनुसरण करते हैं। जो लोग स्वामीके मङ्गल कामनासे नियुक्त होके शरीर त्यागते अथवा युद्धमें मरके ब्रह्मलोकमें जाकर सिद्ध होते हैं, वेभी भूमिदाताको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं हैं, जैसे माता अपने पुत्रको सदा दूध पिलाके पालती है, वैसे ही पृथ्वी सब रसोंके द्वारा दाताके विषयमें अनुग्रह किया करती है। मृत्यु, कालदण्ड, अत्यन्त प्रचण्ड अग्नि और समस्त घोर दारुण पाप भूमिदाताके समीप जानेमें समर्थ नहीं होते। जो शान्तचित्तवाले मनुष्य भूमिदान करते हैं, वे पितृलोक निवासी पितर और देवलोकवासी देवताओंको पूर्णरीतिसे परितृप्त किया करते हैं। कृश, म्रियमाण, वृत्तिके लिये ग्लानियुक्त और अवसन्न पुरुषोंको जीविकाके योग्य भूमिदान करनेसे मनुष्य यज्ञफलका अधिकारी होता है। हे महाराज! जैसे सवत्सा गऊके स्तनसे दूध गिरता है और वह बछड़ेकी ओर

दौड़ती है, वैसे ही भूमिदाताकी ओर भूमि गमन करती है। हलसे जोती हुई बीजयुक्त और फलशालिनी भूमि तथा महत् गृहदान करनेसे मनुष्य कामदाता होता है। व्रतियुक्त आहिताग्नि और पवित्र व्रत करनेवाले ब्राह्मणको भूमिदान करनेसे मनुष्य परम पद पाता है। जैसे प्रतिदिन चन्द्रमाकी वृद्धि होती है, वैसे ही भूमिदान प्रतिशस्योंमें बर्द्धित हुआ करता है। इस विषयमें प्राचीन पण्डित लोग भूमि-गीताकी समस्त गाथा कहा करते हैं, जिसे सुनके जामदग्न्य रामने कश्यपको भूमिदान किया था। "हमेंही ग्रहण करो, हमें ही दान करो, हमें ही दान करके मुझे ही पाओगे" इस लोकमें जो दान किया जाता है, परलोकमें फिर वही मिलता है।

जो ब्राह्मण इस वेदतुल्य व्याहृतिको जानता है, वह क्रियमाण श्राद्धसे ब्रह्मत्व अर्थात् वृहत् फल पाता है। यही अनन्त प्रबल मन्त्रमयी मारणके निमित्त शक्ति सबके घोर पापोंको नष्ट करती है। जो लोग भूमिदान करके प्रायश्चित्त करते हैं, वह पहले और पीछेके दश पुरुषोंको पवित्र किया करते हैं, और जो लोग इस वेदवाक्यको जानते हैं, वे भी ऊपर कहे हुए दश पुरुषोंको पवित्र करते हैं। जगत्में मनुष्योंकी सम्बन्धिनी भूमि ही सब प्राणियोंकी प्रकृति रूपसे सम्मत हुई है। राजाको अभिषेक करते ही यह शास्त्र उसे सुनावे, जिसे सुनके राजा भूमि दान करे और साधु पुरुषोंको भूमि न लेवे। यह भूमि दान विषयक शास्त्र ब्राह्मणों और राजाओंके लिये वर्णित हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। धर्म्म जाननेवाला राजा ही पहले ऐश्वर्य-सूचक भूमि दान करे। जिन लोगोंका राजा अधर्म्मज्ञ और नास्तिक होता है, वे सुखसे सावधान तथा सुखी नहीं होते; मनुष्य उसके दुश्चरित्रोंसे अत्यन्त व्याकुल होते हैं, बहुतेरे योगक्षेमसमर्थ पुरुष उसके राज्यमें वास करनेकी इच्छा नहीं करते। और जिनका राजा बुद्धिमान तथा धार्म्मिक होता है, वे लोग सुखसे जागते और परम सुखसे सोते हैं। उस राजाके पवित्र राज्यमें शुभकर्म्मोके सहारे मनुष्योंकी निवृत्ति हुआ करती है, योगक्षेम पुरुष वृष्टि तथा निज कर्म्मके द्वारा विशेष रीतिसे बर्द्धित होता है। जो लोग भूमिदान करते हैं, वेही कुलीन, वेही पुरुष, वेही बन्धु, वेही पुण्य करनेवाले, वेही बलवान् और वेही दाता होते हैं। जो लोग वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको अधिक भूमि दान करते हैं, वे भूमण्डलपर तेजपुञ्जके सहारे सूर्य्यकी भांति प्रकाशित होते हैं। भूमिमें पड़ा हुआ अन्न जैसे अंकुररूपसे उत्पन्न होता है, वैसे ही भूमिदानसे अर्ज्जित सब कामना पूर्ण हुआ करती हैं। सूर्य्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अग्नि और भगवान् शिव भूमिदाताको अभिनन्दित करते हैं। मनुष्य भूमिपर ही जन्मते और भूमि ही पर पञ्चत्वको प्राप्त होते हैं, इसलिये वे जरायुज आदि चार प्रकारके जीव मात्र ही पार्थिव गुणमय हैं। हे पृथ्वीनाथ महाराज! यह पृथ्वी ही जगत्की माता और पिता है, इसलिये इसके समान कोई भी नहीं है। हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें बृहस्पति और इन्द्रके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। देवराज इन्द्रने उत्तम महत् दक्षिणायुक्त एक सौ यज्ञ करके वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ बृहस्पतिसे यह बक्ष्यमाण बचन कहा था।

इन्द्र बोले, हे वक्तृवर भगवन्! कौन वस्तु दान करनेसे स्वर्गसे भी अधिक सुख-समृद्धि होती है, तथा जो दान महार्घ और अक्षय हो, आप उसे बर्णन करिये।

भीष्म बोले, अनन्तर देवताओंके पुरोहित महातेजस्वी बृहस्पतिने इन्द्रका ऐसा बचन सुनकर उन्हें उत्तर दिया।

बृहस्पति बोले, हे वृत्रनाशन महाप्राज्ञ!

मनुष्य सुवर्ण दान, गज दान और भूमि दान करके पापसे छूटते हैं। हे देवेन्द्र! पण्डित लोग जैसा कहा करते हैं, उसके अनुसार मैं भूमि दानसे बढ़के किसी दानको भी विशिष्ट वा श्रेष्ठ नहीं जानता। हे देवश्रेष्ठ! जो सब युद्धके अभिलाषी शूर पुरुष संग्राममें मरके स्वर्गमें गये हैं, वे भूमिदाताका अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। स्वामीके कल्याणके लिये नियुक्त होके युद्धमें मरकर जो लोग शरीर त्यागनेपर ब्रह्मलोकमें जाकर मुक्त हुए हैं, वे भी भूमिदाताको उत्क्रमण करनेमें समर्थ नहीं हैं। जो पुरुष भूमिदान करता है, वह पहिलेके पांच और पीछे भूमिपरके छः—इन ग्यारह पुरुषोंका परित्राण किया करता है। हे इन्द्र! जो रत्नपूरित पृथ्वी दान करता है, वह सब पापोंसे छूटके स्वर्ग लोकमें निवास करता है। हे महाराज! सर्व्वकामना पूर्ण करनेवाली गुण-युक्त बहुत सी भूमिको दान करनेवाला मनुष्य राजाधिराज होता है, इसलिये भूमिदान ही सबसे श्रेष्ठ है। हे इन्द्र! जो लोग सर्व्वकामना पूर्ण करनेवाली भूमि दान करते हैं, उनके समीप सब प्राणी ऐसा जानते हैं, कि हमें दान करता है। हे सहस्राक्ष! जो मनुष्य सर्व्वदुघा और सब प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली गुणयुक्त गज दान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। हे सुरेन्द्र! मधु और घृत प्रवाहिनी, दूध तथा दहीसे बहती हुई नदियां इसलोकमें भूमि दान करनेवाले मनुष्योंको तृप्तियुक्त किया करती हैं, राजा भूमिदान करनेपर सब पापोंसे मुक्त होता है, भूमि दानसे बढ़के अन्य दान श्रेष्ठ नहीं है। जो लोग शस्त्रनिर्ज्जित समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वी प्रदान करते हैं, यह पृथ्वी जबतक रहेगी, तबतक उनका नाम लिया जायगा।

हे इन्द्र! जो लोग पवित्र मृदुरसशालिनी भूमि दान करते हैं, उनके भूमिदानसे समस्त गुणान्वित लोक नष्ट नहीं होते। हे इन्द्र! तुम तथा सुखकी इच्छा करनेवाले राजा सदा सत्पात्रको विधिपूर्व्वक भूमि दान करें, जैसे सर्प अपनी पुरानी केचुलीको छोड़ देता है, वैसे ही मनुष्य पापकर्म्म करके भी द्विजातियोंको भूमि-दान करनेसे उस पापसे मुक्त हुआ करता है। हे इन्द्र! जो मनुष्य भूमि दान करता है, वह समुद्र, नदी, पर्व्वत और बन, इन सबको ही दान किया करता है। जो लोग भूमि दान करते हैं, वे तड़ाग, उपदान स्रोत, तालाब, स्नेह और समस्त रस दान किया करते हैं। जो लोग पृथ्वी दान करते हैं; वे वीर्य्यसम्पन्न औषधि फूल फलसे युक्त वृक्ष, बन और पत्थरोंसे युक्त पहाड़ोंको दान किया करते हैं। भूमि दान करनेसे जो फल मिलता है, अग्निष्टोम प्रभृति आप्त दक्षिणायुक्त यज्ञ करनेसे वैसा फल नहीं प्राप्त हो सकता। भूमिदाता दश पुरुषोंको तारता है और भूमि हरनेवाला दश पुरुषोंको नष्ट किया करता है, जो पुरुष पहलेकी दी हुई भूमिको हर लेता है, वह नरकमें जाता है। जो पुरुष कहके दान नहीं करता और दान करके फिर उसे हर लेता है, वह बरुणके पाशमें बधके मृत्युके शासनसे परितापित होता है। जो लोग हिताग्नि, सदा यज्ञ करनेवाले, कृशवृत्ति और अतिथिप्रिय श्रेष्ठ द्विजकी सेवा करते हैं वे यमके निकट नहीं जाते। हे इन्द्र! राजा ब्राह्मणोंके समीप अनृण होवे इतर बर्णोंके बीच, कृश और दुर्ब्बलोंका परित्राण करें। हे सुरश्रेष्ठ त्रिदशेश्वर! कृशवृत्तियुक्त ब्राह्मणको दूसरेने जो भूमि दान की हो, उसे कदाचित आक्षेपपूर्व्वक ग्रहण न करे। दीन हीन दुखिये ब्राह्मणोंकी भूमि हरनेसे उनके जो आंसू गिरते हैं, वे तीन पुरुष पर्य्यन्तवंशको विनष्ट करते हैं। हे सहस्राक्ष! राज्यच्युत भूपतिको जो मनुष्य फिर राज्यपर स्थापित करता है, उसका स्वर्गलोकमें निवास होता है। जो पुरुष दूध और गेहूं आदिसे परिपूरित, गज

घोड़े प्रभृति वाहनोंसे युक्त, बाहुबलसे उपार्ज्जित रत्नगर्भा और सब रत्नोंसे युक्त पृथ्वी दान करते हैं, उन्हें समस्त अक्षयलोक प्राप्त होते हैं, वही उनका भूमियज्ञ है। जो लोग पृथ्वीदान करते हैं, वे सब पापोंसे छूटके रजोगुणसे रहित और साधु सम्मत होकर उनके लोकमें निवास किया करते हैं। हे इन्द्र! जैसे जलमें डालनेसे तेलकी बूंद दूरतक फैलती है, वैसेही भूमिदानका पुण्य प्रति शस्योंके सङ्ग बर्द्धित हुआ करता है। हे सुरराज! जो सब युद्धमें शोभित शूरवीर राजा सम्मुख संग्राममें मरते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाते हैं, उनके समीप जिसप्रकार दिव्य मालासे विभूषित नृत्य, गीतमें निपुण स्त्रियां उपस्थित होती हैं भूमिदान करनेवालेकी भी सुरलोकमें उस ही प्रकार वे सब उपासना किया करती हैं। जो पुरुष इसलोकमें विधिपूर्व्वक ब्राह्मणोंको भूमिदान करता है, वह सुरपुरमें देवताओं और गन्धर्व्वोंसे पूजित होकर सुखसे प्रसन्न होता है। हे देवेन्द्र! ब्रह्मलोकमें भूमिदाताके निकट सैकड़ों अप्सरा उपस्थित होती हैं। भूमिदेनेवाले पुरुषोंके समीप सदा समस्त फूल पहुंचते हैं, भूमिदानसे शंख, भद्रासन, छत्र, श्रेष्ठ घोड़े, उत्तम सवारी, फूल तथा सुवर्णकी राशि, अप्रतिहत आज्ञा, जय शब्द और बसु हन्द उपस्थित हुआ करते हैं। हे इन्द्र! भूमिदानके पुण्यफल स्वर्गमें सुवर्ण पुष्पयुक्त औषधियें, कुश और काञ्चन शाद्वल हैं, जो पुरुष भूमिदान करता है, वह अमृत उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी पाता है भूमिदानके समान दूसरा दान नहीं है। माताके समान गुरु, सत्यके समान धर्म्म और दानके तुल्य निधि नहीं है।

भीष्म बोले, देवराज इन्द्रने वृहस्पतिके मुखसे इतनी कथा सुनके उन्हें हो उस समय धन रत्नोंसे भरी हुई पृथ्वीदानकी थी। जो लोग श्राद्धके समय इस भूमिदानकी कथा सुनते हैं, उन्हें राक्षस अथवा असुरोंके भागकी कल्पना नहीं करनी पड़ती, वे पितरोंको जो दान करते हैं, वह निःसन्देह अक्षय होता है। इसलिये विद्वान् पुरुष श्राद्धके समय भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंको यह विषय सुनावें। हे पापरहित भरतश्रेष्ठ यह मैंने तुम्हारे समीप सब दानोंके बीच श्रेष्ठदानका विषय कहा है, फिर कौनसे विषयको सुननेकी इच्छा करते हो?

६२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम! इसलोकमें राजा किन किन विषययोंके दान करनेकी कामना करके अधिक गुणवाले ब्राह्मणोंको प्रदान करे? ब्राह्मण लोग कैसे दानसे उस ही समय प्रसन्न होते हैं? प्रसन्न होके क्या प्रदान करते हैं? हे महाबाहो! मेरे निकट इस पुण्यजनक महत् फलके विषयको वर्णन करिये, हे राजन्! कौन वस्तु दान करनेसे इसलोक और परलोकमें फलित होती है? उसे मैं आपके समीप सुननेकी इच्छा करता हूं, आप यह विषय मेरे निकट विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, पहले यह विषय मैंने देवर्षि नारदसे पूछा था, उन्होंने जो कथा कही थी, उसे कहता हूं सुनो।

नारद मुनि बोले, देवता और ऋषि अन्नकोही प्रशंसा करते हैं, समस्त लोक यात्रा और बुद्धि अन्नसे ही प्रतिष्ठित है। अन्नदानके सदृश दूसरा दान न हुआ और न होगा, इसही लिये मनुष्य विशेष रीतिसे अन्नदान करनेकी इच्छा करते हैं। इस लोकमें अन्न ही बलकारक है, सब प्राण अन्नसे ही प्रतिष्ठित है। हे प्रभु! सारे जगत्को अन्न ही धारण किये है, इस लोकमें अन्नके ही लिये लोग गृहस्थ होते हैं और अन्नहीके निमित्त भिक्षुक तथा तपस्वी हुआ करते हैं। यह निःसन्देह प्रत्यक्ष है, कि

अन्नसेही प्राण उत्पन्न होता है। जो पुरुष अपने ऐश्वर्य्यकी इच्छा करे, वह कुटुम्बको पीड़ित करके भी महानुभाव भिक्षुक ब्राह्मणोंको अन्नदान करे। जो सद्वंशमें उत्पन्न हुए पुरुष याचककी अन्नदान करते हैं, वे अपने पारलौकिक निधिका विधान किया करते हैं, गृहस्थ पुरुष ऐश्वर्य्यकी इच्छा करते हुए स्नातक, पथिक वृद्ध, पूज्य, सहसा उपस्थित हुए और गृहमें आये अतिथिकी पूजा करें।

हे महाराज! राग द्वेषको त्यागके सुशील और मत्सर रहित होके जो पुरुष अन्नदान करते हैं, वे स्वर्ग तथा इस लोकमें सुख लाभ करनेमें समर्थ होते हैं। उपस्थित अतिथिकी अवज्ञा न करे, कदाचित उसे प्रत्याख्यान न करे, क्यों कि चाण्डाल और कुत्ते को भी अन्नदान करनेसे उस दानका फल विनष्ट नहीं होता। जो लोग पीड़ित पूर्व्वदृष्ट पथिकको क्लेश न देकर अन्नदान करते हैं, उन्हें महत् फल प्राप्त होता है। हे प्रजानाथ! जो लोग पितर, देवता, ऋषि, अतिथियों और ब्राह्मणोंको अन्नके द्वारा प्रीतियुक्त करते हैं, उनके पुण्यका फल अत्यन्त महत् है। अत्यन्त पापका कर्म्म करके भी जो पुरुष याचकोंको विशेष करके ब्राह्मणको अन्न-दान करता है, वह पापसे मुग्ध नहीं होता। ब्राह्मणोंको अन्नदान करनेसे अक्षय फल और शूद्रको अन्न देनेसे महाफल होता, है, शूद्रको भी अन्नदान करनेसे ब्राह्मणको विशिष्ट फल हुआ करता है। ब्राह्मण जब भिक्षा लेनेके लिये आवे, तब उसके गोत्र चरण स्वाध्याय और कौन देशमें वास है,—गृहस्थ पुरुष यह सब न पूछके उसे मांगनेपर अन्नदान करे। हे महाराज! अन्नदाताके अन्नरूप वृक्षसमूह इस लोक और परलोकमें सर्व्व कामनाके फल प्रदान किया करते हैं, इस विषयमें सन्देह नहीं है। जैसे कृषकवृन्द वृष्टिकी इच्छा करते हैं, वैसेही "मेरे पुत्र पौत्र पौत्रगण प्रदान करेंगे,"—पितरवृन्द ऐसी ही आशा किया करते हैं। महद्भुत ब्राह्मण स्वयं "देहि" कहके प्रार्थना करते हैं, चाहे अकाम हो अथवा सकाम ही हो, दान करनेसे पुण्य होता है। ब्राह्मण सब प्राणि-योंके अतिथि और अन्नकोंमें पड़ी हुई वस्तु-ओंके अग्रभोक्ता हैं, ब्राह्मण लोग घर घर भिक्षा मांगते हुए जिस गृहसे सत्कारयुक्त होके निवृत्त होते हैं, वह गृह बहुत ही वर्द्धित होता है। हे भारत! वह गृहस्थ परलोकके अनन्तर महाऐश्वर्य्ययुक्त कुलमें जन्मता है। मनुष्य इसलोकमें अन्नदान करनेसे उत्तम स्थान प्राप्त करता है, सदा मिष्टान्नदाता स्वर्ग लोकमें सत्कारयुक्त होके निवास किया करता है। अन्न ही मनुष्योंके लिये प्राणस्वरूप है, अन्नसे ही सब प्रतिष्ठित है; अन्नदाता पशुमान, पुत्र-वान्, धनवान्, भोगवान् प्राणवान् और रूपवान् होता है।

हे महाराज! अन्नदाता इस लोकमें ऐसा प्राणद अथवा सर्व्वद कहके वर्णित होता है। अतिथि ब्राह्मणको विधिपूर्व्वक अन्नदान करनेसे दाताको सुख मिलता तथा वह देवताओंसे पूजित होता है। हे युधिष्ठिर! महद्भुत ब्राह्मण ही क्षेत्रस्वरूप है, उस क्षेत्रमें जो बीज उगता है, वही महत् पुण्यका फल है। भोक्ता और दाता दोनोंमें ही जब प्रीति उत्पन्न होती है, तो वह प्रत्यक्ष प्राप्त होता है, दूसरे समस्त दान परोक्षमें फलविशिष्ट हुआ करते हैं। हे भारत! अन्नसे उत्पत्ति अर्थात् पुत्र आदि प्राप्त होते हैं, अन्नसे ही रति उपजती हैं, धर्म्म और अर्थ अन्नसे ही हुआ करता है तथा यह भी जान रखो, कि अन्नसे ही रोग नष्ट होते हैं पूर्व्वकल्पमें प्रजापतिने अन्नको ही अमृत कहा है, अन्न ही भूलोक, द्युलोक और स्वर्गस्वरूप है; अन्नसे ही सब प्रतिष्ठित है। अन्ननाश होनेसे शरीरमें पांचो धातु विभिन्न होती हैं, अन्नके अभावसे बलवान पुरुषका बल नष्ट

होजाता है। हे पुरुष श्रेष्ठ! अन्नके बिना लोकयात्रा विवाह और यज्ञ नहीं निभते, इस अन्नके अभावमें वेदभी लुप्त होजाता है। स्थावर जङ्गम जो कुछ हैं, वे सभी अन्नसे होते हैं, इसलिये पण्डितोंको योग्य है, कि तीनों लोकोंमें धर्म्म अर्थके लिये अन्नदान करें। हे राजन्! अन्नदाता मनुष्यका बल, वीर्य्य यश और कीर्त्ति त्रिभुवनके बीच सदा बर्द्धित होती है। हे भारत! प्राणका पति पवन बादलोंके जलमें निवास करता है, इन्द्र उन बादलोंसे जल बरसाता है; सूर्य्य अपनी किरणोंसे भूमिका रस आकर्षण करता है, पवन आदित्यसे प्रतप्त रसोंको फिर बरसाया करता है। हे भारत! जब बादलोंसे जल पृथ्वीपर गिरता है, तब पृथ्वीदेवी शीतल होती हैं। अनन्तर भूमिसे सब शास्य उस अन्नसे मांस, मेदा, हड्डी और वीर्य्य प्रभृतिकी उत्पत्ति हुआ करती है। हे पृथ्वीपति! उस शुक्रसेही प्राणिवृन्द उत्पन्न होते हैं अग्नि और चन्द्रमा उस शुक्रकी उत्पन्न तथा पोषण करते हैं इस ही भांति अन्नके हेतु सूर्य्य, पवन तथा शुक्र एकही राशि करके स्थित हुए हैं, और उसहीसे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। हे भरतर्षभ! जो लोग गृहमें आये हुए अतिथिको अन्नदान करते हैं वे सब जीवोंको प्राणदान तथा तेज प्रदान किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे महाराज! नारद-मुनिके मुखसे यह कथा सुनके उस ही समयसे मैं सदा अन्नदान किया करता हूं, इसलिये तुम असूयाशून्य तथा शोक रहित होके अन्नदान करो। हे महाराज! तुम सद्वंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंको अन्नदान करनेसे स्वर्गलोक पाओगे। हे प्रजानाथ! अन्नदाता पुरुषोंको जो सब लोक प्राप्त होते हैं उसे सुनो। स्वर्गमें उन महानुभावोंके लिये जो सब भवन प्रकाशित हैं, वे उनके अनुसार रूप-सम्पन्न विविध स्तम्भ, चन्द्रमण्डलकी भांति श्वेत, वा किङ्किणिजाल तरुणादित्यवर्ण स्थावर जङ्गम कई सौ भौमपदार्थों और अन्तजलचरोंसे युक्त, वैदूर्य्य तथा सूर्य्य सदृश प्रकाशमान चांदी और सोनेके समस्त गृह विद्यमान हैं, उन गृहोंमें सर्व्वकाम फलप्रद वृक्ष लगे हुए हैं। चारों ओर बापी, बीथी, सभा, कूप, दीर्घिका, सहस्रों मोतियोंके ढेर, भक्ष्य और भोज्यमय पर्व्वत, वस्त्र, आभूषण, दूध बहानेवाली नदियें, और अन्नोंके पर्व्वत, पाण्डुरवर्ण आभासे युक्त समस्त गृह और सुवर्णखचित शय्या प्रभृति विद्यमान है, अन्नदाता उन वस्तुओंको पाता है, इसलिये तुम अन्नदान करो। महानुभाव पुण्य करनेवाले अन्नदाता पुरुषोंके लिये ये समस्त लोक निश्चित हैं, इसलिये पृथ्वीमण्डलपर मनुष्योंको योग्य है, कि सब प्रकार प्रयत्नके सहारे अन्नदान करें।

६३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, मैंने अन्नदानकी बिधि विषयक आपका बचन सुना, अब नक्षत्रयोगमें दान करनेसे जो फल होता है, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें देवकी और नारद महर्षिके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। देवर्षि नारदके द्वारकामें उपस्थित होनेपर देवकीने उस धर्म्मदर्शीसे यही विषय पूछा। हे नरनाथ! अनन्तर देवर्षि नारदने देवकीके पूछनेपर जो कथा कही थी, उसे तुम सुनो।

नारद बोले, हे महाभागे। कृत्तिका नक्षत्रमें घृत सहित पायससे साधु ब्राह्मणोंको तृप्त करनेसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। रोहिणी नक्षत्रमें अनृणके हेतु ब्राह्मणोंको पञ्चली भरके मृगमांस और घृत, दूध तथा अन्नदान करना चाहिये। सोमदैवत मृगशिरा नक्षत्रमें बछड़े युक्त दूध देनेवाली गऊ दान कर-

नेसे पुरुष मनुष्यलोकसे अत्यन्त श्रेष्ठ विशिष्टपमें गमन किया करते हैं। आर्द्रा नक्षत्रमें उपवास करके तिल मिले हुए कृशर दान करनेसे मनुष्य सब क्लेशों तथा चूरधार पर्व्वतसे पार होते हैं।

हे सुन्दरि! पुनर्व्वसु नक्षत्रमें घृतयुक्त पिण्डाकार पूपपुञ्ज तथा अनेक प्रकारके अन्नदान करनेसे मनुष्य यशस्वी और रूपवान होकर बहुतेरे अन्नोंसे पूर्ति कुलमें जन्मता है। पुष्य नक्षत्रमें शुद्ध अथवा अविशुद्ध सुवर्णदान करनेसे मनुष्य आलोकान्तररहित अर्थात् स्वयं प्रकाशित लोकोंमें चन्द्रमाकी भांति विराजता है। अश्लेषा नक्षत्रमें जो रूपा और एकव प्रदान करते हैं वे सर्व्वभयसे छूटके सदंशमें उत्पन्न होते हैं। मघा नक्षत्रमें तिलपूरित शरवा प्रदान करनेसे मनुष्य पुत्रवान और पशमान होकर इस लोक तथा परलोकमें आनन्दित हुआ करता है। पूर्व्वा फल्गुणी नक्षत्रमें उपवासी होकर ब्राह्मणोंको गोरसविकार सरफ़ानित नामक द्रव्य संयुक्त भक्ष्य सामग्री प्रदान करनेसे मनुष्यको सौभाग्य प्राप्त होता है। उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्रमें घृत चीरयुक्त अन्नदान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें निवास किया करते हैं। उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्रमें मनुष्य जिन वस्तुओंको दान करता है, वह दान महाफल जनक और अनन्त हुआ करता है। हस्त नक्षत्रमें उपवासी होकर चार हाथियोंसे युक्त रथ दान करनेसे मनुष्य पुण्यकामयुक्त होकर परम पवित्र लोकोंको पाता है। हे भारत! चित्रा नक्षत्रमें वृषभ और पुण्यगन्ध प्रदान करनेसे मनुष्य अप्सराओंके सङ्ग क्रीड़ा करता तथा आमोद किया करता है, स्वाती नक्षत्रमें जो लोग इच्छानुसार अन्नदान करते हैं, वे इसलोकमें महत् यश लाभ करके परलोकमें शुभलोकोंको पाते हैं। विशाखा नक्षत्रमें छकड़ेको खींचनेमें समर्थ वृषभ, दूध देनेवाली गऊ, धान्य आदि पिधानयोग्य चतुरस्र प्रसङ्गयुक्त अन्नसे भरे छकड़े और वस्त्रदान करनेसे मनुष्य पितरों तथा देवताओंको प्रीतियुक्त करके परलोकमें अनन्त सुख भोग किया करता है, कदाचित दुर्गम स्थान उसे प्राप्त नहीं होते और वह स्वर्गमें जाता है, जो लोग ब्राह्मणोंको पूर्व्वोक्त वस्तुदान करते हैं, निश्चय ही वे निज अभिलषित वृत्ति पाते और कदापि नरक आदि क्लेशोंको नहीं भोगते। अनुराधा नक्षत्रमें उपवास करके जो पुरुष ओढ़नेके वस्त्र और अन्नदान करते हैं, वे सौ युगतक स्वर्गमें वास किया करते हैं। ज्येष्ठा नक्षत्रमें जो मनुष्य ब्राह्मणोंको मूलके सहित कालशाक दान करता है, वह अभिलषित समृद्धि और गति पाता है। मूल नक्षत्रमें समाहित होके ब्राह्मणोंको फल मूल दान करनेसे पितरोंकी प्रीतिका विधान तथा अभिलषित गति प्राप्त होती है। पूर्व्वाषाढ़ा नक्षत्रमें उपवास होके कुलवृत्तसम्पन्न वेदजाननेवाले ब्राह्मणोंको दधिपात्रदान करनेसे पुरुष दूसरे जन्ममें अनेक गोधनयुक्त वंशमें जन्मता है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें घृत और जल भरे हुए घड़ेसे युक्त सत्तू मधु तथा चीरसे बनी हुई मिष्टान्नयुक्त वस्तु दान करनेसे मनुष्य समस्त काम्य विषयोंको पाता है। उत्तराषाढ़ाके शेष और श्रवणाके प्रथम भाग अभिजित योगमें मनीषियोंको दूध, मधु और घृत दान करनेसे धर्म्ममें रत मनुष्य स्वर्ग लोकमें निवास किया करते हैं। श्रवणा नक्षत्रमें वस्त्र और कम्बल दान करनेसे मनुष्य श्वेतवर्ण यानके सहारे असंवृत्त स्वर्गलोकमें गमन किया करते हैं। धनिष्ठा नक्षत्रमें समाहित होकर गौयुक्त सवारी, वस्त्र तथा अन्नदान करनेसे परलोकमें राज्य प्राप्त होता है। शतभिष नक्षत्रमें अगरु चन्दन सुगन्ध दान करनेसे मनुष्य परलोकमें अप्सराओंके लोकमें शाश्वत गन्धोंको पाता है। पूर्व्व भाद्रपद नक्षत्रमें राजमाष अर्थात् बर्व्वटकलाई दान करनेसे

सर्व्वभक्ष्य फलोंसे युक्त होकर पुरुष परलोकमें सुखी होता है। उत्तर भाद्रपद नक्षत्रमें जो लोग मेढ़ेका मांस दान करते हैं, वे पितरोंको प्रसन्न करते हुए परलोकमें अनन्त सुख भोग किया करते हैं, जो लोग रेवती नक्षत्रमें कांसेके दोहनपात्रसे युक्त गोदान करते हैं, उनके परलोकमें जानेपर वही गऊ सर्व्वकाम्य विषयोंको ग्रहण करके उस दाताके निकट उपस्थित होती है। हे पुरुषर्षभ! अश्विनी नक्षत्रमें घोड़े युक्त रथ दान करनेसे मनुष्य हाथी घोड़े और रथोंसे परिपूर्ण कुलमें जन्मता है। भरणी नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको तिल गऊ दान करनेसे मनुष्य परलोकमें उत्तम यश और बहुतसी गौओंको पाता है।

भीष्म बोले, नारद मुनिने देवकीसे नक्षत्रयोगके अनुसार यही सब दानका लक्षण कहा, और देवकीने अपनी पुत्रवधुओंसे यह सब वृत्तान्त कहा था।

६४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, ब्रह्माके पुत्र अत्रि भगवानने ऐसा कहा है, कि जो लोग सुवर्ण प्रदान करते हैं, वे समस्त काम्यवस्तु दान किया करते हैं, मनुष्येन्द्र हरिश्चन्द्रने कहा है, कि सुवर्ण पवित्र आयुष्य और पितरोंके उद्देश्यसे देनेपर अक्षय होता है। मनुने सब दानोंके बीच जल दानको परम दान कहा है; इसलिये बावली, कूप और तालाब प्रभृति खुदवाना चाहिये। प्रतिदिन लोग जिस कूएंके जलको पीते हैं, वह कूआं कूप खोदनेवालेके पापका आधा भाग हर लेता है। जिसके खोदे हुए तालावमें ब्राह्मण और साधु पुरुष सदा जल पीते हैं, वह तालाबवाला अपने समस्त वंशका उद्धार किया करता है। ग्रीष्म ऋतुमें जिसका तालाब जलसे भरा रहता है, वह कदापि विषम क्लेशोंको नहीं पाता। घृतके सहारे भगवान् बृहस्पति पूषा भग दोनों अश्विनीकुमार और अग्निदेव प्रसन्न होते हैं। घृत ही परम औषध है, यज्ञके लिये घृत ही अत्यन्त उत्कृष्ट है, यह सब रसोंके बीच श्रेष्ठ और सब फलोंसे उत्तम है। जो पुरुष सदा फल, यश और पुष्टिकी कामना करता है, वह पवित्र और संयतचित्त होकर ब्राह्मणोंको घृत दान करे। क्वार मासमें ब्राह्मणोंको घृत दान करनेसे इस लोकमें दोनों अश्विनीकुमार प्रसन्न होके उसे रूप प्रदान किया करते हैं। जो लोग ब्राह्मणोंको घृतमिश्रित पायस दान करते हैं, राक्षस लोग कदापि उनके गृहमें पीड़ा नहीं दे सकते। जो लोग कमण्डलु नामक जलपात्र दान करते हैं, वे प्याससे नहीं मरते, गृहकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण रहते और कदापि विपद्ग्रस्त नहीं होते। जो पुरुष सावधान होके परम श्रद्धाके सहित ब्राह्मणोंको दान करता है, वह सदा उनके पुण्यका छठवां भाग ग्रहण किया करता है। हे राजेन्द्र! जो लोग साधन और तापनेके लिये व्रतनिष्ठ ब्राह्मणोंको काष्ठ देते हैं, उनके सब प्रयोजन तथा विविध कार्य्य सदा सिद्ध होते और वे शत्रुओंके ऊपर तेजपुञ्ज युक्त शरीरसे प्रकाशित होते हैं। भगवान् अग्नि सदा उनके विषयमें प्रसन्न रहते, पशुवृन्द उन्हें परित्याग नहीं करते और वे संग्राममें विजयी होते हैं। जो लोग छत्र दान करते हैं, वे पुत्र और श्रीलाभ किया करते हैं। जो लोग ग्रीष्म अथवा वर्षाऋतुमें छत्र दान करते हैं, कभी उनके मनमें दाह नहीं होती।

हे नरनाथ! सब दानोंकी अपेक्षा शकट दान करनेसे मनुष्य शीघ्र ही विषम कष्टोंसे मोक्ष लाभ किया करता है। महाभाग भगवान् शाण्डिल्य ऋषिने ऐसा ही कहा है।

६५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! इस्यमान ब्राह्मणको जूता दान करनेसे जो फल होता है आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये ।

भीष्म बोले, जो पुरुष सावधान होकर ब्राह्मणोंको पादुका दान करता है, वह समस्त कांटोंको मर्द्दते हुए विषमस्थलसे पार होता है । हे नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! वह मृत्यु-ओंके अन्तमें वर्त्तमान रहता है और उसके निकट अश्वतरीयुक्त शुभ्रयान वा रूपे सोनेसे भूषित शकट उपस्थित होते हैं तथा जुआयुक्त शकट प्राप्त हुआ करता है ।

युधिष्ठिर बोले, हे कौरव ! तिल, भूमि, गऊ और अन्नदानके विषयमें आपने जो कथा कही है, उसे ही फिर कहिये ।

भीष्म बोले, हे कुरुसत्तम कुन्तीपुत्र ! तिल दानसे जो फल होता है, वह मेरे समीप सुनो और सुनके न्यायपूर्व्वक दान करो । पितरोंका परम भोज्य समस्त तिल स्वयम्भूके द्वारा उत्पन्न हुए हैं, इस ही लिये तिल दान करनेसे पितरवृन्द प्रमुदित होते हैं । जो लोग माघ महीनेमें ब्राह्मणोंको तिल दान करते हैं, वे सर्व्वसत्त्व समाकीर्ण नरकको नहीं देखते । जो लोग तिलसे पितृयज्ञ करते हैं, उन्हें समस्त यज्ञसिद्धिका फल मिलता है । अकाम मनुष्य कदापि तिल श्राद्ध न करें । हे महाराज ! ये सब तिल महर्षि कश्यपके शरीरसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये प्रदान करनेके समय दिव्य भावको प्राप्त होते हैं । सब तिल पुष्टि करनेवाले रूप-प्रद और पापोंको नष्ट करनेवाले हैं ; इसलिये सब दानोंसे तिल दान उत्तम है । बुद्धिमान् आपस्तम्ब शङ्ख, लिखित और महर्षि गौतम दानके सहारे स्वर्गमें गये हैं । तिलहोममें रत सब ब्राह्मण संयत मैथुन हुआ करते हैं । तिल गोघृत समान कहके वर्णित हुआ है । समस्त अतिदानके बीच तिल दान ही विशिष्ट होता है, तिल दान ही इस लोकमें सब दानोंके बीच अक्षय कहके वर्णित हुआ करता है । हे शत्रु-तापन ! पहले समयमें घृतके अभावमें कुशिक ऋषिने तिलके सहारे तीनों अग्निमें होम करके उत्तम गति पाई थी । हे कुरुश्रेष्ठ ! यह तिल दानका विषय तथा जिस प्रकार विधिपूर्व्वक तिल दान प्रशंसित हुआ करता है, वह कहा गया ।

हे महाराज ! इसके अनन्तर यज्ञ करनेके अभि-लाषी देवताओंका ब्रह्माके समीप समागम हुआ था, वह कथा सुनो, देवताओंने ब्रह्माके निकट उपस्थित होके यज्ञ करनेके लिये पवित्र स्थान मांगा । देववृन्द बोले, हे महाभाग भगवन् ! आप समस्त स्वर्ग और भूमिके स्वामी हैं, आपकी अनुमतिसे हम यज्ञ करेंगे । बिना आज्ञाके भूमि लेकर यज्ञ करनेसे यज्ञफलका भाग नहीं प्राप्त होता ; आप स्थावर जङ्गम समस्त जगत्के प्रभु हैं, इसलिये आज्ञा करिये ।

ब्रह्मा बोले, हे कश्यपनन्दन देववृन्द ! जिस स्थानमें तुम लोग यज्ञ करोगे, मैं तुम्हारे लिये वैसी भूमि दान करता हूं ।

देववृन्द बोले, हे भगवन् ! हम लोग कृत-कार्य्य हुए, इस समय हिमालयके निकट कुरु-क्षेत्रमें मुनिवृन्द सदा निवास करते हैं, इसलिये उस ही स्थानमें हम लोग आप्तदक्षिण यज्ञके द्वारा याग करेंगे । अनन्तर अगस्त्य, कण्व, भृगु, अत्रि, वृषाकपि, असित और देवल मुनिने देव-यज्ञमें गमन किया । तब महानुभाव देववृन्द यज्ञ करने लगे और यथा समयपर उसे समाप्त किया । देवताओंने पर्व्वतश्रेष्ठ हिम शैलके निकट यज्ञ करके उस यज्ञमें भूमिका छठवां भाग दान किया । जो लोग प्रादेश परिमाण अनुपस्कृत भूमिदान करते हैं, वे कभी क्लिष्ट-कार्य्योंमें अवसन्न होके दुर्गम स्थानमें नहीं जाते । उत्तम संस्कारयुक्त शीत, जल और वायुपूरित गृह भूमि दान करके श्रेष्ठ सुरलोकमें जाकर अत्यन्त पुण्य क्षीण होनेपर भी दाता वहांसे विचलित नहीं होता ।

हे महाराज! वह प्राज्ञ पुरुष आनन्दित होके इन्द्रके सङ्ग एकत्र वास करता है। जो पुरुष वासस्थान प्रदान करते हैं, वे स्वर्गमें निवास किया करते हैं। अध्यापक वंशमें उत्पन्न संयतेन्द्रिय श्रोत्रिय ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर जिसके गृहमें निवास करते हैं, वह ब्रह्मलोक भोग किया करता है। गौवोंके वासके लिये दिया हुआ सर्दी वर्षा सहने योग्य उत्तम दृढ़ गृह सातवें कुल पर्य्यन्त उद्धार करता है। जो लोग क्षेत्रभूमि दान करते हैं, वे लोकके बीच पवित्र श्रीसम्पन्न होते हैं। जो लोग रत्नभूमि देते हैं, वे कुल तथा वंशकी वृद्धि किया करते हैं। ऊषर और जली भूमि किसी प्रकारसे भी न देनी चाहिये तथा श्मशानसे घिरी हुई पापपूरित भूमि भी दानके योग्य नहीं है। जो पुरुष दूसरेकी भूमिमें पितरोंका श्राद्ध करता है, अथवा पितरोंके उद्देश्यसे दूसरेकी भूमि दान करता है, उसका किया हुआ श्राद्ध तथा भूमि दान-कर्म्म दोनोंही निष्फल होते हैं। इसलिये बुद्धिमान मनुष्य अल्प परिमाण भूमि मोल लेके दान करे, क्यों कि उस मोल ली हुई भूमिमें पितरोंके निमित्त दिया हुआ पिण्ड शाश्वत होता है। बन, पर्व्वत, नदी और तीर्थोंको पण्डित लोग अस्वामिक कहते हैं, इसलिये उन स्थानोंमें पितरोंका श्राद्ध करनेमें कुछ दोष नहीं है। हे नरनाथ! यह तुमसे भूमिदानका फल कहा है। हे पापरहित! इसके अनन्तर गोदानका फल वर्णन करता हूं। सब तपस्वियोंमें ही गोधन विद्यमान है, इस ही लिये महादेवने गौवोंके सहित तपस्या की थी।

हे भारत! ब्रह्मलोकमें गौवें चन्द्रमाके सङ्ग निवास करती हैं। सिद्ध और ब्रह्मर्षिलोग जिस परमपदकी इच्छा करते हैं, गोदान करनेसे सब पापोंसे छूटकर मनुष्य उसही गतिको पाते हैं हे भारत! ये गौवें ही दही, दूध, घृत, गोमय चर्म्म, हड्डी, शृंग और पूंछके बालसे सबका उपकार करती हैं, इन्हें सर्दी, गर्म्मीका भय नहीं है, ये सदा ही कार्य्य किया करती हैं, वर्षासे इन्हें दुःख नहीं होता, इसलिये ये ब्राह्मणोंके सहित परमपदमें गमन करती हैं, इसीसे पण्डित लोग गऊ और ब्राह्मणोंको एकही कहा करते हैं। हे महाराज! रन्तिदेव राजाके यज्ञमें गौवें पशु रूपसे कल्पित हुई थीं, उस गोचर्म्मसे चर्म्मण्वती नदी प्रवर्त्तित हुई है। दानके लिये उपकल्पित गौवें पशुत्वसे मुक्त हुई थीं।

हे पृथ्वीनाथ! जो लोग श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गोदान करते हैं, वे विषम अवस्थामें पड़के भी क्लेश तथा आपदोंसे पार होते हैं। हे नरनाथ! सहस्र गोदान करनेसे परलोकमें जानेपर पुरुष नरकमें नहीं पड़ता और सबठौर विजय प्राप्त होती है। इन्द्रने गौवोंके दूधको ही अमृत कहा है, इसलिये जो पुरुष गोदान करता है, वह अमृत प्रदान किया करता है। वेद जाननेवाले पुरुष अग्निके सम्बन्धमें इसे ही अव्यय होम साधन समझते हैं, इससे जो लोग गोदान करते हैं, वे होम साधन प्रदान किया करते हैं, यह गोपति वृषभ ही मूर्त्तिमान स्वर्ग स्वरूप है, जो लोग गुणवान ब्राह्मणोंको वृषभ देते हैं, वे स्वर्गमें निवास किया करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! गौवें प्राणियोंकी प्राणस्वरूप कही गई हैं, इसलिये जो लोग गऊ देते हैं, वे प्राण प्रदान किया करते हैं। वेद जाननेवाले पुरुष गौवोंको सब प्राणियोंकी शरण्य रूपी जानते हैं, इसलिये जो लोग गऊ देते हैं, वे शरण दिया करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! पापाचारी नास्तिकको वधके निमित्त गऊ देनी योग्य नहीं है और गोजीवी पुरुषोंको भी गोदान करना अनुचित है। महर्षियोंने ऐसा कहा है, कि जो मनुष्य वैसे पापियोंको गोदान करता है, वह अक्षय नरकमें पड़ता है। ब्राह्मणोंको कृशित, बछड़ा रहित वन्ध्या, रोग युक्त, विकलाङ्गी और थकी हुई गऊ दान न करे। दश हजार गौवोंको दान

करनेवाले मनुष्य स्वर्गमें इन्द्रके सङ्ग आनन्द भोगते हैं और सौ हजार गौवोंको दान करनेवाला अक्षय लोकोंको पाता है। हे भारत! यह गज तिल और भूमिदानका विषय कहा गया, अब अन्नदानका फल सुनो।

हे कुन्तीनन्दन! महर्षिलोग अन्नदानको जो प्रकृष्ट दान कहा करते हैं, राजा रन्तिदेवने अन्नदान करनेसे देवलोकमें गमन किया है। हे महाराज! जो लोग थके और भूखेको अन्नदान करते हैं, वे ब्रह्माके उत्तम महत् स्थानमें जाते हैं। हे भरतवंशावतंस नरनाथ! मनुष्योंका अन्नदानसे जैसा कल्याण होता है, सुवर्ण वस्त्र अथवा अन्य वस्तु दान करनेसे वैसा कल्याण नहीं प्राप्त होता। अन्नही प्रथम द्रव्य है, अन्न ही परम स्त्री रूपसे सम्मत है, अन्नसे प्राण, तेज, बल और वीर्य उत्पन्न होता है। पराशर मुनि कहते हैं, कि जो पुरुष सदा एकाग्रचित्त होकर याचकोंको प्रार्थनानुसार अन्नदान करता है, उसे क्लेश नहीं मिलते; न्यायपूर्व्वक देवताओंकी पूजा करके अन्न निवेदन करे। हे महाराज! मनुष्यवृन्द जो अन्न खाते हैं, उनके देवताओंका भी वही अन्न होता है। कार्त्तिक महीनेके शुक्ल पक्षमें जो लोग अन्नदान करते हैं, वे इसलोकमें सब क्लेशोंसे पार होके परलोकमें अनन्त सुखभोगते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! जो समाहित पुरुष भूखा रहके अतिथिको अन्नदान करता है, उसे ब्रह्मवित् पुरुषोंके लोक प्राप्त होते हैं। अन्नदान करनेवाला पुरुष अत्यन्त कष्टकारी आपदमें पड़के भी उससे पार हुआ करता है। इसलोकमें पापियोंका अन्नदानसेही निस्तार होता है यह अन्न, तिल, भूमि और गोदानका फल कहा गया।

६६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे तात भारत! आपने जो कथा कही, वह सब दानका फल मैंने सुना, इसलोकमें विशेष रूपसे अन्नदान ही श्रेष्ठ है। हे पितामह! इसलोकमें जलदान करनेसे महाफल होता है। इसलिये यह विषय मैं विस्तार पूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे सत्यपराक्रमी भरतश्रेष्ठ! अच्छा अब मैं तुम्हारे निकट जलदानके फलको विधिपूर्व्वक वर्णन करता हूं, तुम उसे सुनो। हे पापरहित! मैं जलदानसे आरम्भ करके सभी कहता हूं। अन्न और जल दान करके लोग जो फल भोगते हैं, मेरे विचारमें उससे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है। हे तात! अन्नसे समस्त प्राणधारी जीवमात्र वर्त्तमान हैं, इसलिये सब लोगोंमें ही अन्न श्रेष्ठ रूपसे वर्णित हुआ करता है। अन्नसे ही प्राणियोंका बल और तेज सदा बर्द्धित होता है, इसलिये प्रजापति अन्नदानको ही सबसे श्रेष्ठ कहते हैं। हे कौन्तेय! तुमने सावित्रीका भी पवित्र वचन सुना होगा। हे महाबुद्धिमान्! देवयज्ञमें जिससे जिस प्रकार जो अन्न जिस मनुष्यके द्वारा दिया जाता है, उसहीके सहारे प्राणदान हुआ करता है, इस लोकमें प्राणदानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है। हे महाबाहो! तुमने लोमशका वह पवित्र वचन सुना है, जो कि पहले समयमें राजा शिविको कपोतके प्राणदान करनेसे गति प्राप्त हुई थी। हे महाबाहो! मैंने सुना है, कि ब्राह्मणोंको अन्न दान करनेसे जो गति मिलती है, प्राणदाता उससे भी श्रेष्ठ गति पाता है। हे कुरुसत्तम! जलसे अन्न उत्तम होता है, जलसे उत्पन्न धान्य आदिके अतिरिक्त कुछ भी वर्त्तमान नहीं रहता; ग्रहोंके प्रभु भगवान् चन्द्रमा जलहीसे उत्पन्न हुए हैं। हे महाराज! जिसके पीनेसे मृत्यु नहीं होती, वेही अमृत, सुधा, स्वधा, अन्न, ओषधि और तृण जलसे ही उत्पन्न हुए हैं। हे नरनाथ! पण्डितोंने कहा है, कि जिससे प्राणियोंके प्राण उत्पन्न होते हैं, देवताओंका

अन्न, अमृत, नागोंका सुधा, पितरोंका स्वधा, पशुओंका तृण और मनुष्योंका प्राण ही अन्न है। हे नरश्रेष्ठ! ये सभी जलसे प्रवर्त्तित होते हैं, इसलिये जलदानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है। यदि मनुष्य अपने ऐश्वर्य्यकी कामना करे, तो वह सदा जल दान करे। इस लोकमें जल दान धन्य यशस्कर और आयुष्यरूपी कहा गया है। हे कुन्तीनन्दन! जलदाता सदा शत्रुओंके ऊर्द्धमें निवास करता है, वह समस्त काम्यविषय तथा शाश्वती कीर्त्ति प्राप्त करके परलोकमें जाके अनन्त फल भोग करता तथा सब पापोंसे मुक्त होता है। हे महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ! मनुने कहा है, कि जलदाता स्वर्गमें जाके अक्षय लोकोंको पाता है।

६७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! तिल दान और दीप दान कैसे दान हैं? अन्न और वस्त्र दान किस प्रकार करना होता है? आप फिर मेरे निकट इसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें ब्राह्मण और यमके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे नरनाथ! मध्यदेशमें गङ्गा यमुनाके बीच यामुन पर्व्वतकी तराईमें पर्णशाला नामसे विख्यात ब्राह्मणोंका अत्यन्त रमणीय एक बड़ासा गांव था। अनन्तर यमने काला वस्त्र पहरनेवाले लालनेत्र ऊर्द्धरोम कौवेकी भांति जङ्घानेत्र और नासिकायुक्त किसी पुरुषसे कहा, कि तुम ब्राह्मणोंके गांवमें जाके वहांसे अगस्तगोत्री शर्म्मि नाम ब्राह्मणको लाओ। वह हमारे अनावृत्त विद्वान् अध्यापकमें आविष्ट हुआ है, पासमेंसे दूसरे किसी उसके सगोत्री ब्राह्मणको न लाना। वह गुणोंमें हमारे अध्यापकके तुल्य हैं, उनके पुत्र भी उन्हींके सदृश हैं। इसलिये मैंने जैसा कहा, उस ही भांति उन्हें लाओ, उनकी पूजा करनी होगी। उस पुरुषने वहां जाके यमकी आज्ञाके विरुद्ध कार्य्य किया, उन्होंने जिसे लानेको निषेध किया था, उसे ही आक्रमण करके ले आया। वीर्य्यवान् यम उठकर उनका सत्कार करके बोले, इन्हें ले जाओ और दूसरे पुरुषको लाओ। धर्म्मराजका बचन सुनके वह ब्राह्मण उनसे बोला, मैं पढ़नेसे निर्व्विण्ण हुआ हूं, मेरा जितना समय शेष है, उतने ही समय तक इस यमलोकमें निवास करूंगा।

यम बोले, मैं कालके द्वारा विहित परमायुका प्रमाण नहीं जानता, जो लोग धर्म्माचरण करते हैं, केवल उन्हें ही जानता हूं। हे महातेजस्वी विप्र! इसलिये तुम आज ही अपने स्थानपर जाओ। और कहो, मैं क्या करूं?

ब्राह्मण बोला जिस कार्य्यके करनेसे भूलोकमें उत्तम महत् पुण्य होता है, मुझे वही उपदेश करो। हे सत्तम! तुम ही तीनों लोकोंके धर्म्माधर्म्म विषयमें प्रमाण हो।

यम बोले, हे विप्रर्षि! श्रेष्ठ दानकी विधि सुनो, इस लोकमें तिलदान परम पवित्र और नित्य फल देनेवाला है। हे द्विजवर! जो लोग सब भांतिसे अपने गृहमें कल्याणकी इच्छा करते हैं, उन सबको ही शक्तिके अनुसार तिल दान करना योग्य है, सदा दान करनेसे तिल दान समस्त कामना पूरी करता है, पण्डित लोग श्राद्धमें तिल दानकी प्रशंसा किया करते हैं, इससे यह दान सबसे उत्तम है; इसलिये विधिविहित कर्म्मके सहारे ब्राह्मणोंको तिल दान करो। वैशाखी पौर्णमासीको द्विजातियोंको तिल दान करे, तिल भोजन करावे और जो लोग सब भांतिसे अपने गृहमें कल्याणकी इच्छा करते हैं, उन्हें उचित है, कि तिलसे सदा उद्वर्त्तन करें। तिल दानकी भांति सदा जल देना और निःसन्देह जल पीना चाहिये।

हे द्विजोत्तम! पृथ्वीपर तालाव तलायो और कूआं प्रभृति खुदवावे; इस लोकमें ये सब कार्य्य अत्यन्त ही दुर्लभ हैं। तुम सदा जलदान करना, यही सबसे उत्तम पुण्य है। हे द्विजसत्तम! तुम सदा जलदानके निमित्त जलशाला बनाना, अन्न भोजन करने पर भी विशेष रीतिसे जल देना योग्य है।

भीष्म बोले, उस समय जब उस ब्राह्मणने यमका यह सब बचन सुनलिया, तब यमदूतने उसे उसके गृहमें पहुंचाया; फिर जिस प्रकार यमने उसे उपदेश किया था, उसहीके अनुसार उसने सब कार्य्य किया। अनन्तर यमदूत उस शर्म्मिको लेकर यमके स्थानपर गया और धर्म्मराजके समीप उसका वृत्तान्त सुनाया। प्रतापवान् धर्म्मराजने उस धर्म्मज्ञ ब्राह्मणकी पूजा की और उसके सङ्ग वार्त्तालाप करके वह जहांसे आया था, उसे वहां जानेके लिये बिदा किया। यमने उन्हें जैसा उपदेश किया था, उसने यमलोकसे लौटकर धर्म्मराजके कहे हुए सब कार्य्योंको किया। यमराज पितृलोककी हितकामनासे दीपदानकी प्रशंसा करते हैं। इसलिये सदा दीप दान करनेवाला मनुष्य पितरोंका उद्धार किया करता है। हे विभु भरतसत्तम! इसलिये सदा दीप दान करना योग्य है, क्योंकि दीपक देवताओं और पितरोंके नेत्रके लिये हितकर कहा गया है। हे प्रजानाथ! रत्न दान करनेसे उत्तम महत् पुण्य होता है, ऐसा कहा गया है, कि जो ब्राह्मण रत्न बेचके यज्ञ करता है, उसे कुछ भय नहीं होता। जो ब्राह्मण रत्न दान करता और जो उसे लेता है, वह दाता तथा ग्रहीता दोनोंके लिये अक्षय फलजनक हुआ करता है। धर्म्मज्ञ मनुने कहा है, कि जो लोग मर्य्यादासे स्थित होके ब्राह्मणोंको रत्नदान देते तथा लेते हैं, उन दोनोंको ही अक्षय धर्म्म होता है। मैंने ऐसा सुना है, कि निज स्त्रीमें रत रहनेवाले मनुष्य वस्त्र दान करनेसे सुन्दर तथा रूपवान होते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! वेदप्रमाणके अनुसार गऊ, सुवर्ण और तिल दानका विषय कई बार कहा गया। मनुष्योंको विवाह करना, तथा विवाह करके अवश्य पुत्र उत्पन्न करना योग्य है। हे कौरव! सब लाभोंके बीच पुत्र लाभ ही सबसे श्रेष्ठ है।

९८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ कुरुश्रेष्ठ! आप फिर समस्त दानोंकी श्रेष्ठ विधि विशेष करके भूमिदानका विषय कहिये। क्षत्रिय यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणको भूमिदान करे, ब्राह्मण भी उसे विधिपूर्व्वक ले, क्षत्रियके अतिरिक्त दूसरे पुरुष भूमिदान करनेमें समर्थ नहीं हैं। सब वर्ण ही फलकी कामना करके जो वस्तु दे सकें और वेदमें जो पूरी रीतिसे वर्णित हो, आपको मेरे निकट उसहीकी व्याख्या करनी उचित है।

भीष्म बोले, तुल्य नाम अर्थात् गौपद-वाची गऊ, भूमि और बाणी है, इन तीनोंको ही दान करना उचित है, इन तीनोंके दानका फल समान ही है और इस लोकमें इनके सहारे सब प्रयोजन तथा फल प्राप्त होते हैं; जो लोग शिष्यसे धर्म्मयुक्त बचन कहते हैं, वे भूमि और गोदानके तुल्य फल पाते हैं। इसही प्रकार सब कोई गोदानकी प्रशंसा किया करते हैं, गोदानसे श्रेष्ठदान और कुछ भी नहीं है। हे युधिष्ठिर! गौओंका फल अत्यन्त ही सन्निकृष्ट अर्थात् अल्प धनसे ही वह सिद्ध हुआ करता है। सबको सुख देनेवाली गौवें सब प्राणियोंकी माता हैं, जो लोग वृद्धिकी कामना करें, उन्हें प्रतिदिन गौवोंकी प्रदक्षिणा करनी योग्य है। गौवोंको पोरसे न मारे, गौवोंके बीचमें न जावे, मङ्गलकी स्थान देवी स्वरूप गौवें सदा पूजनीय हैं। यज्ञके लिये अथवा

खेतीके निमित्त कार्य्यमें नियुक्त बलवान बैलके ऊपर दैवकृत कोड़ेसे प्रहार करनेसे दोष नहीं होता, और यज्ञके लिये ताड़ना करना ही कल्याणकारी है, केवल खेतीके ही लिये प्रहार करना निन्दनीय तथा दूषित है। पण्डित पुरुष चरने और बैठनेके समय गौवोंको उद्वेगयुक्त न करें, गौवें प्यासी होकर देखनेसे मनुष्यको बान्धवोंके सहित नष्ट करती हैं। जिन लोगोंका पितृ और देवस्थान गोमयसे सदा पवित्र हुआ करता है, उससे अधिक पवित्र और कौन है? जो लोग स्वयं तक्र आदि न लेके भी वर्षभर गौवोंको घास देते हैं, उन्हें उस व्रतसे सर्व्वकाम फल प्राप्त होता है। वे पुत्र, यश, धन तथा श्री सम्पन्न होते, उनके पाप नष्ट होते और दुःस्वप्न विनष्ट होजाते हैं।

युधिष्ठिर बोले, कैसे लक्षणोंसे युक्त गौवोंको दान करना योग्य है, और कैसी न देनी चाहिये? कैसे पुरुषको दान देना योग्य है और कैसे मनुष्यको दान न देना चाहिये?

भीष्म बोले, असद्वृत्तिवाले पापाचारी, लोभी, झूठ बोलनेवाले और हव्य कव्यसे रहित पुरुषोंको किसी प्रकार गोदान करना उचित नहीं है, भिक्षुक, बहुपुत्रक, श्रोत्रिय और आहिताग्नि ब्राह्मणोंको दश गऊ दान करनेसे दाता सबसे श्रेष्ठ लोकोंको पाता है; दान लेनेवाला जो कुछ धर्म्माचरण करता है और उसके धर्म्मका जो कुछ फल रहता है, दाता उन सबमें अंशभागी होता है; इसीसे उसके निमित्त प्रवृत्ति होती है। जो इन्हें उत्पन्न करते, जो भयसे परित्राण करते तथा जो लोग इन्हें जीविका दान करते हैं, वे तीनों ही इनके पिता हैं। गुरुकी सेवा करनेसे पाप दूर होता है, अभिमान बड़े यशको भी नष्ट कर देता है, तीन पुत्र जन्मनेसे अपुत्रता नहीं रहती और दश गऊ वृत्तिहीनताको नष्ट करती हैं। वेदान्तनिष्ठ बहुश्रुत ज्ञानतृप्त जितेन्द्रिय शिष्ट दान्त संयत और जो लोग सब जीवोंके विषयमें सदा प्रिय वचन कहा करते हैं, जो ब्राह्मण भूखा होने पर भी निकृष्ट कर्म्म नहीं करता, जो मृदु शान्त अतिथिप्रिय तुल्यशील और स्त्री पुत्र आदिसे युक्त हो उस ब्राह्मणको वृत्ति देनी चाहिये। सत्पात्रको गोदान करनेसे जितना धर्म्म होता है, ब्राह्मणस्व हरनेसे उतने ही परिमाणसे अधर्म्म हुआ करता है। ब्राह्मणस्वका हरना सारी बुराइयोंका हेतु है, और ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको दूरसेही त्यागना योग्य है।

६९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे कुरुवंशधुरन्धर! ब्राह्मणस्व हरनेके विषयमें राजा नृगने जैसा महत् क्लेश पाया था, साधु लोग उसी हो वर्णन किया करते हैं हे पार्थ! मैंने सुना है, कि पहले द्वारकापुरीमें प्रवेश करनेके समय जल पीनेके अभिलाषी मनुष्योंने तृण लतासे परिपूरित एक महाकूप देखा था। उन लोगोंने उस कूएंसे जल पीनेके निमित्त बहुत प्रयत्न करने लगे, परन्तु उस कूपका जल अत्यन्त ही ढका रहनेसे वे सब बहुत थक गये थे। अनन्तर उन लोगोंने उस कूएंके बीचमें स्थित एक बड़ा शरीरवाला गिरगिट देखा, उन्होंने गिरगिटको निकालनेके लिये सहस्रों बार यत्न किया, रस्सी, चमड़े और बस्त्रोंसे उस पर्व्वत सदृश गिरगिटको बांधके उसे निकाल न सके, तब वे सब कोई कृष्णके समीप गये। उन लोगोंने कृष्णसे कहा, कि एक बहुत बड़ा गिरगिट कूएंका आकाशभाग रोकके स्थित है, ऐसा कोई नहीं है, जो उसे ऊपर उठावे। उस गिरगिटरूपी राजा नृगने श्रीकृष्णके द्वारा कूएंसे निकाले जाने तथा पूछनेपर अपना कार्य्य कहा और पहले समयमें जो सहस्र यज्ञ किया था, वह भी कह सुनाया। जब उन्होंने ऐसा वचन कहा, तब श्रीकृष्णचन्द्र उनसे

बोले, आपने पापकर्म्म नहीं किया, शुभकार्य्य ही किया है। हे नरेन्द्र ! तब आप किस प्रकार ऐसी दुर्गतिमें पड़े थे ? तुम्हारा ऐसा रूप क्यों हुआ, उसे वर्णन करो। मैंने सुना है, कि पहले समयमें आपने ब्राह्मणोंको बार बार सौ सहस्र, एक एक सौ, आठ सौ और दश सहस्र गोदान किया था। हे महाराज ! आपके वे समस्त फल कहां गये ?

अनन्तर राजा नृग कृष्णसे बोले, प्रोषित अग्निहोत्री ब्राह्मणकी एक गऊ भूलसे हमारे गोसमूहमें आ घुसी थी, हमारे पशुपालकोंने उस गऊको भी मेरी सहस्र गौवोंके बीच गिना था। मैंने परलोकके फलकी आकांक्षासे ब्राह्मणको वह गऊ दान की थी। अग्निहोत्री ब्राह्मणने उस गऊको खोजते हुए उसे दूसरे ब्राह्मणके निकट देखा। वह गऊ पहले जिसकी थी, उसने कहा, कि यह गऊ मेरी है। वे दोनों ही झगड़ते हुए क्रुद्ध होके मेरे समीप आये और दोनों मुझसे बोले, कि "आप ही दाता तथा आप ही हर्त्ता हैं।" मैंने एक सौ गऊके पलटेमें प्रतिग्रहीतासे पहलेकी दान की हुई गऊ मांगी, उसने मुझसे कहा, देशके अनुसार दूध देनेवाली क्षमाशालिनी अत्यन्त वत्सला स्वादिष्ट दूध देनेमें धन्य गऊ प्रतिदिन मेरे स्थानमें दूध देती हुई स्तनहीन मेरे कृश पुत्रोंको प्रतिपालन करती है, इसलिये मैं उसे न दे सकूंगा। ऐसा कहके वह चला गया, तब मैंने दूसरे ब्राह्मणको उस गऊके पलटेमें सहस्र गऊ लेनेको कहा। हे मधुसूदन ! तब वह ब्राह्मण बोला, जब मैं स्वयं खोजनेमें समर्थ हूं, तब राजाओंका प्रतिग्रह न करूंगा, इसलिये मुझे वही गऊ दो। मैंने उसे घोड़ेयुक्त सोने चांदीसे खचित रथ देनेको अङ्गीकार किया ; तौभी उसने उसे नहीं लिया, बल्कि वह ब्राह्मण क्रोधित होकर चला गया। इतने ही समयमें मैं कालसे प्रेरित होकर पितृलोकमें जाके धर्म्मराजके समीप उपस्थित हुआ। यमने मेरा सम्मान करके शेषमें यह कहा। हे महाराज ! तुम्हारे पुण्यकर्म्मोके शेषकी संख्या नहीं की जाती, परन्तु तुमने भूलसे एक पापकर्म्म किया है, आगे उस पापका फल भोगोगे, वा पीछे भोगोगे ? जो इच्छा हो, वह कहो। "मैं रक्षा करनेवाला हूं,"—यह तुम्हारी प्रतिज्ञा ब्राह्मणकी गऊ खोई जानेसे मिथ्या हुई है और ब्राह्मणस्व ग्रहण करनेसे तुम्हें दो प्रकारका पाप हुआ है।

हे प्रभु ! मैंने धर्म्मराजसे कहा, कि मैं पहले पापका फल भोगके तब पुण्यका फल भोगूंगा। ऐसा कहते ही मैं पृथ्वीपर गिरा और गिरते हुए ऊंचे स्वरसे कहा हुआ धर्म्मराजका यह वचन सुना, कि जनार्द्दन कृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे ; सहस्र वर्ष पूरा होनेपर तुम्हारा पाप कर्म्म नष्ट होगा, तब तुम निज कर्म्मके सहारे विजित शाश्वत लोकोंको पाओगे। मैंने नीचे शिर करके अपनेको कूएंके बीच पड़ा हुआ देखा, तिर्य्यग्योनिको प्राप्त होनेपर भी स्मृतिने मुझे परित्याग नहीं किया। हे कृष्ण ! आज तुम्हारे द्वारा मेरा उद्धार हुआ ; तपोबलके अतिरिक्त दूसरेके सहारे ऐसी घटना नहीं हो सकती ; इसलिये आज्ञा दो, अब मैं स्वर्गको जाऊं। हे शत्रुनाशन ! अनन्तर राजा नृग गिरगिट रूपको त्यागके श्रीकृष्णसे विदा हो उन्हें प्रणाम कर दिव्य विमानपर चढ़के सुरलोकको गये। हे भरतसत्तम कुरुनन्दन ! अनन्तर राजा नृगके स्वर्गमें जानेपर श्रीकृष्णने यह वक्ष्यमाण वचन कहा, कि जानके ब्राह्मणस्व हरना योग्य नहीं है, जैसे ब्राह्मणकी गऊने राजा नृगको विनष्ट किया था, वैसे भांति ब्राह्मणस्व सत्यको विनष्ट किया करता है। हे पार्थ ! साधुओंका समागम कभी निष्फल नहीं होता ; हे युधिष्ठिर ! गौवोंके विषयमें बुरा आचरण न करना।

७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पापरहित महाबाहो! गोदान करनेवालोंकी फलप्राप्तिको विस्तारपूर्व्वक कहिये, मैं जितना ही सुनता हूं; किसीसे भी तृप्त नहीं होता हूं, इसलिये इसे ही यथार्थ वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें उद्दालकि ऋषि और नाचिकेतके सम्वादयुक्त पुरातन इतिहास कहा करते हैं, बुद्धिमान् उद्दालकि ऋषिने निज पुत्र नाचिकेतके निकट जाके कहा, कि तुम मेरी टहल करो। उस नियमके समाप्त होनेपर महर्षिने पुत्रसे कहा, कि मैंने स्नान करके वेदपाठ करते हुए नदीके तीरपर समित, कुश, पुष्प, जल, कलश और भोजनकी सामग्री भूल आया हूं, तुम जाके वह सब वस्तु इस स्थानपर लाओ। उसने जाके नदीके वेगसे विचलित उन वस्तुओंको न पानेपर पिताके निकट आके कहा, कि "मैंने नहीं देखा।" महातपस्वी उद्दालकि मुनि उस समय भूख प्याससेयुक्त और थके हुए थे, इसलिये पुत्रको शाप दिया, कि 'यमका दर्शन करो।' पुत्र पिताके वाक्यसे अभिहित होकर हाथ जोड़के बोला, 'प्रसन्न होइये' ऐसा कहते कहते चेतरहित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। पिता नाचिकेतको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखके दुःखसे मूर्च्छित होकर 'यह मैंने क्या किया!' ऐसा कहके स्वयं पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके दुःखित होकर पुत्रके लिये शोक करते रहनेपर दिनका शेष भाग और भयङ्करी रात्रि व्यतीत हुई।

हे कुरुद्वह! सूखा हुआ शस्य जैसे वर्षासे फिर हरा होता है, वैसे ही नाचिकेत पिताके आंसू गिरनेपर कुशशय्यासे उठे। पिताने उस क्षीणस्वप्नकी भांति उठे हुए दिव्य गन्धसेयुक्त पुनर्व्वार आये हुए तनयोंण पुत्रसे कहा। हे पुत्र! तुमने निजकर्म्मसे समस्त शुभ लोकोंको जय किया है, दैववलसे मैंने तुम्हें फिर पाया; तुम्हारा मनुष्य शरीर नहीं है। सब विषयोंके प्रत्यक्षदर्शी उनका पुत्र पिताके पूछनेपर उन्हें अन्यान्य साधु महर्षियोंके बीच समस्त वृत्तान्त सुनाने लगा। मैं आपका शासन प्रतिपालन करते हुए शीघ्र ही अत्यन्त विशाल रुचिर प्रभायुक्त वैवस्वती सभामें गया; सहस्र योजन जाके उस सुवर्णकी भांति प्रभायुक्त सभाको देखा। यमराजने मुझे सम्मुख पहुंचा हुआ देखके आसन देनेके लिये आज्ञा देकर पाद्य अर्घसे मेरी पूजा की। अनन्तर मैंने सभासदोंसे घिरके तथा पूजित होकर मृदुस्वरसे कहा, हे धर्म्मराज! मैं आपके अधिकारमें आया हूं, इसलिये मैं जिन लोकोंके योग्य होऊं उसका विधान करिये। यम मुझसे बोले, हे प्रियदर्शन! तुम मरे नहीं हो, तुम्हारे उस जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी पिताने तुम्हें केवल इतना ही कहा है, कि "यमका दर्शन करो" इसलिये उसे मैं मिथ्या न कर सकूंगा। हे तात! तुमने मुझे देखा, इसलिये अब लौट जाओ; यह तुम्हारा देहकर्त्ता पिता शोक करता है। मैं तुम्हें अभिलषित विषय दान करता हूं, तुम मेरे प्रिय अतिथि हो, इसलिये जो इच्छा हो, वह वर मांगो। धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनके मैंने उनसे कहा, कि जिस स्थानमें आनेसे फिर कोई लौटके नहीं जा सकता, मैं आपके उस ही अधिकारमें आया हूं, यदि आप मुझे वर प्रदानके योग्य समझते हैं, तो मैं पुण्यात्मा पुरुषोंके समृद्ध लोकोंको देखनेकी इच्छा करता हूं।

हे द्विजेन्द्र! अनन्तर उस देवने मुझे प्रकाशमान वाहनयुक्त उत्तम प्रभावाले यान पर चढ़ाके उस समय पुण्यात्माओंके लोकोंको दिखाया। मैंने वहां महात्माओंके प्रकाशमय गृहोंको देखा, उन गृहोंको बनावट अनेक प्रकारकी थी और वे सब रत्नमय चन्द्रमण्डलकी भांति सफेद थे; किङ्किणी जालसे युक्त ऊपर ऊपर विशिष्ट कई सौ प्रासादमय जल

और वन उनके बीचमें स्थित थे, वह वैदूर्य्य तथा सूर्य्यकी भांति प्रकाशमान थे, रौप्य और स्वर्णमय तरुण सूर्य्यकी भांति वर्णविशिष्ट स्थावर और गमनशील भक्ष्य, भोज्यमय पर्व्वत, वस्त्र, शय्या और सर्व्वकाम फलप्रद उन गृहोंमें स्थित थे। नदी, वीथी, सभा, वापी, खांई शब्दयुक्त सवारियें, सहस्रों मोती, दूध बहनेवाली नदियें, पर्व्वत, सर्पिपुञ्ज, निर्म्मलजल और वैवस्वतके बहुतेरे अदृष्टपूर्व्वक स्थानोंको मैंने देखा। मैंने वह सब देखके पुराण प्रभु धर्म्मराजसे कहा, ये सब सदा शान्तयुक्त दूध और घृतके नदियें किनको भोज्यरूपी निर्दिष्ट हुई हैं?

यम बोले, ये जिनकी भोज्य हैं, वह तुम सुनो। जो साधु पुरुष गोरस दान करते हैं, ये उनके ही भोज्य हैं, जो लोग गऊ प्रदान करनेमें रत रहते हैं, उन सब शाश्वत शोकरहित लोगोंसे दूसरे स्थान परिपूरित हैं। इन गौवोंका केवल दानही श्रेष्ठ नहीं है, वैसी गौवोंका पालन करना भी अत्यन्त श्रेष्ठ है, पात्रकाल विधि और गऊ इन सबोंमें ही विशेष है। हे विप्र! विशेष रीतिसे जानके गोरस दान करना योग्य है, क्योंकि अग्नि और सूर्य्य स्वरूप गऊका विशेष ज्ञान होना अत्यन्त दुःखकर है, जो ब्राह्मण निज शाखायुक्त वेदपाठ किया करते हैं, जो अत्यन्त तपस्वी और यज्ञ करनेवाले हैं, वेही गोदानके पात्र होते हैं; कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत निबन्धन तथा पोषण करनेसे अभ्यागत गो विशेष कर इन समस्त व्रत आदिके कारण होनेसे प्रशंसनीय हुआ करती है। केवल जल पीके तथा भूमिपर सोकर त्रिरात्रव्रत करके प्रतिदिन एक एक गऊ दान करे और गोरसके द्वारा जीविका निबाहे, इस ही प्रकार व्रत करके तीन गऊ दान करना उचित है। जिन गौवोंको दान करे, वे बछड़ेके सहित अत्यन्त प्रसन्न उत्तम सन्ततिवाली हों और उन्हें, अलंकृत करके दान करना चाहिये। कांसेकी दोहनीसे युक्त उत्तम स्वभाववाली कल्याणयुक्त सवत्सा और जो भागती न हों, वैसी गऊ दान करनेसे उस शरीरमें जितने परिमाणसे रोएं रहते हैं, दाता उतने वर्षतक स्वर्गलोकमें सुख भोगता है। और ब्राह्मणकी बोझा ढोनेवाले उत्तम बलवान युवा वीर्य्यवान कुलानुजीवी वृषभ दान करनेसे दान करनेवाला गोदाताके समान लोकोंको भोग किया करता है। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि जो लोग गौवोंके विषयमें क्षमा करते, गऊ ही जिनके लिये अवलम्ब हैं, वैसे कृतज्ञ वृत्तिहीन ब्राह्मण गोदानके पात्र हैं। वृद्ध पुरुषोंके रोगयुक्त होनेपर उनके पथ्यके लिये, दुर्भिक्षके समय यज्ञके निमित्त, कृषि, होम और पुत्र जन्मनेपर गुरुके लिये तथा बालककी पुष्टिके निमित्त गऊ दान करनेसे देश और कालके अनुसार विशिष्ट दान होता है। जो गौवें दुग्धवती मालूम हों, जो मोल लेने वा ज्ञानसे प्राप्त हुई हों, जो प्राणव्यत्ययके द्वारा ली गई तथा निर्ज्जित हों और विवाहके समयमें जो श्वशुर प्रभृतिके निकट यौतुकमें प्राप्त होती हैं, उन गौवोंके दान करनेमें देश और कालके विशिष्टताकी आवश्यकता होती है।

नाचिकेत बोले, मैंने वैवस्वतका वचन सुनके फिर उनसे कहा, गोदानके अभावमें लोग किस प्रकार गोदाताओंके लोकमें जावेंगे? अनन्तर बुद्धिमान यम गोप्रदानकी परम गति कहने लगे। गोदानके बिना गोप्रदानका अनुकल्प है, इसलिये अनुकल्प दान करनेसे भी गोदानका फल प्राप्त होता है। गऊके अभावमें जो लोग यतव्रती होकर घृत और गऊ प्रदान करते हैं, उनके लिये ये घृतवाहिनी नदियें वत्सलाकी भांति बह रही हैं। घृतके अभावमें जो पुरुष यतव्रती होकर तिल और गऊ प्रदान करते हैं, वे गऊके द्वारा क्लेशोंसे छूटकर क्षीरनदीमें प्रमुदित होते हैं। जो मनुष्य यतव्रत होकर तिलके अभावमें जल-गऊ दान करता है, वह इस

कामप्रवहा शीतल जलवाहिनी नदीमें सुख भोग किया करता है। धर्म्मराजने इस ही प्रकार वहां मुझे सब विषयोंको दिखाया। हे तात! मैं वह सब देखके परम हर्षित हुआ, मैं आपके समीप यह प्रिय वृत्तान्त सुनाता हूं, गोदान-रूपी यज्ञ अत्यन्त महान् है और इसमें थोड़ा ही धन लगता है।

हे तात! मुझे वही यज्ञलाभ हुआ है वह मेरे द्वारा प्रकट हुआ है, आप वेदविधिसे प्रवृत्त होकर उस यज्ञका फल पावेंगे। मेरे विषयमें आपका यह शाप अनुग्रहके निमित्त ही हुआ था, जिसके प्रभावसे मैंने धर्म्मराजका दर्शन किया। हे महात्मन्! मैं वहांपर दानके फलको देखके शङ्कारहित होकर दान धर्म्मा-चरण करूंगा। हे महर्षि! धर्म्मराजने अत्यन्त प्रसन्न होके यह भी मुझसे बार बार कहा है, कि जो लोग दान विषयमें सदा प्रयत्न करते हैं वे विशेष रीतिसे गोदान करें। शुद्ध अर्थ यही है, कि धर्म्मको अवमानना मत करो, देश कालके अनुसार पात्रको दान देना उचित है, इसलिये तुम कुछ संशय न करके सदा गोदान करो। पहले समयमें दानपथमें स्थित शान्त-चित्तवाले मनुष्य सदा गोदान करते थे, वे लोग उग्र तपस्याविषयमें शङ्का करते हुए शक्तिके अनुसार् दान करनेमें प्रवृत्त होते थे। यथा समय शक्तिके अनुसार मत्सरतारहित होके पवित्रचित्तवाले श्रद्धावान् पुण्यशील मनुष्य गोदान करनेसे परलोकमें जाके स्वर्गके बीच प्रकाशित होते हैं। गौवोंके आहार आदिको परीक्षा करके न्यायसे प्राप्त हुई गौवें ब्राह्म-णोंको दान करो और काम्यष्टमीमें दशाहके समय गोमय, गोमूत्र तथा गोरसके सहारे जीवन बिताओ। वृषभ दान करनेसे पुरुष देवव्रती होता है, युवा गज दान करनेसे वेद प्राप्त होते हैं, गौयुक्त रथ तथा शकट आदि दान करनेसे तीर्थ लाभ हुआ करता है और कपिला गऊ देनेसे पाप नष्ट होता है। न्यायसे प्राप्त हुई एक ही कपिला गऊ दान करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हुआ करता है। गोरससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, इस ही लिये पण्डित लोग गोदा-नको अत्यन्त महत् कहा करते हैं। गौवें दूध देती हुई लोगोंका उद्धार करती हैं, इस लोकमें गौवें ही अन्न उत्पन्न करती हैं, जो इसे जानके गौवोंके भक्ष्य जल वा तृण उन्हें नहीं देता, वह पापी मनुष्य नरकमें पड़ता है। जो लोग बछड़े सहित सहस्र गऊ दान करते अथवा सौ, दश, पांच तथा एक गऊ साधु ब्राह्मणको देते हैं, तो वही दानकी हुई गऊ परलोकमें दाताके पक्षमें पुण्यतीर्थवाली नदी स्वरूप हुआ करती है। प्राप्ति पुष्टि और लोगोंकी रक्षाके हेतु इस पृथिवीमें गौवें सूर्य्य-किरण सदृश हैं, गोशब्दसे सूर्य्यकिरण और गऊ, इन दोनोंका ही बोध हुआ करता है। सन्तति और उपभोग प्राप्त होते हैं इसलिये गोदान करनेवाला सूर्य्यकी भांति विराजता है, शिष्य गुरुके समीप गोदान विषयमें वर मांगे, तो वह अवश्य ही स्वर्गगामी होगा। जो लोग गुरुकी आराधना करना जानते हैं, उनकेलिये यह उत्तम महान् धर्म्म है, योगज्ञान प्रभृति सब विधि गुरुसेवा स्वरूप आद्यविधिके बीच प्रविष्ट होती हैं। न्यायसे प्राप्त हुआ गोधन द्विजातियोंको दान करके परीक्षाके लिय केवल पालने दो, तुम प्रसिद्ध पुण्यशाल हो, इसलिये देवता मनुष्य तथा हम सब कोई तुम्हारी आशा किया करते हैं। हे द्विजर्षे! धर्म्मराजने जब मुझसे इतनी कथा कही, तब मैंने सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे लौटके आपके चरणमूलमें आगया हूं।

७१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ पितामह! नाचिकेत ऋषिका प्रमाण देके आपने जो गोदा-

नका फल और माहात्म्य कहा, तथा महात्मा राजा नृगने बिना जाने केवल एक ही अपराधसे महत् दुःख पाया था, उसे भी वर्णन किया। द्वारकापुरी बननेपर जिस प्रकार उनका उद्धार हुआ, तथा कृष्ण जिस प्रकार उनके मोक्षके हेतु हुए थे, वह भी मैंने निश्चय किया; परन्तु गोदान करनेसे जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, उस विषयमें मुझे सन्देह है। हे प्रभु! इसलिये गोदान करनेवाले मनुष्य जिन लोकोंमें निवास करते हैं, उस वृत्तान्तको यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, इन्द्रने यही विषय ब्रह्मासे पूछा था, प्राचीन लोग ऐसे स्थलमें उस ही पुरातन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं।

इन्द्र बोले, गोलोकवासियोंको स्वकर्म्मके सहारे स्वर्गवासियोंकी लक्ष्मी अभिभव करके गमन करते हुए देखके इस विषयमें मुझे सन्देह हुआ है। हे पापरहित भगवन्! कहिये गोलोक किस प्रकार है? जिस स्थानमें दाता पुरुष निवास करते हैं, उसे जाननेकी अभिलाष करता हूं। गोलोक कैसा है; उसका फल क्या है और वहांपर उत्तम गुण कौनसा है? मनुष्य किस प्रकार क्लेशरहित होके वहां जाते हैं; दाता कितने समयके अनन्तर दानका फल भोगता है? किस भांति थोड़े अथवा अनेक प्रकारके दान होते हैं; बहुतसी गौवोंके दानका कैसा फल है? थोड़े दानका फल किस प्रकारका तथा बिना गोदानके भी किस लिये पुरुष गोदाता हुआ करते हैं? उसे भी मेरे समीप वर्णन कहिये। हे प्रभु! बहुतसा दान करनेवाले किस प्रकार अल्पदाताके समान होते हैं और थोड़ा दान करनेवाले किस भांति बहुप्रद हुआ करते हैं? हे भगवन्! इन सब विषयोंको मेरे समीप यथार्थरीतिसे आप ही वर्णन करनेके उपयुक्त हैं।

७२ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे देवराज! तुमने जो गोदान विषयमें प्रश्न किया लोकके बीच तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस विषयमें जिज्ञासु नहीं है। हे शक्र! अनेक प्रकारके ऐसे लोक हैं, जो कि तुम्हारे नेत्र-गोचर नहीं हुए, केवल मैं ही उन लोकोंको देखता हूं, वहांपर पतिव्रता स्त्रियें, उत्तम व्रत करनेवाले ऋषि और शुभ बुद्धियुक्त ब्राह्मण लोग अत्यन्त शुभ कर्म्मके सहारे निज शरीरसे गमन किया करते हैं। इस लोकमें उत्तम व्रत करनेवाले पुरुष शरीरन्यासरूपी मोक्ष और निर्म्मलचित्तके सहारे उन स्वप्नभूत लोकोंको देखते हैं। हे सहस्राक्ष! वे सब लोक जैसे गुणयुक्त हैं, उसे सुनो। वहां काल किसीको भी आक्रमण नहीं करता जरा तथा अग्नि किसी पुरुषको आक्रमण करनेमें समर्थ नहीं होती, वहां किसी भांतिके पाप, व्याधि और क्लेश नहीं हैं। हे वासव! यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि गो समूह उस स्थानमें मनहीमन जो कुछ अभिलाष करें, वह उन्हें मिलता है। वे काम गामिनी और काम चारिणी होकर इच्छानुसार काम्य विषयोंको भोग करती हैं, बावली, तालाब, नदी, विविध बन, गृह, पर्व्वत तथा जो कुछ वस्तु हैं, सब प्राणियोंके समस्त मनोहर विषय वहां दिखाई देते हैं ऐसे विपुल लोकसे उत्तम तथा वैसा लोक दूसरा नहीं है। हे शक्र! वहां सबके विषयमें क्षमाशील गुरुके वशवर्त्ती और अहङ्काररहित उत्तम पुरुष गमन किया करते हैं। जो पुरुष सदा धर्म्म और सत्यमें रत रहके माता और पिताकी पूजा तथा सेवा करता है और किसी प्रकारका मांस भक्षण नहीं करता, वह ब्राह्मणोंके समीप निन्दनीय नहीं होता। जो गऊ और ब्राह्मणोंपर क्रोध नहीं करते तथा जो लोग धर्म्ममें रत शुश्रूषायुक्त, जन्मसे ही सत्य आचार और दान करनेमें रत, अपराधमें क्षमावान कोमलतायुक्त,

दान्त, वेद जाननेवाले सर्व्वतिथि और दयावान हैं, ऐसे गुणोंसे युक्त मनुष्य उस शाश्वत अक्षय गोलोकमें गमन करते हैं। पराई स्त्रीमें रत रहनेवाले पुरुष इस गोलोकको देखनेमें भी समर्थ नहीं होते, गुरुद्रोही, मिथ्याप्रलापी सदा विदेशमें रहनेवाले और ब्राह्मणोंसे वैर करनेवाले जो दुष्टात्मा पुरुष इन दोषोंसे युक्त हैं, वे गोलोकमें नहीं जा सकते। मित्रद्रोही, वञ्चक, कृतघ्न, शठ, कोमलता रहित, धर्म्मद्वेषी और ब्रह्मघाती पुरुष पुण्यात्माओंके निवास स्थान गोलोकको मनसे भी देखनेमें समर्थ नहीं होते, हे सुरेश्वर! यह मैंने तुमसे निपुणभाव गोलोकका सब विषय कहा। हे शतक्रतु! अब गोदानमें रत मनुष्योंके फल सुनो।

जो पुरुष निज भागके धनसे गऊ मोल लेके दान करते हैं और जो लोग धर्म्मोपार्ज्जित धनसे गऊ मोल लेके देते हैं, उन्हें अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। हे शक्र! जो लोग द्यूतक्रीड़ामें धन जीतनेपर गऊ मोल लेके दान करते हैं, वे दश हजार वर्षतक दिव्य फल भोग किया करते हैं अथवा भागसे प्राप्त हुई गौको दान करनेसे अक्षय लोक मिलता है। हे शचिपति! जो शुद्धचित्तवाले पुरुष गो प्रतिग्रह करके दान करते हैं, वे भी अक्षय लोकोंको इस लोकमें अवश्य प्राप्त होना समझते हैं। जो नियतेन्द्रिय और क्षमावान होकर जन्मसे ही सत्य वचन कहते हैं, गुरु, ब्राह्मणोंके अपराधको सहनेवाले उन पुरुषोंको गौवोंके सहित समान गति प्राप्त होती है। हे शचीनाथ! ब्राह्मणोंकी निन्दा रहनेपर भी उसे कदापि कहना उचित नहीं है। जो लोग गोभक्त तथा गौवोंके विषयमें दयावान होंगे, वे मनसे भी कभी गो द्रोह न करेंगे। हे शक्र! जो पुरुष सत्य धर्म्ममें रत रहता है उसका फल सुनो। सत्य धर्म्मानुयाई मनुष्यको एक ही गऊ सहस्र गऊके तुल्य होती है, क्षत्रियोंके भी इन गुणोंके द्वारा समान फल सुनो। यह विशेष रीतिसे निश्चित है, कि उनकी गऊ ब्राह्मणकी गऊके तुल्य होती है। वैश्यमें यदि ये सब गुण रहें तो उसकी एक गऊ पांचसौ गऊके सदृश है। विनय युक्त शूद्रके लिये चौगुना फल कहा गया है। सत्य और गुरु सेवामें रत दक्ष क्षान्त देवताओंके लिये प्रशान्त पवित्र शुद्ध धर्म्मशील और अनहङ्कार होकर जो मनुष्य इस विषयका अनुष्ठान करता है, वह महत् फल पाता है इस विधिके अनुसार दूध देनेवाली गऊदान करनेसे महा फल हुआ करता है; इसलिये एकभक्त, सत्यमें रत और गुरुसेवामें नियुक्त रहके गोदान करे। हे शक्र! जो वेदपाठी सदा गौवोंके विषयमें भक्ति करते और जो लोग गौवोंका दर्शन करके उन्हें अभिनन्दित करते हैं, उनका फल सुनो। राजसूय यज्ञ करनेसे जो फल मिलता है, बहुतसा सुवर्ण दान करनेसे जो फल होता है, समस्त साधु पुरुष तथा ऋषिलोग उनके लिये इन दोनोंके सदृश फल कहा करते हैं। जो लोग गोव्रती और सत्यवादी होके भोजनकी वस्तुओंका अग्रभाग भोजन न करके सदा गौवोंको देते हैं, वे लोभरहित शान्त पुरुष वर्षभरमें सहस्र गोदानका फल पाते हैं। जो एकबार भोजन करते, जो लोग एक गऊदान करते, जो गोव्रती हैं तथा गौवोंके विषयमें कृपा करते हैं, वे दश वर्षतक अनन्त सुख भोग किया करते हैं। हे देवराज! जो लोग एकबार भोजन करके धन संग्रह करते और उससे गऊ मोल लेके दान करते हैं गऊके शरीरमें जितने रोम हैं, उन्हें उतने परिमाणसे नित्य-फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणको गोदान विषयक येही सब फल मिलते हैं। अब क्षत्रियोंका फल सुनो; क्षत्रियके लिये गोदान निबन्धनसे पांच वर्षतक अनन्त सुख भोग कहा गया है, वैश्यको क्षत्रियोंसे आधा और शूद्रको वैश्योंका अर्द्ध भाग फल प्राप्त हुआ करता है, जो लोग आत्म-

विक्रयसे गऊ मोल लेके दान करते हैं, जबतक ब्रह्माण्डमें गौवें दीख पड़ती हैं, उतने समय तक वे गोलोकमें निवास किया करते हैं। हे महाभाग ! जो लोग संग्राम जीतनेपर प्राप्त हुई गोदान करते हैं, गऊके प्रतिरोमके परिमाणसे उनके लोक अक्षय होते हैं; हे कौशिक ! यह जान रखो, कि उन्हें आत्मविक्रयके तुल्य शाश्वत फल प्राप्त होता है। गऊके अभावमें जो लोग यतव्रती होकर तिल-गऊ प्रदान करते हैं, वे गऊके सहारे सब क्लेशोंसे मुक्त होकर चीर-नदीमें प्रमुदित होते हैं। गौवोंका दान मात्रही श्रेष्ठ नहीं है ; पात्र, काल, गोविशेष, विधि, कालज्ञान, अग्नि और सूर्य्यस्वरूप विप्र तथा गौवोंके अन्तरको मालूम करना दुःसाध्य है। स्वाध्याययुक्त, शुद्धयोनि, प्रशान्त, वैतानस्थ, पापभीरु, बहुज्ञ, गौवोंके विषयमें क्षमावान, अत्यन्त कठोरतारहित, शरण्य और वृत्तिग्लान पुरुषोंको पण्डित लोग गोदानके पात्र कहा करते हैं। वृत्तिहीन, अवसन्न, कृषिकार्य्य होम पुत्र उत्पन्न होनेपर तथा गुरु और बालककी वृद्धिके लिये देशकालके अनुसार गऊ दान करे। हे शक्र ! जिन गौवोंके अन्तरमें दूध उत्पन्न हुआ हो, जो ज्ञानके सहारे प्राप्त हुई हो, प्राण देके ली गई हों, तेजसे उपार्ज्जित तथा दहेजमें मिली हों, कृच्छ्रसाध्य चान्द्रायण आदि व्रतोंमें जो सब गौवें प्राप्त हों, जो पोषणके निमित्त आई हों, वे सब विशेष विशेष गऊ इन्हीं कारणोंसे श्रेष्ठ हुआ करती हैं। जो गौवें शीलवन्तसे युक्त और सुगन्धवती होती हैं, उनकी सब कोई प्रशंसा करते हैं, जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ हैं, वैसे ही गौवोंके बीच कपिला गऊ श्रेष्ठ है। तीन रात्रि केवल जल पीके ही प्राण धारण करके पृथ्वीपर सोनेवाले तृप्तियुक्त ब्राह्मणको अन्न आदिके सहारे परितृप्त गऊ दान करना योग्य है, दूध पीनेवाले पुष्ट बछड़ोंके सहित उत्तम गऊ दान करके त्रिरात्र गोरसके सहारे वृत्तिनिर्व्वाह करनी उचित है। सहजमें दूध देनेवाली कल्याणदायक बछड़े युक्त न भागनेवाली उत्तम गऊ दान करनेसे उसके शरीरमें जितने रोएँ रहते हैं, उतने वर्ष पर्य्यन्त दाता परलोकमें सुख भोग करता है। इस ही भांति ब्राह्मणको बोझा ढोनेवाले युवा बलवान विनीत हल खींचनेवाले अनन्त वीर्य्यवान बैल दान करनेसे दाताको दश गौवोंके तुल्य लोक प्राप्त होते हैं।

हे देवराज ! दुर्गम मार्गमें ब्राह्मण और गऊका परित्राण करनेसे गऊ तथा ब्राह्मण कल्याणके सहित विमुक्त होते हैं, इसलिये जो लोग उन्हें ऐसे मार्गसे उबारते हैं, उनका फल सुनो। जो लोग सस्त्रीक ब्राह्मण और गोकुलका परित्राण करते हैं, वे अश्वमेध यज्ञके तुल्य नित्य फल पाते हैं। हे सहस्राक्ष ! वे लोग मृत्युकालमें जिस वृत्तिकी अभिलाष करते हैं और उनके हृदयमें जो सब लोक वर्त्तमान रहते हैं, वे इस ही धर्म्मके सहारे उन सब लोकोंको पाते हैं और गौवोंके बीच भली भांति सम्मानित होकर सब ठौर निवास करनेमें समर्थ होते हैं। हे देवराज ! जो लोग इस उद्देशसे गौवोंका अनुगमन करते तथा तृण गोमय-पर्णाशी होके निष्पृह और सदा पवित्र रहते हैं, वे निष्काम तथा आनन्दित होके मेरे लोकमें देवताओंके सहित अथवा जिस लोकमें उनकी इच्छा हो वहां निवास करें।

७३ अध्याय समाप्त।

इन्द्र बोले, जो पुरुष जानके गऊ हरता अथवा धनके निमित्त बेचता है, उसकी कैसी गति होती है ? मैं इसे यथार्थ रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

ब्रह्मा बोले, खाने, अथवा बेचनेके लिये जो लोग गऊ हरते और ब्राह्मणको दान करनेके

लिये जो पुरुष गऊ मोल लेते हैं, उस विषयके फल सुनो। जो पुरुष निठुर होके बेचनेके लिये गऊको मारता वा भक्षण करता है, तथा जो अर्थी होकर घातक पुरुषोंको अनुमति देता है, गऊके शरीरमें जितने रोम रहते हैं, उतने वर्ष पर्य्यन्त मारनेवाले, खानेवाले और अनुमति देनेवाले नरकमें डूबते हैं। हे प्रभु! ब्राह्मणके यज्ञको नष्ट करनेसे जैसा दोष होता है, गऊ बेचने और हरनेसे भी उतना ही दोष हुआ करता है। जो पुरुष गऊ हरके ब्राह्मणको दान करता है, गोदानका जितना फल है, उतने समयतक वह दाता नरकमें गमन करता है, हे महाद्युति! पण्डित लोग गोदानके समय सुवर्णकी दक्षिणा कहा करते हैं, दक्षिणाके निमित्त निःसन्देह सुवर्ण ही श्रेष्ठ है। मनुष्य गोदान करनेसे सात ऊपरके और सात नीचेके पुरुषोंका उद्धार करता है, सुवर्णकी दक्षिणा देनेसे उसका दूना फल कहा गया है, सुवर्ण ही परम दान और परम दक्षिणा है। हे शक्र! सुवर्ण ही समस्त पवित्र वस्तुओंके बीच पावन करके वर्णित हुआ है। हे देवराज! सुवर्णको पण्डितोंने समस्त कुलके लिये पावन कहा है। हे महाद्युति! यह मैंने संक्षेपमें दक्षिणाकी कथा कही है।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पितामहने यह विषय देवराजसे कहा था, इन्द्रने दशरथसे, दशरथने रामसे, रामने अपने प्रिय भाई यशस्वी लक्ष्मणसे कहा और लक्ष्मणने बनबासके समयमें यह विषय ऋषियोंके समीप वर्णन किया था। प्रशंसितव्रती और धार्म्मिक राजाओंने इस ही परम्पराक्रमसे आते हुए इसदुर्द्धर विषयको धारण किया था। हे युधिष्ठिर! इस विषयको मेरे उपाध्यायने मेरे निकट वर्णन किया था। जो ब्राह्मण इसे सदा ब्राह्मणोंकी सभामें कहता है, गोदान अथवा दोनोंके समागममें उसके समस्त लोक सदा देवताओंके सहित अक्षय होते हैं, उस सर्व्वशक्तिमान भगवान परमेश्वर ब्रह्माने यह कथा कही थी।

७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे प्रभु पितामह! आपके सब धर्म्म वर्णन करनेसे मैं विश्वस्त हुआ, अब मैं कुछ सन्देहके विषय पूछता हूं, आप मुझे उसका उत्तर दीजिये। हे महातेजस्वी! व्रतोंका कैसा फल कहा गया है और वे कैसे हैं? नियमोंका क्या फल है? उत्तम रीतिसे अध्ययन करनेका कैसा फल होता है? इन्द्रिय निग्रहरूपी दमका क्या फल है; वेदोंको धारण करनेसे क्या फल होता है? पढ़ानेसे कैसा फल हुआ करता है, यह सब जाननेकी इच्छा करता हूं। हे पितामह! जगत्में प्रतिग्रह न करनेसे क्या फल होता है? जो पुरुष दान करता है, उसके दानका कुछ भी फल देखा तथा सुना गया है, वा नहीं? निजकार्य्यमें रत रहनेवाले शूर पुरुषोंको क्या फल प्राप्त होता है? शौचाचारका क्या फल कहा गया है? ब्रह्मचर्य्यका क्या फल है? पिता माताकी सेवा करनेका क्या फल होता है? आचार्य्य और गुरुकी सेवा करनेका कैसा फल है? अनुक्रोश अर्थात् दूसरेके दुःखसे दुःखी होना और अनुकम्पा अर्थात् दूसरेके दुःखको दूर करनेका क्या फल है? हे पितामह! इन विषयोंको यथार्थ रीतिसे जाननेकी अभिलाष करता हूं, इसमें मुझे अत्यन्त ही कौतूहल हुआ है।

भीष्म बोले, जो लोग एक भक्त आदि यथा विहित व्रतको भली भांति आरम्भ करके पूर्ण रीतिसे उसे समाप्त करते हैं, उन्हें सनातन लोक मिलता है। हे राजन्! इस लोकमें नियमोंका फल प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है। भली भांति पढ़नेका फल इस लोक और परलोकमें दीखता है। पढ़ानेवाले मनुष्य इस लोकमें

नियत सुख भोगके ब्रह्मलोकमें प्रमुदित होते हैं। हे महाराज! तुम मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक दमका फल सुनो। दमयुक्त पुरुष सर्व्वत्र सुख भोगते हैं और सब स्थानोंमें ही निवृत्त हुआ करते हैं। उनकी जिस स्थानमें इच्छा हो, वहां जा सकते हैं और समस्त शत्रुओंको नष्ट करते हैं, दान्त पुरुष जिस वस्तुके निमित्त प्रार्थना करते हैं, उसे निःसन्देह पाते हैं। हे पाण्डव! दमयुक्त पुरुष सर्व्वकाम सम्पन्न हुआ करते हैं। जैसे पुरुष तपस्या और पराक्रमके सहारे स्वर्गमें प्रमोद करते हैं, वैसेही क्षमावान् दमयुक्त मनुष्य विविध दान और यज्ञके सहारे आनन्दित हुआ करते हैं। दानसे दम श्रेष्ठ है; द्विजातियोंको जो दान करता है, वह दाता कदाचित् कुपित हो सकता है, परन्तु दमयुक्त पुरुष कभी क्रुद्ध नहीं होते, इसलिये दानसे दम ही श्रेष्ठ है। जो लोग सोना रूपा दान करते हैं, उन्हें सनातन लोक मिलता है, जब कि क्रोध दानको विनष्ट करता है, तब दानसे दम ही श्रेष्ठ है। हे महाराज! सुरपुरमें ऋषियोंके दश हजार अदृश्य स्थान हैं, जिन स्थानोंमें देववृन्द इस लोकसे गमन किया करते हैं, वेही सब लोकोंके बीच उत्तम हैं। हे महाराज! कामगामी परमर्षिवृन्द दमके सहारे जहां प्रस्थान करते हैं, वही महत् स्थान है, इसलिये दानसे दम ही श्रेष्ठ है। अध्यापक लोग अध्यापन कार्य्यसे अत्यन्त क्लेश सहनेके कारण अक्षय फल उपभोग करते हैं। हे नरनाथ! विधि पूर्व्वक अग्निमें आहुति देकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें गमन किया करता है। जो लोग वेदको पढ़के न्याय पूर्व्वक लोगोंको पढ़ाते हैं, वे उस ही गुरुकर्म्मके सहारे स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं। जो क्षत्रिय अध्ययन, यजन और दान कार्य्यमें नियुक्त रहके युद्धमें परित्राता बनता है, वह भी स्वर्गमें पूजित हुआ करता है। निज कर्म्ममें रत वैश्य दानसे महत्त्व पाता है और निज कर्म्ममें रत रहनेवाला शूद्र भी सेवाके सहारे स्वर्गमें जाता है। अनेक प्रकारके शूर कहे जाते हैं; मेरे समीप उनका विषय सुनो।

शूरवंशीय शूरोंका फल निर्दिष्ट है, यज्ञशूर, दमशूर, सत्यशूर, युद्धशूर, दानशूर, ज्ञानशूर, और यागशूर प्रभृति अनेक प्रकारके मनुष्य शूर कहे गये हैं, इसके अतिरिक्त वन, गृह और त्याग विषयमें बहुतेरे शूर हुआ करते हैं। कोई कोई बुद्धिशूर कोई क्षमाशूर और कोई सरलता विषयमें शूर हैं, कोई मनुष्य समता विषयमें शूर रूपसे वर्त्तमान है, पहले कहे हुए नियमके द्वारा दूसरे अनेक प्रकारके शूर हुआ करते हैं। कोई वेद पढ़नेमें शूर है, कोई विद्यामें रत रहनेसे शूर है, कोई गुरुसेवा विषयमें शूर है, कोई मनुष्य भिक्षा विषयमें शूर है। वनमें गृह-वास और अतिथि पूजनमें कोई कोई मनुष्य शूर हुआ करते हैं, ये सभी पुरुष निजकर्म्म फलसे अर्ज्जित लोकोंमें गमन करते हैं। वेदोंका पाठ करनेवाले तथा तीर्थोंमें स्नान करनेवाले सदा सत्यवादीके समान होते अथवा नहीं हो सकते। सहस्र अश्वमेध यज्ञ और अकेला सत्य तराजू पर तोला गया था, परन्तु सहस्र अश्वमेधसे अकेला सत्य ही विशिष्ट हुआ। सत्यसे ही सूर्य्य तपता है, सत्य हीसे अग्नि जलती है, सत्यसे ही वायु बहती है, इसलिये सत्यमें ही सब प्रतिष्ठित है। सत्यसे देवता प्रसन्न होते और सत्यसे ही पितर तथा ब्राह्मणवृन्द प्रसन्न हुआ करते हैं। सत्यको ही ऋषिलोग परम धर्म्म कहते हैं, इसलिये सत्यको न मानना उचित नहीं है। मुनिवृन्द सत्यमें ही रत हैं, मुनियोंका सत्य ही विक्रम है, मुनियोंको शपथ सत्य है, इसलिये सत्य ही सबसे विशिष्ट होता है।

हे भरतश्रेष्ठ! सत्यवादी मनुष्य स्वर्गलोकमें आनन्दित हुआ करते हैं। दम ही सत्यफलकी प्राप्ति स्वरूप है, इसे पहले ही मैंने सब

प्रकारसे कहा है, विनययुक्त मनुष्य निःसन्देह स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं। हे पृथ्वीनाथ! अब ब्रह्मचर्य्यके गुण सुनो, जो पुरुष इस लोकमें जन्मसे मरण पर्य्यन्त ब्रह्मचारी होता है, उसे कुछ भी अप्राप्त न जानना। ऋषियोंके बीच ब्रह्मचारी पुरुष कई करोड़ वर्षतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। हे महाराज! सदा सत्यमें रत, दान्त, ऊर्द्धरेता विशेष करके ब्रह्मचर्य्य व्रतनिष्ठ ब्राह्मणके सब पापोंको जला देता है, क्योंकि ब्राह्मण अग्निरूपी कहे गये हैं, ब्राह्मणोंके तपस्वी होनेपर यह प्रत्यक्ष दीख पड़ता है, कि जिसके प्रभावसे ब्रह्मचारीसे घर्षित होनेपर इन्द्र डरते हैं, ऋषियोंके उस ब्रह्मचर्य्यका फल इस लोकमें दिखाई देता है। माता पिताकी पूजा करनेसे जो धर्म्म होता है, वह मुझसे सुनो। हे महाराज! जो लोग पिताकी सेवा करते हैं और कभी उनके विषयमें असूया नहीं करते, तथा माता, भ्राता, गुरु और आचार्य्यके विषयमें पितृवत् व्यवहार करते हैं, स्वर्गलोकमें उन्हें पूजित स्थान मिलता है, इसे ही फल जानो। आत्मवान् पुरुष गुरुसेवाके सहारे कदापि नरक नहीं देखता।

७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जिसके द्वारा शाश्वत लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है, आपके समीप उस गोदानकी विधिको यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे पृथ्वीनाथ! गोदानसे श्रेष्ठ दूसरे कोई भी विषय विद्यमान नहीं हैं, क्योंकि न्यायसे प्राप्त हुई गऊ दान करनेसे दाता शीघ्र ही अपने कुलका उद्धार करता है। हे महाराज! जो विधि साधुओंके निमित्त पुरी रीतिसे प्रकट है, इन प्रजाओंके लिये भी वही ज्योंकी त्यों रचित है; इसलिये पहली समयसे प्रसिद्ध उस गोदानकी विधिको मेरे समीप सुनो।

पहली समयमें गौवोंके उपस्थित होनेपर उनके विषयमें मान्धाताके श्रद्धायुक्त होके प्रश्न करनेपर वृहस्पतिने उत्तर दिया था। अपनी आकस्मिक मृत्यु उपस्थित हुई जानके नियतव्रती मनुष्य लाल रङ्गवाली गऊ दान करे। गौवोंको "समङ्गे बहुले"—इस वाक्यके द्वारा आह्वान करे और गौवोंके बीच प्रवेश करके इस वक्ष्यमाण श्रुतिका पाठ करना होगा। गऊ हमारी माता और वृषभ पिता मुझे स्वर्ग तथा ऐहिक सुख प्रदान करें; गौवोंसे हमारी प्रतिष्ठा हो, ऐसा मन्त्र उच्चारण करके गोसमूहमें प्रवेश करे और मौनावलम्बन करके वहां एक रात्रि वास करे, गोदानके समय फिर वचन कहे, यही गोदानका पूर्व्वाङ्ग-व्रत है। साधुओंके बीच जो पुरुष एक रात्रि गौवोंके सहित समसख्य और समव्रती अर्थात् पृथ्वीपर सोके दंश मशकादिके अनिवारण प्रभृति गुणोंसे युक्त हुआ करते हैं, वे गौवोंके सहित एकात्मय गमन निबन्धनसे ही समस्त पापोंसे छूट जाते हैं। सूर्य्योदयके समय बछड़ेयुक्त गऊ दान करनेसे तुम स्वर्गलोक पाओगे और तुम्हें अर्थवादरूपी आशीर्व्वाद प्राप्त होंगे। गौवें ऊर्ज्जस्विनी अर्थात् उत्साह बलविधायनी, प्रज्ञावर्द्धिनी, यज्ञकर्म्ममें अमृत अर्थात् यज्ञ साधन हविकी गर्भभूत, इस जगत्की प्रतिष्ठास्वरूप और सदा पृथ्वीका प्रवाहरूप प्राजापत्य,—ये सब अर्थवाद गौवोंमें प्रतिष्ठित हैं। गौवें मेरा पाप दूर करें, सूर्य्य और सोमदैवत गौवें मेरे स्वर्ग गमनमें कारण होवें, मेरे चित्तमें माताके समान अवलम्ब हों, दोनों मन्त्रोंमें कहा हुआ तथा अनुक्त आशीर्व्वाद मेरे निमित्त सफल होवे। रोग-उपतपके दूर करने और देहमोचके समय पञ्चगव्यादि सेवन करनेपर गौवें सरस्वती नदीकी भांति कल्याणके हेतु हुआ करती हैं। हे गोवृन्द! तुम लोग सदा पुण्य दोया करती हो; इसलिये तुम प्रसन्न होके

मुझे अभिलषित गति प्रदान करो। इस समय जो तुम हो, मैं भी वही हूं, आज हम लोगोंकी एकता होती है, मैं तुम्हें दान करके आत्मप्रदाता बनता हूं, तुम लोग दाताके ममत्व अभिमानसे रहित होके मेरे ममताकी आस्पद हुई हो, तुम लोग सौम्य और उग्ररूपसे युक्त होकर दाताको अभीष्ट भोगके सहारे प्रकाशित करो। विधिपूर्व्वक गोदान करनेवाला ग्रहीताके अगाड़ी पहले कहे हुए श्लोकका अर्द्धभाग पढ़े और प्रतिग्रहीता द्विजाति गोदान लेनेके समय पहले कहे हुए श्लोकका शेष आधा हिस्सा पाठ करे, गोदानके समय जो लोग ऐसा आचरण करते हैं, वे ही विधि जाननेवाले हैं। जो लोग गोदानकी प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहारिक गऊका मूल्य वस्त्र वा वित्त दान करते हैं, उन्हें भी गोदाता कहना योग्य है। गऊका मूल्य दान करनेके समय ऐसा वचन कहे, कि तुम्हें उर्द्धास्या गऊ प्रदान करता हूं तुम ग्रहण करो। वस्त्र दान करनेके समय भवितव्या और वसुधेनु दानके समय वैष्णवी वाक्य प्रयोग करें; संख्याके अनुसार गौवोंके उर्द्धास्या प्रभृति नाम कहना चाहिये। यथाक्रमसे प्रतिनिधि दान प्रभृतिका ऐसा ही फल जानो; गऊका मूल्य देनेसे छत्तीस हजारगुणा फल होता है, वस्त्रधेनु देनेसे आठ हजारगुणा और वसुधेनु दान करनेसे बीस-हजारगुणा फल हुआ करता है। साक्षात् गोदान करनेवालेको आठपग गमन करते ही समस्त फल प्राप्त होते हैं, अर्थात् ग्रहीताके गृहमें गऊके पहुंचते ही उसके बालक, अतिथि और अग्निहोत्र आदिका प्रतिदिन निर्व्वाह होता है। गोदाता शीलवान् होता, मूल्य देनेवाला निर्भय हुआ करता है और वस्त्रदाता कभी दुःखी नहीं होता। जो लोग उषाकालमें प्रातःस्नान आदि किया करते हैं और जिन्हें विशेष रीतिसे महाभारत विदित है, वे चन्द्रमाकी भांति प्रकाशयुक्त लोक वैष्णवरूपसे विख्यात होते हैं; इसलिये तैसे ब्राह्मणोंको गोदान करना उचित है। गोदान करके मनुष्य त्रिरात्र गोव्रती होवे और एक रात्रि इस लोकमें गौवोंके सहित निवास करे तथा काम्याष्टमीमें त्रिरात्रके समय गोरस गोमय और गोमूत्रके द्वारा जीवन बितावे। वृषभ दान करनेपर मनुष्य देवव्रती अर्थात् सूर्य्यमण्डलभेत्ता ब्रह्मचारी हुआ करता है, दो गऊ दान करनेसे वेद प्राप्ति होती है और यज्ञ करनेवाला पुरुष विधिपूर्व्वक गोदान करनेसे उत्तम लोक पाता है। जो लोग विधि जाननेवाले नहीं हैं, उन्हें उन लोकोंकी प्राप्ति नहीं होती। जो लोग कामदुघा गऊ दान करते हैं और जो लोग एकसंस्थ समस्त पार्थिव काम्यविषय दान देते हैं, उनमेंसे हव्य कव्यवती गौवें ही श्रेष्ठ होती हैं और गऊकी अपेक्षा वृषभ दान करनेसे अधिक फल प्राप्त होता है। जो पुरुष शिष्य नहीं है, जो व्रत नहीं करता, जो लोग श्रद्धावान् नहीं हैं, उनके समीप यह धर्म्मविषय न कहे, यह धर्म्म सब लोगोंको ही गोपनीय है, इसलिये जहां तहां इस धर्म्मकी जल्पना करनी उचित नहीं है। इस लोकमें बहुतसे श्रद्धावान् मनुष्य हैं और मनुष्योंके बीच बहुतेरे क्षुद्रबुद्धि तथा राक्षस हैं, जिनसे कहनेसे बुराई हो और जो सब अल्प पुण्यवाले मनुष्य नास्तिकता अवलम्बन किये हों, उनके निकट यह विषय न कहे। हे महाराज! यह सब वृहस्पतिसम्बन्धीय वचन सुनके जिन राजाओंने गोदान करके पवित्र लोकोंको पाया है, उन पुण्यशील राजाओंका विषय सुनो। उशीनर, विश्वगश्व नृग, विख्यात भगीरथ, यौवनाश्व, मान्धाता, राजा मुचकुन्द, भूरिद्युम्न, नैषध, सोमक, पुरूरवा, चक्रवर्त्ती भरत,—"जिसके वंशमें जन्म लेके सब राजा भारत नामसे विख्यात हुए हैं," और श्रेष्ठ दाशरथि राम, इनके अतिरिक्त दूसरे जो

सब राजा कोर्त्तिमान रूपसे विख्यात हैं और पृथुकर्म्मा दिलीपने विधिपूर्व्वक होके गोदानके सहारे स्वर्गलोक पाया है । महाराज मान्धाता यज्ञ, दान, तपस्या, राजधर्म्म और गोदान विषयमें सदा नियुक्त थे । हे पार्थ ! इसलिये तुम भी मेरी कही हुई इस बार्हस्पती वाणीको धारण करो । तुमने कौरवोंका राज्य पाया है, इसलिये प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको पवित्र गऊ दान करो ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर जिस प्रकार भीष्मने गोदानका विषय कहा, धर्म्मराजने उसे उस ही भांति किया, मान्धाताके समीप जो विषय बृहस्पतिके द्वारा वर्णित हुआ था, राजाओंने उस ही धर्म्मको पूर्ण रीतिसे धारण किया । हे महाराज ! इस ही भांति गोदानके समय गोमयके साथ यवस भक्षण और पृथ्वीपर शयन करते हुए शिखावान होकर वृषभकी भांति वह नृपश्रेष्ठ संयतचित्त हुए थे । राजा लोग सदा गौवोंके विषयमें प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति करते हुए राजाओंमें अग्रणी होके उत्तम आकाशसे जिस स्थानमें इच्छा होती, वहां जाते थे ।

७६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर बुद्धिशक्तिसे युक्त राजा युधिष्ठिरने विनयपूर्व्वक फिर शान्तनुनन्दन भीष्मसे गोदानका विषय पूछा ।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत ! गोदानका समस्त फल फिर मेरे समीप पूरी रीतिसे वर्णन करिये । हे वीर ! मैं ऐसे अमृतको कानसे पीते हुए किसी प्रकार तृप्त नहीं होता हूं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषश्रेष्ठ भीष्म धर्म्मराजका ऐसा वचन सुनके उनसे केवल गोदानका फल पूरी रीतिसे कहने लगे ।

भीष्म बोले, ब्राह्मणोंको गुणयुक्त सवत्सा तरुणी गऊ वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है । जिन लोकोंमें सूर्य्य नहीं हैं । गऊदान करनेसे मनुष्य उन लोकोंमें नहीं जाता । जिस गऊने जल पीया है । और न पीवेगी, जिसने तृण खाई हो, फिर न खायगी, जिसका दूध नष्ट हुआ है, फिर न होगा, और जिसकी इन्द्रियें निःशेष हुई हों वैसी जरारोगसे युक्त जलरहित वापीकी भांति जीर्ण गऊ दान करनेसे घोर अन्धकारके बीच प्रवेश करना होता है, जो पुरुष ऐसी गऊ दान करता है, वह ब्राह्मणको क्लेशयुक्त किया करता है । रुष्ट, दुष्ट, व्याधियुक्त, दुबली और जिस गऊको मूल्य देके कोई न ले, वैसी गऊ दान करना उचित नहीं है । जो पुरुष ब्राह्मणोंको निरर्थकक्लेशयुक्त करता है, उसके सब लोक निष्फल तथा निर्व्वीर्य्य होते हैं । बल शील और अवस्थायुक्त सुगन्धवती गऊकी सब कोई प्रशंसा किया करते हैं । जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ हैं, वैसे ही गौवोंके बीच कपिला गऊ श्रेष्ठ है ।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ पितामह ! गोदान समान होनेपर भी साधु लोग किसलिये कपिला दानको श्रेष्ठ कहते हैं ? इस वृत्तान्तको मैं विशेष रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप भी कहनेमें समर्थ हैं ।

भीष्म बोले, हे तात ! मैंने प्राचीन पण्डितोंसे जो कथा सुनी है और रोहिणीवृन्द जिस प्रकार उत्पन्न हुई हैं, वह सब पूरी रीतिसे कहता हूं । पहले स्वयम्भूने दक्षको प्रजा उत्पन्न करनेके लिये आज्ञा दी, तब उन्होंने प्रजा समूहके हितकामनासे पहले वृत्ति उत्पन्न की । हे विभु ! जैसे देवछन्द अमृतके आसरे विद्यमान हैं, वैसे ही सब प्रजा वृत्तिका अवलम्बन करके वर्त्तमान है । स्थावर जीवोंसे जङ्गम मनुष्य ही सदा श्रेष्ठ हैं, मनुष्योंके बीच ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, क्यों कि ब्राह्मणोंमें ही सब वेद प्रतिष्ठित हैं । यज्ञोंके सहारे सोमरस प्राप्त हुआ करता है, परन्तु वे यज्ञ गौवोंसे प्रतिष्ठित हैं,

यज्ञसे ही देववृन्द प्रमुदित होते हैं, इसलिये पहले वृत्ति और पीछेमें प्रजा समूहकी उत्पत्ति हुई है। जीवगणने उत्पन्न होके जीविकाके निमित्त चिल्लार किया था, प्रजापतिने पिता माताकी भांति उन तृषित प्रजा समूहको वृत्तिदान करके कृपा की थी। भगवान् प्रजापतिने इसही प्रकार अपनी प्रजा उत्पन्न करनेके लिये मनही मन आलोचना करके उस समय उन्हें अमृत पिलाया था। प्रजावृन्द तृप्त होवें, ऐसा विचार करके सुरभि-गन्ध उद्गीरण करते हुए वहां जाके उसके उद्गारसे उत्पन्न तथा मुखसे प्रकट हुई सुरभीको देखा। उस सुरभीने प्रजाओंकी वृत्ति विधायनी, सुवर्ण रङ्गवाली कपिला सर्व्वलोक माटका सौरभेयी गौवोंको उत्पन्न किया था। जैसे नदीके तरङ्गसे फेन उत्पन्न होता है, वैसे ही सब प्रकारसे दूध देनेवाली अमृत वर्ण सौरभेयी गौके अमृतसे फेन उत्पन्न हुआ; वह फेन बछड़ेके मुखसे पृथ्वीपर स्थित महादेवके मस्तकपर गिरा। सर्व्व शक्तिमान महादेवने क्रुद्ध होकर माथेके नेत्रसे रोहिणीको मानो जलानेके लिये उसकी ओर देखा। हे नरनाथ! अनन्तर जैसे सूर्य्य मेघमालाको अनेक वर्णका करता है, वैसे ही उस रौद्रतेजने कपिला गौवोंको विविध वर्ण किया। जो कपिला गौवें उस रुद्रतेजसे अपक्रान्त होकर चन्द्रमण्डलमें जाके स्थित हुई थी, वे जिस प्रकार सुवर्ण होके उत्पन्न हुई थीं, वैसी ही रहीं, उनका दूसरा रङ्ग नहीं हुआ। अनन्तर महादेवके क्रुद्ध रहनेपर प्रजापतिने उनसे कहा, तुम अमृतसे अभिषिक्त हुए हो, गौवोंके फेन प्रभृति कुछ भी जूठे नहीं हैं। जैसे चन्द्रमा अमृत ग्रहण करके फिर उदित होता है, वैसे ही रोहिणीगण अमृतसे उत्पन्न दूध दिया करती हैं, अग्नि, वायु, सुवर्ण और समुद्र दूषित नहीं होते, अमृतको यदि कोई पीवे, तौभी दूसरे लोग उसे पीनेसे दूषित नहीं होते और बछड़के पीनेपर सवत्सा गौवें भी दूषित नहीं हैं। ये घृत दूधके सहारे इन सब लोकोंका भरण करेंगी, सब कोई इनके अमृतमय शुभ ऐश्वर्य्य की इच्छा किया करते हैं। प्रजापतिने महादेवको प्रसन्न करनेके लिये गौवोंके सहित एक वृषभ दिया। हे भारत! उन्होंने वृषभ देके रुद्रका मन प्रसन्न किया, महादेवने प्रसन्न होकर उस बैलको अपनी ध्वजा तथा अपना वाहन किया था, इस ही निमित्त वे वृषभध्वज नामसे विख्यात हुए हैं। अनन्तर देवताओंने उस समय महादेवको पशुपति किया, वे गौवोंके बीच रहनसे वृषभाङ्क नामसे वर्णित हुए। इस ही भांति अव्यग्र वर्ण महातेजस्विनी कपिला गौवोंका दान प्रथम कल्प कहा गया है। लोकमें जेठी, लोगोंकी वृत्तिके लिये प्रदत्ता, रुद्रापिता, सोमाबस्यन्दभूत, सौम्य, पुण्यकामदा और प्राणदा गौवोंको दान करनेसे मनुष्य सर्व्वकामप्रद होता है। सदा मङ्गलाभिलाषी पुरुष गौवोंके इस उत्तम उत्पत्ति-विषयको पाठ करनेसे पापोंसे छूट जाते और सदा श्री, पुत्र, धेनु और पशु पाते हैं। हे महाराज! दाता गोदान करके हव्य काव्य तर्पण, शान्तिकर्म्म, यान, वसन, बालक और बूढ़ोंकी तुष्टि, ये समस्त फल पाते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अजमीढ़ वंशावतंस पृथापुत्र महाराज युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित पितामहका बचन सुनके ब्राह्मणोंको सुवर्ण रङ्गके वृषभ और गऊ दान किया, तथा उन्होंने श्रेष्ठ लोकोंकी जय करने अथवा कीर्त्तिके निमित्त यज्ञके उद्देश्यसे दक्षिणामें सौ हजार गऊ दान किया था।

७७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इसके अनन्तर इक्ष्वाकु वंशीय बक्तृवर राजा सौदास सर्व्वलोकचारी सिद्ध

वेदनिधि नित्य पुरोहित ऋषिसत्तम वशिष्ठको प्रणाम करके प्रश्न करना आरम्भ किया।

सौदास बोले, हे अनघ भगवन्! तीनों लोकोंके बीच मनुष्य जिसका सदा नाम लेते हुए पुण्यसञ्चय करता ऐसा पवित्र क्या है?

भीष्म बोले, विद्वान् वशिष्ठ पवित्र होकर गौओंको प्रणाम करके उस समय प्रणत राजासे गौओंके विषयमें उपनिषत् वचन कहने लगे।

वशिष्ठ मुनि बोले, गौवें सुरभिगन्ध और गुग्गुलगन्धविशिष्ट हैं, गौवें सब भूतोंकी प्रतिष्ठा और सबहीके लिये महत् स्वस्त्ययनस्वरूप हैं, गऊ ही भूत-भविष्य हैं, गौहन्द ही सनातनी पुष्टि स्वरूप हैं। गौवें ही लक्ष्मीके मूल हैं और जो कुछ गौवोंको दिया जाता है, वह बिनष्ट नहीं होता। गऊ ही देवताओंके परम हवि और अन्नस्वरूप हैं; स्वाहाकार वषट्-कार सदा गौवोंमें प्रतिष्ठित हैं। गऊ ही यज्ञके फल है, गौवें ही यज्ञोंमें प्रतिष्ठित होरही हैं। हे महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ! सन्ध्या और भोरके समय सदा गौवें ऋषियोंके होम साधन घृत आदि प्रदान किया करती हैं। हे महाराज! चाहे कोई कैसाही पापी क्यों न हो, गोदान करनेसे उसके सब पाप नष्ट हुआ करते हैं, जिसके दश गऊ हों, वह एक गऊदान करे, जो लोग एक सौ गऊवाले हों, वे दश गऊ दान कर सकेंगे और जो लोग सहस्र गायुक्त हैं, वे एक सौ गऊ दान करें, परन्तु ये सब कोई तुल्य फल भोग करेंगे। जो गऊवाला पुरुष यदि आहिताग्नि न हो और सहस्र गऊवाला पुरुष यदि विधिपूर्व्वक यज्ञ न करे, तथा जो पुरुष समृद्ध होके भी कृपण हो, वे तीनों ही अर्घला-भके योग्य नहीं हैं। जो लोग सवत्सा कांस्यदो-हना उत्तमव्रत और वस्त्रसे युक्त कपिला गऊ दान करते हैं, वे इस लोक तथा परलोकको जय किया करते हैं। हे शत्रुतापन! जो लोग श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको सैकड़ों यूथपति युवा सर्व्वे-न्द्रियपुष्ट, बड़े सींगोंसे अलंकृत गवेन्द्र वृषभ दान करते हैं, वे बार बार जन्म लेके ऐश्वर्य्यलाभ किया करते हैं। गौवोंके बिना नाम लिये सोना न चाहिये, उन्हें बिना कारण किये चलना अनुचित है, सन्ध्या और सबेरे गौवोंको प्रणाम करनेसे पुष्टि प्राप्त होगी। गौवोंके मूत्र और पुरीषके विषयमें किसी प्रकार घबड़ाना न चाहिये और कदाचित इनका मांस भक्षण न करे, तो पुष्टि प्राप्त होगी। सदा गोमयसे स्नान करे, करीषके बीच सोवे, श्लेष्म मूत्र पुरीष और प्रतिघातको त्याग देवे। गौवोंका सदा नाम ले, उनको कभी अवज्ञा न करे, मनुष्य बुरे स्वप्न देखनेपर गौवोंका नाम लेवे। प्रोक्षणके द्वारा गोचर्म्मके आँगनेपर बैठके भोजन करे, वरुणसे पालित पश्चिम दिशाकी ओर देखे। जो लोग वाक्यत होके पृथ्वीपर बैठते हैं, वे गौवोंके दूध-घृतके सहारे सदा पुष्टि लाभ किया करते हैं। घृतसे होम करे, घृतके द्वारा स्वस्तिवाचन करावे, घृत दान करे और घृत प्राशन करे, तो गौवोंकी पुष्टि भोग कर सकेगा। जो लोग गोमती विद्याके द्वारा मन्त्र पढ़के तिलधेनु दान करते हैं, उन्हें कृत और अकृत विषयोंके लिये शोक नहीं करना पड़ता। जैसे सब नदियां समुद्रके निकट उपस्थित होती हैं, वैसे ही सुवर्ण सींगसे युक्त दूध देनेवाली सुरभि सौरभेयी गौवें मेरे समीप उपस्थित होवें। हम सदा गौवोंका दर्शन करें, गौवें मुझे सदा अवलोकन करें। गौहन्द हमारी हैं और हम उनके हैं, जहांपर गऊ हैं हम भी उस ही स्थानमें हैं। मनुष्य रात दिन, सम वा विषम स्थलमें महाभय उप-स्थित होनेपर इस ही प्रकार गौवोंका यश गाके भयसे मुक्त होता है।

७८ अध्याय समाप्त।

———

वशिष्ठ बोले, हे परन्तप ! पहिले उत्पन्न हुई गौवोंने सबसे अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करनेकी इच्छासे सौहजार वर्षतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या की थी। इस लोकमें समस्त दक्षिणाके बीच हम श्रेष्ठ होंगी तथा हम किसी दोषमें लिप्त न होंगी। लोग हमारे पुरीषके द्वारा स्नान करनेसे सदा पवित्र होंगे, देवता और मनुष्य हमारे गोमयके सहारे पवित्रताका विधान करेंगे। और स्थावर जङ्गम समस्त जीवोंके बीच जो लोग हमें प्रदान करेंगे, वेही हमारे लोकोंमें गमन कर सकेंगे। गौवोंने इसी प्रकार कामना करके तपस्या की थी, उनकी तपस्या पूरी होनेपर सर्व्वशक्तिमान ब्रह्माने स्वयं उनसे कहा, कि ऐसा ही होवे, तुम लोग सबका उद्धार करो, ऐसा वचन कहके उन्हें यही वर दिया था। भूत-भविष्यकी माता वे सब गौवें मनोरथ पूरा होनेपर उठीं। प्रातःकालमे उन्हें नमस्कार करनेसे पुष्टि प्राप्त होती है।

हे महाराज ! तपस्या शेष होनेपर गौवें लोकपरायण हुई थीं, इसलिये महाभागा गौवें परम पवित्र रूपसे वर्णित हुआ करती हैं और इस ही निमित्त वे सब लोगोंके ऊर्द्धमें निवास करती हैं। मनुष्य सवत्सा उत्तमव्रत और वस्त्रसे युक्त दूधवाली कपिला गऊ दान करनेसे ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। लाल वर्णवाली तुल्यवत्सा, उत्तम व्रतवाली दुग्धवती गऊको वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे मनुष्य सूर्य्यलोकमें पूजित हुआ करता है। समानवत्सा बलयुक्त उत्तम व्रतवाली वस्त्रपूरित पयस्विनी गऊ दान करनेसे मनुष्य चन्द्रलोकमें पूजित होता है। वस्त्र उढ़ाके उत्तम व्रतयुक्त समान वत्सा सफेद गऊ दान करनेसे मनुष्यको इन्द्रलोकमें सम्मान प्राप्त होता है। समानवत्सा उत्तमव्रतवाली कृष्णवर्णवाली पयस्विनी गऊ वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे मनुष्य अग्निलोकमें पूजित होता है। उत्तम व्रतवाली समानवत्सा धूम्रवर्णकी दुग्धवती गऊ दान करनेसे मनुष्य यमलोकमें पूजनीय होता है। जलके फेनक रङ्ग समान बछड़ा और वस्त्र दोहनपात्रसे युक्त गऊ दान करनेसे मनुष्य वरुणलोकमें सुख भोग करता है। वातरेणुके समान रङ्गवाली कांसेके दोहनपात्र तथा वस्त्र पूरित सवत्सा गऊ दान करनेसे पुरुष वायुलोकमें अभिनन्दित हुआ करता है। सुवर्णरङ्गवाली पिङ्गाक्षी सवत्सा कांसेकी दोहनीके सहित वस्त्र उढ़ाके गऊदान करनेसे मनुष्य कुवेर लोकमें सुख भोगता है. धूम्रवर्णवाली गऊ कांसेके दोहनीके सहित वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे मनुष्य पितृलोकमें पूजित होता है। गर्द्दनमें कम्बलकी भूलसे अलंकृत करके सवत्सा गऊ दान करनेसे मनुष्यको वैश्वदेव नामक बाधारहित उत्तम लोक प्राप्त होता है, दूध देनेवाली सवत्सा उत्तम गऊको वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे मनुष्य वसुलोक पाता है। पाण्डुर कम्वलके रङ्ग समान दूध देनेवाली सवत्सा गऊको कांसेकी दोहनीके साथ वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे साध्योंके समस्त लोक प्राप्त होते हैं। जो लोग सब रत्नोंसे अलंकृत करके दृढ़ पीठवाले वृषभ दान करते हैं, वे मरुद्गणोंके लोकमें गमन किया करते हैं। मनुष्य सब रत्नोंसे युक्त काला वृषभ दान करनेसे गन्धर्व्व और अप्सराओंके लोकको पाता है। गर्द्दनमें कम्वलकी भूल और कण्ठकी सब रत्नोंसे अलंकृत करके दान करनेसे पुरुष शोकरहित होकर प्रजापतिके लोकको पाता है। हे महाराज ! गोदान करनेवाला मनुष्य मेघजालको भेदता हुआ अर्कवर्ण विमानके द्वारा सुरपुरमें जाके विराजमान होता है। मनोहर वेषवाली सुश्रोणि सहस्र सुन्दरी उस गोदानमें रत पुरुषको श्रेष्ठके सङ्ग क्रीड़ा करती हैं, वह सोनेपर उन हरिणाक्षियोंकी वीणा, वल्लकी, नूपुरकी झनकार तथा हंसीसे जाग्रत होता है। गऊके शरीरमें जितने परिमाणसे रोम रहते हैं,

गोदान करनेवाला उतने वर्षतक सुरपुरमें पूजित होता है, अन्तमें वह स्वर्गसे च्युत होके मर्त्यलोकमें महद्‌घर्में जन्म लेता है।

७९ अध्याय समाप्त।

वशिष्ठ बोले, घृत दूध देनेवाली गौवें घृतयोनि हैं और उन्हींसे घृत उत्पन्न होता है, इसीसे घृतोद्भव कहाती हैं; गौवें घृतकी नदी तथा घृतकी आवर्त्त हैं, इसलिये हमारे गृहमें सदा वे गौवें निवास करें। घृत ही हमारा हृदय है, घृत ही हमारी नाभिमें सदा प्रतिष्ठित होरहा है; घृत हमारे सारे शरीर और मनमें निवास करता है। गौवें हमारे आगे पीछे और सब ओर हैं, मैं गौवोंके बीच वास करता हूं, जो पुरुष सन्ध्या और सवेरेके समय आचमन करके सदा इसका जप करता है, वह दिन भरके किये हुए पापोंसे मुक्त होगा। जिस स्थानमें सुवर्णमय प्रासाद विद्यमान है, वसुधारारूपी मन्दाकिनी विराज रही हैं और गन्धर्व्व अप्सरा वर्त्तमान हैं, सहस्र गऊ दान करनेवाला मनुष्य वहां ही जाता है। मक्खनरूपी पङ्क, चीररूपी जल और दधिरूपी शैवालयुक्त नदियें जिस स्थानमें बह रही हैं, हजार गऊ दान करनेवाला पुरुष उस ही स्थानमें गमन करता है। जो लोग विधिपूर्व्वक एक सौ तथा सहस्र गऊ दान करते हैं, वे इस लोकमें परम समृद्धिवान होके स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं, पुत्र गोदान करनेसे माता-पिता दोनोंकुलोंके दश पुरुषोंकी पितामहके सुकृतलोकमें भेजके कुल पवित्र करता है। गऊके प्रमाण अनुसार तुल्य परिमाणसे तिलगऊ दान करने तथा जलधेनु देनेसे मनुष्यको यमलोकमें कोई पीड़ा नहीं प्राप्त होती। परम पवित्र जगत्‌की प्रतिष्ठा देवताओंकी माता अप्रमेय गौवोंकी स्तुति और प्रदक्षिण करे और समय विचारके उपयुक्त पात्रको दान दे, कांसेके दोहनीपात्रसे युक्त विशाल शृङ्गोंवाली कपिला गऊ वस्त्र उढ़ाके दान करनेसे मनुष्य भयरहित होके दुर्विगाह्य यमसभामें प्रवेश करता है। मनुष्य सदा ऐसा वचन कहे, कि उत्तम रूपवाली बहुरूपा विश्वरूपिणी मातृस्वरूपी गौवें मेरे निकट उपस्थित होवें। गोदानसे बढ़के पुण्यजनक दान दूसरा कुछ भी नहीं है; इससे बढ़के पुण्यका फल भी और कुछ नहीं है, लोकमें इससे श्रेष्ठ न कुछ हुआ और न होगा, गौवें त्वचा, रोम, सींग, पुच्छलोम, चीर और मेदसे युक्त होकर यज्ञको पूर्ण करती हैं, इसलिये उनसे बढ़के और कौन है? यह स्थावर जङ्गममय सारा जगत् जिससे व्याप्त होरहा है, उस भूतभविष्यकी जननी गऊको सिर झुकाके प्रणाम करता हूं। यह मैंने तुम्हारे समीप गौवोंके अत्युत्तम प्रशंसावादका केवल एक ही अंश वर्णन किया है। इस लोकमें गोदानसे श्रेष्ठ दान और कुछ भी नहीं है और गौवोंके अतिरिक्त अन्य कोई परम अवलम्ब नहीं हैं।

भीष्म बोले, अनन्तर महान भाव सौदास राजाने वशिष्ठ ऋषिके इस श्रेष्ठ वचनको वर समझके संयतचित्तसे द्विजोंको बहुतसी गऊ दान किया और अन्तकालमें गोलोक पाया।

८० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोकमें पूर्व्वोक्त विषयोंके अतिरिक्त जो समस्त पवित्रोंके बीच पवित्र तथा परम पावन है, वह मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम! महार्थ पवित्र गौवें मनुष्योंका उद्धार करती हैं, वे घृत और दूधके सहारे समस्त प्रजाको धारण कर रही हैं। गौवोंसे पवित्र और कुछ भी नहीं है, ये ही त्रिभुवनके बीच पुण्यदा, पवित्र और उत्तम

हैं। गौवें देवताओंके भी अर्द्धभागमें निवास करती हैं, मनीषिवृन्द गोदान करके कुल उद्धार करते हुए स्वर्गमें गमन किया करते हैं। मान्धाता, युवनाश्व, ययाति और नहुष राजाने सैकड़ों सहस्रों गऊ दान करके देवताओंसे भी दुर्लभ परम स्थानमें गमन किया था। हे अनघ! इस विषयमें मैं तुमसे पौराणिकी कथा कहता हूं।

पवित्रतायुक्त सावधानचित्तवाले बुद्धिमान शुकदेवने नित्य कर्म्मसे निवृत्त होकर ऋषियोंमें श्रेष्ठ परावर लोकदर्शी पिता कृष्ण द्वैपायनको प्रणाम करके प्रश्न किया, हे विभु! सब यज्ञोंके बीच किस यज्ञको आप श्रेष्ठ जानते हैं? मनीषिगण कौन कर्म्म करनेसे परम स्थान पाते हैं? देववृन्द किस पवित्र वस्तुके द्वारा स्वर्गलोकमें सुखभोग करते हैं? यज्ञका यज्ञत्व क्या है? यज्ञ किससे प्रतिष्ठित होरहा है? देवताओंके निमित्त उत्तम क्या है? हे पिता! इस लोकमें परम सत्त्व क्या है और जो पवित्रोंके बीच पवित्र हो, वह मेरे निकट प्रकट करिये। हे भरतश्रेष्ठ! परम धर्म्मज्ञ व्यासदेव इतनी बात सुनके पुत्रके निकट यथार्थ रीतिसे सारी कथा कहने लगे।

व्यासदेव बोले, गौवें ही प्राणियोंकी प्रतिष्ठा स्थान, परम अवलम्ब, पुण्य, पवित्र और परम पावन हैं। हमने ऐसा सुना है, कि पहले गौवोंके शींग नहीं थे, अनन्तर उन्होंने शींगके लिये अव्ययप्रभु प्रजापतिकी उपासना की थी। तब सर्व्वशक्तिमान् ब्रह्माने गौवोंको योगयुक्त देखके उन हर एकको ही अभिलषित वर दिया। हे पुत्र! उनके बीच जिसको जैसी अभिलाषा थी, उनके वैसे ही शींग उत्पन्न हुई, वे अनेक वर्णवाले शींगोंसे युक्त होकर सुशोभित हुईं। जब ब्रह्माने उन्हें वर दान किया, तब वे कल्याणदायनी गौवें, हव्यकव्य प्रदान करने लगीं और पुण्य पवित्र, सुभगा, दिव्य अवयव लक्षण युक्त हुईं। गौवें उत्तम महत् दिव्य तेजस्वरूप हैं, जो मत्सररहित साधु पुरुष इन्हें दान करते हैं, वेही सुकृती तथा सर्व्वदान प्रदाता हैं। हे पापरहित! उन्हें ही पवित्र गोलोक मिलता है। हे द्विजसत्तम! जिस स्थानमें वृक्षोंमें मधुर फल लगते और दिव्य पुष्प तथा फलसम्पन्न होते हैं, सब पुष्प भी दिव्य और सुगन्धियुक्त हुआ करते हैं; जिस स्थानमें सारी भूमि मणिमयी सुवर्ण बालुकासे युक्त सब ऋतुओंमें सुखस्पर्श पङ्करहित रजोगुण वर्जित और शुभदायनी रहती है; वहांपर समस्त तालाव तरुण सदृश लाल पत्थरसे युक्त वन और हिरण्मय मणिखण्डोंसे शोभित हैं, महार्ह मणिकी भांति पत्र, सुवर्ण प्रभायुक्त केशर, नीलोत्पलयुक्त विविध भांतिके कमल शोभित तालावोंसे अलंकृत करवीर, सहस्र आवर्त्तसे परिपूरित सन्तानक कानन, फूले हुए वृक्षोंसे शोभित निर्म्मल मुक्ताजाल और महाप्रभ मणियों तथा सुवर्णके सहारेकी वहां नदियोंकी तट भूमि प्रकट हुई है। कोई वृक्ष सुवर्णमय और कोई वृक्ष अग्निसदृश प्रभायुक्त हैं, वैसे सर्व्वरत्नमय विचित्र वृक्षोंसे परिपूरित उस स्थानमें सुवर्णमय सब पर्व्वत मणिरत्न शिला तथा सर्व्वरत्नमय ऊंचे मनोहर शृङ्गोंसे शोभित होरहे हैं।

हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर उस नित्यफल पुष्पोंसे युक्त वृक्षों और पक्षियोंसे परिपूरित स्थानमें पुण्यकर्म्मवाले मनुष्य सर्व्वकाम समृद्धार्थ और शोकरहित तथा मन्युहीन होकर सदा दिव्य गन्धवाले फूलों और दिव्य रसयुक्त फलोंसे प्रमुदित होते हैं। हे भारत! पुण्यकर्म्मा यशस्वी मनुष्य वहांपर विचित्र रमणीय विमानोंमें विहार करते हुए प्रसन्न हुआ करते हैं। हे महाराज! उत्तम रूपवाली अप्सरायें उनके निकट क्रीड़ा करती हैं। हे युधिष्ठिर! गोदान करनेसे मनुष्य इन्हीं लोकोंको पाता है। सूर्य्य

और बलवान वायु जिनके प्रभु हैं, ऐश्वर्य्यविषयमें जिनके राजा वरुण हैं, सत्य प्रभृति युगोंको धारण करनेसे जिनका युगन्धर नाम हुआ है, उन उत्तम रूपवाली बहुरूपिणी विश्वरूपा मातृगणके नामोंका यतव्रती होकर सदा जप करे,—ब्रह्माके द्वारा यही तपस्या कही गई है। जो लोग गौवोंकी सेवा करते हैं और सब भांतिसे उनके अनुगत होते हैं, उनपर वह प्रसन्न होके दुर्लभ वर दिया करते हैं। मनुष्य मनसे भी कभी गौवोंसे द्रोहाचरण न करे, सदा उनके लिये सुखदाता होवे, गौवोंकी सदा अर्चना करे तथा नमस्कार करके उनकी पूजा करे। दमयुक्त और दयावान मनुष्य सदा गौवोंकी समृद्धि भोग किया करते हैं। तीन दिन उष्ण गोमूत्र पीवे फिर तीन दिन गर्म्म दूध पीवे; अनन्तर गऊका दूध पीके तीन दिन उष्ण घृत पीवे; तीन दिनतक गर्म्म घृत पीकर विराव वायु पीके रहे। देववृन्द जिस पवित्र वस्तुके सहारे उत्तम लोकोंको भोगते हैं, जो कि पवित्र वस्तुओंके बीच पवित्र है, उस घृतको माथेपर रखे। घृतसे अग्निमें होम करे, घृतसे स्वस्तिवाचन करे, घृतप्राशन करे और घृत दान करे तो गौवोंकी पुष्टिभोग प्राप्त होगा। गौवोंके द्वारा गोमयके सहित परित्यक्त यवको यावक कहते हैं, जो लोग एक महीने तक यावक भोजन करते हैं, उनके ब्रह्महत्यासदृश पाप इसहीके सहारे छूट जाते हैं। दैत्योंके पराभवके हेतु देवताओंने इसे पवित्र किया है, इसीसे वे देवत्व पाके सम्यक सिद्ध और महाबलसे युक्त हुए हैं। गौवें परम पवित्र महत् पावन और पुण्यप्रद हैं, मनुष्य द्विजातियोंको गऊ दान करनेसे स्वर्ग भोग करता है। गौवोंके बीच पवित्र होकर मनही मन गोमती ऋक्के सहारे प्रकाशित अर्थ जपे, मनुष्य पवित्र जलसे आचमन करके मन्त्र जपनेसे पवित्र और निर्म्मल होता है। अग्नि तथा गौवोंके बीच और ब्राह्मणोंके समाजमें विद्या, वेदव्रतस्नात पुण्यकर्म्म वाले ब्राह्मणोंको उचित है, कि शिष्योंको यज्ञसंमित गोमती ऋक् पढ़ावें। विराव उपवासयुक्त होनेसे गोमती ऋक्के प्रभावसे वर प्राप्त होता है। पुत्र कामनावाले मनुष्य पुत्र पाते हैं, धनके अभिलाषी मनुष्योंको धन मिलता है। पतिकी इच्छा करनेवाली स्त्री पति पाती है, मनुष्योंका इसके सहारे सब प्रयोजन सिद्ध होता है। इस ही प्रकार ये महाभाग यज्ञहितकारी सर्व्वकामद गो सन्तुष्ट होकर निःसन्देह वर दान करती हैं, इन गौवोंको रोहिणी जानो इनसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। महातेजस्वी शुकदेवने महानुभाव पिताका ऐसा वचन सुनके प्रतिदिन गौवोंकी पूजा की थी; इसलिये तुम भी उनकी पूजा करो।

८१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मैंने सुना है, कि गौवोंका पुरीष श्रीयुक्त है, इसलिये इस विषयमें मुझे सन्देह है, इसीसे मैं इसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम महाराज! प्राचीन लोग इस विषयमें लक्ष्मीके सहित इस लोकमें गौवोंके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। लक्ष्मीने मनोहर शरीर धारण करके इस लोकमें गौवोंके बीच प्रवेश किया, गौवें उनकी सुन्दरताई-सम्पत्ति देखके विस्मित हुईं।

गौवोंने कहा, हे देवि! तुम कौन हो? किस स्थानसे आई हो? भूलोकमें तुम्हारे रूपकी उपमा नहीं है। हे महाभागे! तुम्हारे रूपसम्पत्तिसे हम विस्मययुक्त हुई हैं। तुम कौन हो, कहां जाओगी, हमें इसे जाननेकी इच्छा है। हे वरवर्णिनि! इसलिये तुम यथार्थ रीतिसे मेरे निकट यह सब यथार्थ वृत्तान्त कहो।

लक्ष्मी बोली, तुम लोगोंका मङ्गल होवे, मैं लोककान्ता श्रीनामसे विख्यात हूं; दैत्य लोग मुझसे परित्यक्त होकर बहुत समयसे नष्ट हुए हैं और देववृन्द मुझे पाके सदा प्रमुदित होरहे हैं। इन्द्र, सूर्य्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण और अग्नि प्रभृति देवगण तथा ऋषिवृन्द मुझसे युक्त होकर सिद्ध होते हैं। हे गोव्रन्द! मैं जिसमें प्रविष्ट नहीं होती, वह सब प्रकारसे विनष्ट होता है। धर्म्म, अर्थ और काम मुझसे संयुक्त होनेपर ही सुखदायक हुआ करता है। हे सुखप्रद गोगण! मुझे ऐसे ही प्रभावयुक्त जानो, मैं सदा तुम्हारे निकट निवास करनेकी इच्छा करती हूं। मैं तुम्हारे निकट आके प्रार्थना करती हूं, कि तुम लोग श्रीयुक्त रहो।

गोवोंने कहा, तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम अस्थिर और चपला हो, इसीसे अनेक पृरुषोंके संग समान भावसे रहती हो,-इसलिये हम सब तुम्हें नहीं चाहती हैं, जिस स्थानमें तुम अनुरक्त रहो, वहां जाओ। हम सब कोई वपुष्मती हैं इस समय तुम हमारी कौनसी इष्टसिद्धि करोगी? तुम्हारी जहां इच्छा हो, वहां जाओ, हम सब कृतकार्य्य हुई हैं।

लक्ष्मी बोली, हे गोव्रन्द! तुम लोग जो मुझे अभिनन्दित नहीं करती हो, क्या यह तुम्हें उचित है; मैं दूसरोंके लिये दुर्लभ सती साध्वी हूं, तब तुम लोग किस निमित्त मुझे नहीं ग्रहण करती हो? हे उत्तमव्रती गोगण! लोकमें जो यह लोकापवाद प्रचलित है, कि स्वयं उपस्थित होनेपर पराभव होती है, वह सत्य तथा निश्चित है। मनुष्य, देवता, दानव, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प और राक्षसगण अत्यन्त उग्रतपस्या करते हुए मेरी सेवा किया करते हैं। हे गोव्रन्द! तुम्हारा तो यही प्रभाव है, इसलिये मुझे ग्रहण करो। हे प्रियदर्शना! स्थावर जंगममय तीनों लोकके बीच मैं किसीके भी अवमानकी पात्री नहीं हूं।

गोवोंने कहा, हे देवि! हम अवमान वा तुम्हारा पराभव नहीं करती हैं, तुम अस्थिर और चलचित्ता हो, इस ही लिये तुम्हें परित्याग करती हैं, बहुत बचन कहनेसे क्या फल है? तुम्हारी जिस स्थानमें इच्छा हो, वहां जाओ; हम सब वपुष्मती हैं। हे पापरहिते! तुमसे हमारा क्या होगा?

लक्ष्मी बोली, हे मानदात्रीगण! तुम लोग यदि मुझे प्रत्याख्यान करोगी, तो मैं सब लोगोंके निकट अवज्ञात होऊंगी, इसलिये तुम्हें मुझपर प्रसन्न होना चाहिये। तुम सबकी शरण्य महाभागा हो, इसलिये मुझ सदा भजमान अनिन्दनीय शरणागताका परित्राण करो। हे कल्याणीगण! मैं तुम्हारे समीप सम्मानकी अभिलाष करती हूं, मुझे तुम्हारे अवोवर्त्ती अत्यन्त निकृष्ट एक अङ्गमें वास करनेकी इच्छा है। हे पापरहित गोवृन्द! तुम्हारे शरीरके बीच कोई स्थान भी कुत्सित नहीं दीखता है, तुम लोग पुण्यदा, पवित्र और सुभगा हो, इसलिये मुझे आज्ञा दो; मैं तुम्हारे देहके जिस स्थानमें वास करूंगी, उसे तुम्हें कहना उचित है।

हे नरनाथ! करुणावत्सला कल्याणदायिनी गोवोंने लक्ष्मीका ऐसा वचन सुनके इकट्ठी होकर विचारके उनसे कहा, हे कल्याणदायिनि यशस्विनि! हम लोगोंको तुम्हारा अवश्य सम्मान करना योग्य है, इसलिये तुम हमारे गोमयंमूत्रमें निवास करो, क्यों कि हमारा यही पवित्र है। लक्ष्मी बोली, प्रारब्धसे हो तुमने मुझपर प्रसन्न होके कृपा की है, इसलिये ऐसा ही होगा। हे सुखप्रद गोवृन्द! तुम्हारा मङ्गल हो, मैं पूजित हुई हूं। हे भारत! श्रीदेवीने गोवोंके सङ्ग इसी भांति नियमबद्ध होकर उन लोगोंके सम्मुखमें वहां ही अन्तर्हित होगई। हे तात! यह मैंने तुम्हारे निकट गोमयका माहात्म्य वर्णन किया, अब फिर गोवोंका माहात्म्य कहता हूं सुनो।

८२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! जो लोग गोदान करते तथा जो होमके शेषमें भोजन किया करते हैं, उनके यज्ञ वा सत्र सदा सिद्ध होते हैं। इस लोकमें दही और घृतके बिना यज्ञ पूर्ण नहीं होता, इसही लिमित्त यज्ञका यज्ञत्व और मूल कहा जाता है। सब दानोंके बीच गोदान श्रेष्ठ है, गौवें सबसे उत्तम तथा पवित्र हैं और येही अत्यन्त पावन हैं। पुष्टि और शान्तिके निमित्त इनकी सेवा करे, इनके दूध, दही और घृत समस्त पाप नष्ट करते हैं। इस लोक तथा परलोकमें गौवें परम तेज स्वरूप कही गई हैं। हे भरतश्रेष्ठ! गौवोंसे बढ़के परम पवित्र वस्तु और कुछ भी नहीं है। हे युधिष्ठिर! इस विषयमें प्राचीन लोग ब्रह्मा और इन्द्रके सम्वादयुक्त पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे कौरवराज! किसी समयमें दैत्यदलके पराजित होनेपर त्रिलोकीनाथ इन्द्र सत्य धर्ममें रत समस्त प्रजा, ऋषि, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, राक्षस, देव, असुर और सुपर्ण, प्रजापति, नारद, पर्वत, विश्वावसु और हाहा हूहू प्रभृति दिव्य तान गान करते हुए सब भांतिसे ब्रह्माकी उपासना कर रहे थे। उस समय वायु दिव्य पुष्पोंसे युक्त होकर बह रहा था, छहों ऋतु पृथक् पृथक् सुगन्धि लाने लगीं। उस सुरसभामें सब प्राणियोंके समागमके समय दिव्य बाजोंके सहित दिव्यांगनाओं और चारणोंसे सभास्थान परिपूरित होनेपर देवराजने ब्रह्माको प्रणाम करके विनयपूर्व्वक प्रश्न किया। हे भगवन् पितामह! लोकेश्वर गोलोक किस निमित्त देवताओंके ऊर्द्ध में स्थापित हुआ है? मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं, हे ईश्वर! इस लोकमें गौवोंने कौनसी तपस्या वा ब्रह्मचर्य्य किया था, कि जिसके प्रभावसे रजोगुणसे रहित होकर सहजमें ही देवताओंके ऊर्द्ध में निवास करती हैं।

अनन्तर ब्रह्मा उस बल-निसूदन इन्द्रसे बोले, हे पाकशासन! गौवोंकी तुम सदा अवज्ञा किया करते हो, इस ही निमित्त तुम इनके माहात्म्यको नहीं जानते। हे सुरेश्वर! इसलिये तुम गौवोंका परम प्रभाव और माहात्म्य सुनो। हे इन्द्र! गौवें यज्ञके अङ्ग तथा यज्ञरूपी कही जाती हैं; गौवोंके बिना किसी प्रकारसे यज्ञ पूरा नहीं होता। गौवें घृत और दूधसे सारी प्रजाको धारण कर रही हैं; इनके पुत्र कृषिकार्य्योंको निबाहते हुए विविध धान्य तथा बीज उत्पन्न किया करते हैं। उससेही यज्ञ और हव्य कव्य आरम्भ होते हैं। हे देवराज! ये गौवें तथा इनके दूध, दही और घृत अत्यन्त पवित्र है। ये भूख प्याससे अधिक पीड़ित होके भी विविध भार ढोया करती हैं। ये कार्य्यसे मुनियों तथा समस्त प्रजाको धारण कर रही हैं। हे इन्द्र! ये निष्कपट व्यवहार करती हैं, इसीसे कर्म्म और सुकृतके सहारे सदा हम लोगोंके ऊर्द्ध में निवास किया करती है। हे देवराज! यह मैंने तुमसे देवताओंके ऊर्द्ध में गौवोंके निवासका कारण कहा है। हे इन्द्र! इन्होंने वर पाया है और वर देनेमें भी समर्थ हैं। हे सुरसत्तम बल-सूदन! पुण्यकर्म्मशालिनी शुभलक्षणवाली पावन गौवें जिस निमित्त पृथ्वीपर गई हैं, वह भी मैं विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो।

हे तात! पहले समय सत्ययुगमें महानुभाव देवेन्द्र त्रिभुवनका शासन कर रहे थे, उस समय अदितिके सदा एक पदसे स्थित होकर घोर दुश्चर तपस्या करनेसे भगवान विष्णु उसके गर्भस्थ हुए; उसी समय दक्षपुत्री सुरभि नामी देवीने महादेवी अदितिको उत्तम महत् तपस्या करते देखकर हर्षपूर्व्वक धर्म्मपरायण होके घोर तपस्या की थी। वह परम योग अवलम्बन करके देव गन्धर्व्वोंसे सेवित रमणीय कैलास पर्व्वतकी शिखरपर दश हजार दश सौ वर्षतक एक चरणसे निवास करने लगी। देवता, महर्षि और महोरगगण उस देवीको

तपस्यासे सन्तप्त होकर मेरे सहित वहां जाके उस कल्याणीको उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर मैंने उस तपस्या करनेवाली देवीसे कहा, हे अनिन्दिते देवि! तुम किस निमित्त घोर तपस्या करती हो? हे महाभागे शोभने! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे प्रसन्न हुआ हूं। हे देवि! जो इच्छा हो, वर मांगो, मैं तुम्हें वर देता हूं।

सुरभि बोली, हे लोकपितामह भगवन्! मुझे वरसे क्या प्रयोजन है? हे अनघ! आप जो मुझपर प्रसन्न हुए, यही मेरे लिये वर है।

ब्रह्मा बोले, हे त्रिदशेश्वर शचिपति देवेन्द्र! उस सुरभि देविके ऐसा कहनेपर मैंने उसे जो उत्तर दिया, वह सुनो। हे शुभानने देवि! तुम्हारी अलोभकामना और तपस्यासे मैं प्रसन्न होकर तुम्हें अमर वर देता हूं और तुम तीनों लोकोंके ऊर्द्धमें निवास करोगी; मेरे प्रसादसे वह गोलोक नामसे विख्यात होगा, हे महाभागे! तुम्हारी सन्तान वा दुहितावृन्द मनुष्यलोकमें शुभ कर्म्म करके गोलोकमें आकर निवास करेंगी। तुम मनहीमन ध्यान करनेसे ही दिव्य मानुष भोग पाओगी। हे शुभे! हे देवि! स्वर्गमें जो कुछ सुख है, उसे तुम वहांपर उपभोग करोगी। हे सहस्राक्ष! सुरभिके समस्त लोक सर्व्वकाम संयुक्त हैं, वहांपर जरा-मृत्यु अथवा अग्नि संक्रमण करनेमें समर्थ नहीं है। हे इन्द्र! वहां कुछ भी दैव-अशुभ नहीं है, उस स्थानमें दिव्यवन, समस्त आभरण काम-गामी उत्तम वाहनोंसे युक्त विमान विद्यमान हैं। हे कमल नेत्र! ब्रह्मचर्य्य, तपस्या, सत्य, दम, विविध दान, बहुतसे पुण्य, तीर्थसेवन, उत्तम महत् तपस्या और सुकृत कर्म्मके सहारे गोलोक प्राप्त होसकता है। हे असुरसूदन शक्र! तुमने जो प्रश्न किया था, तुम्हारे समीप वह सब कहा गया, इसलिये तुम्हें गौवोंका परिभव करना योग्य नहीं है।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इन्द्र ऐसा सुनके सदा गौवोंकी पूजा और उनका बहुमान करने लगे। हे पुरुषश्रेष्ठ! यह तुम्हारे समीप परम पवित्र पावन और सर्व्वपाप नाशक गौवोंका अत्यन्त उत्तम माहात्म्य कहा गया। जो लोग समाहित होके हव्य, कव्य, यज्ञ और पितृका-र्य्यमें ब्राह्मणोंको सदा यह विषय सुनाते हैं। उनका सर्व्वकामिक अक्षय फल पितरोंके निकट उपस्थित होता है। मनुष्य गौवोंके भक्त होने-पर इच्छानुसार फल पाते हैं और जो स्त्रियें गौवोंमें भक्ति करती हैं, उन्हें भी सब काम्य-विषय प्राप्त होते हैं। पुत्रार्थी मनुष्य पुत्र पाते, कन्याकी इच्छा करनेवालोंको कन्या प्राप्त होती है; धनकी इच्छावाले धन पाते और धर्म्मार्थी मनुष्योंको धर्म्म प्राप्त होता है, विद्यार्थीको विद्या मिलती है, सुख चाहनेवाले सुख उपभोग किया करते हैं। हे भारत! जो लोग गौवोंमें भक्ति करते हैं, उन्हें कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

८३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, इस लोकमें अत्युत्तम गोदा-नका विषय पितामहके द्वारा वर्णित हुआ, धर्म्मदर्शी राजाओंके लिये यह विशेष हितकर है। पवित्रचित्तवाले राजाओंके पक्षमें राज्य सदा दुःखकर और दुर्द्धर है, प्रायः राजाओंकी शुभ गति नहीं होती, इसलिये वे लोग सदा भूमि दान करके पवित्र होते हैं। हे कुरुन-न्दन! आपने मेरे समीप सब धर्म्मोंका वर्णन किया और राजा नृगके द्वारा गोदानका विषय तथा नाचिकेत ऋषिने जो कहा था, वह पहले ही प्रमाणित हुआ है। वेद और उपनिषदके सहारे सब कार्य्यों तथा यज्ञोंमें भूमि, गऊ और सुवर्ण दक्षिणारूपसे निर्द्दिष्ट है, ऐसी जनश्रुति है, कि उनके बीच सुवर्ण ही सब भांतिसे श्रेष्ठ दक्षिणा है। हे पितामह! इसलिये इस

विषयका यथार्थ वृत्तान्त सुननेकी इच्छा करता हूं। सुवर्ण क्या है? किस समयमें किस प्रकार उत्पन्न हुआ? इसका स्वरूप क्या है? क्या यह देवी है? इसका फल क्या है? किस निमित्त श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ? मनोषिगण किस निमित्त सुवर्ण दानकी प्रशंसा किया करते हैं? यज्ञकर्म्ममें दक्षिणाके लिये किस हेतु सुवरण श्रेष्ठ है? हे पितामह! भूमि और गऊसे सुवरण किस निमित्त पावन और श्रेष्ठ है तथा दक्षिणाके लिये किस कारणसे वह परम श्रेष्ट है? यह सब मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाराज! सुवरणकी उत्पत्तिके विषयमें बहुत बड़ा कारण जो मुझे मालूम हुआ है, तुम सावधान होकर उसे सुनो, मेरे पितामहतेजस्वी शान्तनुके मरनेपर मैं उनका श्राद्ध करनेके लिये गङ्गाद्वारमें गया था। हे तात! मैंने वहां जाके श्राद्धकर्म्म आरम्भ किया, उस समय मेरी माता जान्हवीने इस विषयमें सहायताकी थी। अनन्तर अग्रभागमें ऋषियोंको बैठाके जल दान प्रभृति कार्य्य आरम्भ किया। मैं सावधान होकर यथारीतिसे पूर्व्वकर्म्म समाप्त करके विधिपूर्व्वक पूरी रीतिसे श्राद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ। हे नरनाथ! अनन्तर उस दाभको भेदकर मनोहर अङ्गद तथा आभूषणोंसे युक्त एक लम्बी भुजा समुत्थित हुई। हे भरतश्रेष्ठ! मैं अपने पिताको स्वयं प्रतिग्रहोता होते तथा उनकी भुजाको निकली हुई देखके अत्यन्त विस्मित हुआ। अनन्तर शास्त्रके अनुसार विचार करके मैं फिर सावधान हुआ, वेदके बीच हाथमें पिण्ड देनेकी विधि नहीं है, इसलिये मैंने बिचारा कि पितर लोग साक्षात् सम्बन्धसे इस लोकमें कदापि मनुष्योंका पिण्ड ग्रहण नहीं करते, ऐसा ही विहित है, इस हेतु कुशके बीच पिण्डदान करना चाहिये। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर मैंने पिताके उस हस्तनिदर्शनका अनादर करके शास्त्रप्रमाणके अनुसार पिण्डदानकी सूक्ष्म विधि स्मरण करते हुए वह सब पिण्ड कुशके बीच ही प्रदान किया; जान रक्खो, कि यह शास्त्रके अनुसार ही हुआ।

हे नरनाथ! अनन्तर मेरे पिताकी बाहु अन्तर्हित हुई। हे भरतश्रेष्ठ! मृतपिता स्वप्नमें मुझे दर्शन देके बोले, तुम जो शास्त्र प्रमाणके अनुसार इस विज्ञानसे मुग्ध नहीं हुए, इसलिये मैं प्रसन्न हुआ हूं। आत्मा धर्म्मभृत समस्त वेद ऋषियोंके सहित पितृगण साक्षात् पितामह ब्रह्मा और गुरुजन-ये सब कोई प्रमाणमें स्थित हैं और मर्य्यादा भी विचलित नहीं हुई। हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ! इसलिये आज तुमने पूरा कार्य्य किया है, किन्तु भूमि और गौओंके निमित्त सुवर्ण दान करो। हे धर्म्मज्ञ! ऐसा करनेसे मैं और मेरे समस्त पितामहगण पवित्र होंगे, क्योंकि सुवर्ण परम पवित्र है। मेरे पिताने कहा था, कि जो लोग सुवर्ण दान करते हैं, वे दश ऊपरके और दश नीचेके पुरुषोंका उद्धार किया करते हैं। हे नरनाथ! अनन्तर मैं सावधान होनेपर विस्मित हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! तब मैंने सुवर्ण दान करनेकी इच्छा की। हे महाराज! जामदग्न्यसम्बन्धीय धन तथा आयुष्कर इस पुराने इतिहासको सुनो।

पहले समयमें तीव्ररोषयुक्त जामदग्न्य रामने इक्कीस वार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया था। हे महाराज! अनन्तर महावीर राजीव लोचन रामने अखण्ड पृथ्वीमण्डलको जीतके ब्राह्मणों और क्षत्रियोंसे पूजित सर्व्वकामयुक्त वाजिमेध यज्ञ आरम्भ किया। वह यज्ञ सर्व्वभूतोंके लिये पावन, तेज तथा द्युतिको बढ़ानेवाला है। जमदग्निपुत्र तेजस्वी रामने उस यज्ञसे पापरहित होके भी अपने चित्तको पवित्र न पाया; महात्मा भृगुनन्दन रामने दक्षिणायुक्त यज्ञ करके वेद जाननेवाले ऋषियों और देवताओंसे पूछा। हे महाभागगण! उग्र-

कर्म्ममें रत रहनेवाले मनुष्योंके लिये जो परम पावन हो, उसे ही बर्णन करिये, जब रामने करुणायुक्त होकर ऐसा कहा, तब वेदशास्त्र जाननेवाले महर्षिवृन्द उनका बचन सुनके बोले, हे राम! वेदप्रमाणके अनुसार ब्राह्मणोंका सम्मान करो। पावनके सम्बन्धमें फिर विप्रर्षियोंसे प्रश्न करो, वे महाप्राज्ञ महर्षिवृन्द जैसा कहें, वैसा ही करो।

अनन्तर महातेजस्वी भृगुनन्दनने देवर्षि वशिष्ठ, अगस्त्य और कश्यपसे यही विषय पूछा, उन्होंने कहा। हे विप्रेन्द्र! मेरी ऐसी मति हुई है, कि मैं कैसे कर्म्म तथा कौनसी वस्तु प्रदान करनेसे पवित्र हूंगा? हे सत्तम! यदि मुझपर आप लोगोंकी कृपा है, तो जिस प्रकार मेरी पवित्रता हो, उसे बर्णन करिये।

ऋषिवृन्द बोले, हे भृगुनन्दन! मैंने सुना है, कि पापी मनुष्य गऊ, भूमि और धन दान करके पवित्र होते हैं। हे विप्रर्षि! अन्य एक महत् पवित्र दिव्य अद्भुत रूपवाले, अग्निके पुत्र सुबरणका दान विषय सुनो। मैंने सुना है, कि पहले समयमें वीर्य्यके प्रभावसे सब लोकोंको जलाके सुबर्ण उत्पन्न हुआ था। ऐसे विख्यात सुबर्णको दान करनेसे मनुष्य सिद्धिलाभ करता है। अनन्तर संशितव्रती बसिष्ठ मुनि बोले, हे राम! अग्निसे जिस प्रकार सुबर्ण उत्पन्न हुआ, उसे सुनो। जिसके दान करनेसे तुम्हें परम फल प्राप्त होगा, इस समय उसहीका बर्णन होता है। हे महाबाहो! सुबर्ण यतस्व रूप है, क्योंकि वह जैसा गुणावत्तर है, वह सब मैं कहता हूं सुनो, इस सुबर्णको निश्चय ही अग्नि और चन्द्रस्वरूप जानो। हे भृगुनन्दन! ऐसा देखा तथा सुना गया है, कि अज, अग्नि, बरुण, मेष, सूर्य्य, अश्व, कुञ्जर, नाग, महिष, असुरगण और कुक्कुट, बराह, राक्षस, यज्ञ, भूमि, गऊ, पय, चन्द्रमा तथा पृथ्वी, इस समस्त जगतको मंथके तेजपुञ्ज उत्पन्न हुआ था। हे विप्रर्षि! इन सबसे अत्यन्त उत्तम रत्न सुबर्ण उत्पन्न हुआ। इस ही निमित्त देवता, गन्धर्व्व, सर्प, राक्षस, मनुष्य और पिशाचगण सावधान होके उसे धारण किया करते हैं। हे भृगुवंशधुरन्धर! ये सुबर्णके बने हुए मुकुट कवच आदि अनेक भांतिके अलंकारोंसे शोभित होते हैं। हे मनुजश्रेष्ठ! इन्हीं कारणोंसे भूमि गऊ तथा रत्न प्रभृति सब पवित्र वस्तुओंके बीच सुबर्ण परम पवित्र कहा गया है। इस लोकमें भूमि और गऊ दान करके अन्य जो कुछ श्रेष्ठ दान किया जाता है, उन सबके बीच सुबर्ण दान ही श्रेष्ठ हुआ करता है। हे देवद्युति! सुबर्ण अक्षय और पवित्र है, इसलिये इसे ब्राह्मणोंको दान करो, क्योंकि यह उत्तम तथा पावन है। समस्त दक्षिणा विषयमें सुबर्ण ही विहित हुआ है। जो लोग सुबर्ण दान करते हैं, वे सर्व्वप्रदाता होते हैं। जो लोग सुबर्णदान देते हैं, वे देवता दान किया करते हैं, क्योंकि अग्नि ही समस्त देवतात्मक है और सोना अग्निस्वरूप है, इसलिये सुबर्णदाता समस्त देवता दान करता है। हे पुरुषश्रेष्ठ! पण्डित लोग सुबर्ण दानसे श्रेष्ठ और किसीको भी नहीं जानते। हे सर्व्व शास्त्रविशारद विप्रर्षि! मैं फिर कहता हूं, मेरे समीप सुबर्णका माहात्म्य सुनो।

हे भृगुनन्दन! पहले प्रजापतिने न्यायपूर्व्वक जो कहा है, उसे मैंने पुराणमें सुना है। हे भृगुकुल धुरन्धर! सर्व्वश्रेष्ठ हिमालय पर्व्वतपर महानुभाव भगवान शूलधारी रुद्रके सहित रुद्राणी देवीका बिवाह होनेपर महानुभाव भगवान शिवका देवीके सङ्ग समागम होनेके समय समस्त देववृन्द घबड़ाकर महादेवके निकट उपस्थित हुए। हे भृगुनन्दन! वे सब लोग बैठे हुए महादेव और उमादेवीको सिर झुकाकर प्रणाम करके उनसे बोले, हे देव! देवीके सङ्ग आपका यह समागम होता है, आप अत्यन्त तेजस्वी तपस्वी हैं और ये भी आत

तेजस्विनी तपस्विनी हैं। हे देव! आपका तेज अव्यर्थ है, उमादेवीका तेज भी तैसा ही है; हे देव! हे विभु! आपका अत्यन्त बलवान पुत्र होगा, वह पुत्र तीनों लोकके बीच किसीको भी अवशिष्ट न रक्खेगा, यह निश्चय ही बोध हो रहा है। हे विशालनेत्र लोकेश! इसलिये आप इन प्रणत देवताओंके हितके लिये वर दान करिये। हे विभु! आप पुत्रके निमित्त परम तेजको रोकिये। आप त्रिभुवनके सारस्वरूप हैं, इसलिये सब लोकोंको सन्तापित न करिये, आपका वह पुत्र निश्चय ही देवताओंको अभिभव करेगा। हमारे विचारमें देवी पृथ्वी, स्वर्ग और आकाश, ये सब आपके तेजको धारण करनेमें समर्थ न होंगे। तब यह समस्त जगत् आपके तेजप्रभावसे एकबारही भस्म होगा। हे प्रभु भगवन्! इसलिये आपको हमपर प्रसन्न होना उचित है। हे सुरसत्तम! इस देवीमें आपका पुत्र होना सम्भव नहीं है, इसलिये धीरजके सहारे अत्युत्तम जलते हुए तेजको निग्रह करिये।

हे विप्रर्षि! देवताओंके ऐसे वचन सुनकर भगवान् वृषभध्वजने उन्हें 'एवमस्तु' कहके उत्तर दिया। वृषवाहन शिवने उनका वचन स्वीकार करके निज वीर्य्यको ऊर्द्धमें धारण किया; तभीसे उनका नाम ऊर्द्धरेता हुआ। अनन्तर इस प्रकारसे पुत्र न होनेपर रुद्राणीने क्रुद्ध होकर स्त्रीस्वभावके अनुसार सहजहीमें क्रोधवशसे देवताओंको यह कठोर वचन बोलीं, कि जिस कारणसे पुत्रको इच्छा करनेवाले मेरे स्वामी तुम लोगोंके द्वारा पुत्रलाभसे निवृत्त हुए, उस ही निमित्त तुम लोगोंके पुत्र नहीं होगा। हे देववृन्द! तुम लोगोंने जिस प्रकार मेरे पुत्र नहीं होने दिये, उसी भांति तुम्हारे भी सन्तान न होंगी। हे भृगुनन्दन! उस शाप देनेके समय अग्निदेव वहांपर उपस्थित नहीं थे। देवीके ऐसे शापसे देववृन्द उसी समयसे अनपत्य हुए, उस समय रुद्रदेवने अप्रतिम तेज धारण किया। अनन्तर उनसे कुछ तेजस्खलित होके पृथ्वीपर गिरा। वह अद्भुत तेज पृथ्वीपर गिरते ही अग्निमें मिलकर बढ़ने लगा। वह तेज अग्निसे मिलकर आत्मयोनित्वको प्राप्त हुआ, उस ही समयमें इन्द्रादि देववृन्द तारक नाम असुरके द्वारा अत्यन्त सन्तापित हुए। आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, दोनों अश्विनीकुमार और साध्यगण दैत्यके पराक्रमसे भयभीत हुए थे। देवताओंके स्थान, पुरी, विमान और ऋषियोंके आश्रमोंको असुरोंने हर लिया था। देवता और ऋषि लोग दीनचित्त होकर अजर अमर विभु ब्रह्माके शरणागत हुए।

८४ अध्याय समाप्त।

देववृन्द बोले, हे प्रभु! आपने जिसे वर दान किया है, वह तारक नाम महाअसुर देवताओं और ऋषियोंको क्लेश दे रहा है। इसलिये उसके मारनेकी युक्ति करिये। हे पितामह! उससे हम लोगोंको भय हुआ है, इसलिये आप हमें उबारिये, हम लोगोंको और दूसरा उपाय नहीं है।

ब्रह्मा बोले, इस लोकमें सब प्राणी मोहयुक्त अधर्म्मको अभिलाष नहीं करते, इसलिये देवताओं और ऋषियोंको पीड़ा देनेवाले ताड़कासुरको शस्त्रसे मारो। हे सुरसत्तम! वेद और धर्म्म नष्ट न होजावे, उस विषयमें मैंने पहले ही उपाय रचा है, इसलिये तुम्हारा दुःख दूर होवे।

देववृन्द बोले, आपके वरप्रभावसे वह दैत्य बलसे गर्व्वित हुआ है, इसलिये देवतावृन्द उसे मारनेमें समर्थ नहीं हैं, तब वह किस प्रकार नष्ट होगा? हे पितामह! तारकासुरने 'मैं देव दानव और राक्षसोंके द्वारा न मरू"—

ऐसा ही कहके आपके समीप वर लिया है। पहले रुद्राणीकी पुत्र कामना नष्ट होनेसे उन्होंने देवताओंको यह शाप दिया है, कि तुम लोगोंके सन्तान न होगी।

ब्रह्मा बोले, हे सुरोत्तमगण! उस शाप देनेके समय वहांपर अग्निदेव नहीं थे, वे देव-द्वेषियोंको मारनेके लिये पुत्र उत्पन्न करेंगे। वह पुत्र देव, दानव, राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व्व, नाग और पक्षियोंको अतिक्रम करके जिस तारका-सुरसे तुम लोगोंको भय हुआ है, उसे अव्यर्थपात शक्ति अस्त्रसे तथा देवशत्रु अन्य असुरोंको मार-कर 'सनातन सङ्कल्पकाम' इस नामसे बिख्यात होगा। रुद्रका वीर्य्य स्खलित होके जो अग्निमें प्रविष्ट हुआ है, उस ही तेजसे अग्निदेव द्वितीय अग्निकी भांति गङ्गाके गर्भसे देवशत्रुओंको मारनेवाला एक महत् पुत्र उत्पन्न करेंगे। अग्निदेव शापके समयमें छिपे हुए थे इस ही निमित्त वे शापग्रस्त नहीं हुए। हे देवगण! इसलिये उसहीसे तुम लोगोंके भयको छुड़ाने-वाला पावकनन्दन उत्पन्न होगा। अब तुम लोग अग्निदेवकी खोजके इस कार्य्यमें नियुक्त करो। हे अनघगण! यह मैंने तारकासुरके बधका उपाय कहा है। तेजस्वियोंका शाप तेज पदार्थको अभिभव नहीं कर सकता, बल प्रबल पुरुषोंके समीप अबल हुआ करता है। तपस्विगण अवध्य वरयुक्त पुरुषोंका भी नाश करनेमें समर्थ हैं। सनातन जगत्पति अग्निदेव सर्व्वग सर्व्वभावन सब प्राणियोंके हृदयमें शयन करनेवाले काम्यमान् अग्निदेव पुत्रविषयमें काम-नायुक्त होवें। ये रुद्रदेवसे भी जेठे और सर्व्व-शक्तिमान हैं; अब तेजपुञ्ज अग्निकी शीघ्र खोज करो, वही अग्निदेव तुम लोगोंकी इच्छा पूरी करेंगे। तिसके अनन्तर देवताओंने महानुभाव ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके सङ्कल्प सिद्ध होनेसे अग्निको खोजनेके लिये प्रस्थान किया। ऋषियों और देवताओंने अग्निके दर्शनकी इच्छा करके उन्हें तीनों लोकोंमें खोजने लगे। हे भृगुश्रेष्ठ! परम तपस्यायुक्त लोकविख्यात् सिद्धगण अग्निको खोजते हुए सब लोकोंमें घूमने लगे। किन्तु जलमें लीन रहनेसे अग्निदेव नहीं दीख पड़ते थे, इसीसे उन्हें न जान सके। अनन्तर अग्निके तेजसे प्रदीप्त और दुःखितचित्त होके एक जल-चर मेड़क रसातलसे निकलके अग्निके दर्शनकी इच्छा करनेवाले डरे हुए देवताओंसे बोला। हे देवगण! अग्निदेव रसातलके तले निवास करते हैं, मैं उनके उत्तापसे दुःखी होके इस स्थानमें आया हूं। हे देवगण! वह हव्यवाहन भगवान अपने तेजके सहारे जलका संसर्ग करके उसके बीच सोरहे हैं। हम उनके प्रभावसे सन्तापित हुए हैं। हे देवगण! यदि तुम लोगोंको इच्छा अग्निदेवके दर्शन करनेकी हो और उनके सहारे तुम्हारा किसी कार्य्यको सिद्ध करनेका प्रयोजन हो, तो जाओ उस ही स्थानमें उन्हें पाओगे। हे देववृन्द! मैं अग्निके भयसे दुःखित हुआ हूं, इसलिये जाता हूं। मेड़क ऐसा कहके शीघ्र ही जलमें प्रविष्ट हुआ हुताशनने उस समय मेड़ककी खलता जान ली और उन्होंने उसे यह कहके शाप दिया, कि तुम्हें 'रसका ज्ञान न होगा।' सर्व्वशक्तिमान अग्निदेव मेड़कको ऐसा शाप देके शीघ्रही वहांसे दूसरे स्थानमें निवास करनेके लिये चले गये; देवताओंको दर्शन नहीं दिया। हे महाबाहो भृगुश्रेष्ठ! देवताओंने मेड़कोंपर जिस भांति कृपा की, मैं वह सब कहता हूं सुनो।

देवगण बोले, अग्निके शापसे यद्यपि तुम जिह्वारहित तथा रसज्ञानसे हीन हुए हो, तौभी तुम लोग अनेक प्रकारके वाक्य बोलोगे। बिलवासी, निराहारी, अचेतन, गतप्राण और सूख जानेपर भी पृथ्वी तुमलोगोंको धारण करेगी, तुम लोग घोर अन्धकारसे युक्त रात्रिके समयमें भी बिचरोगे। देववृन्द मेड़कसे ऐसा वचन कहके अग्निकी खोजनेके निमित्त फिर

इस पृथ्वीपर घूमने लगी, किन्तु हुताशनको न देखसके। हे भृगुनन्दन! अनन्तर देवेन्द्रके ऐरावत सदृश किसी हाथीने देवताओंसे कहा, कि अग्निदेव अश्वत्थवृक्षमें निवास करते हैं। तब अग्निने क्रुद्ध होके सब हाथियोंको शाप दिया।

हे भृगुवंशधुरन्धर! हाथीके द्वारा सूचित होनेपर अग्निदेवने उसे शाप दिया, कि तुम्हारी जिह्वा उलटी होगी। हाथियोंको ऐसा शाप देकर अश्वत्थवृक्षसे निकलकर शयन करनेकी इच्छासे शमीवृक्षमें प्रविष्ट हुए। हे भृगुकुलश्रेष्ठ! सत्यपराक्रमी देवताओंने प्रीतिपूर्व्वक जिस प्रकार हाथियोंपर कृपाकी थी, उसे सुनो।

देववृन्द बोले, तुमलोग उलटी जीभसे भी सब वस्तु खाओगे और ऊंचे स्वरसे अव्यक्त वाक्य उच्चारण करोगे देवताओंने ऐसा कहके फिर अग्निका अनुसरण किया। अग्नि भी अश्वत्थवृक्षसे निकलकर शमीगर्भमें आकर बैठ रहे। हे विप्र! अनन्तर सुग्गेके सुखसे अग्निके निवासका विषय सुनके देववृन्द उस ही ओर दौड़े। तब अग्निदेवने सुवाको शाप दिया कि तुम वाक्यरहित होगे और उसकी जिह्वा ऐंठ दी। देवताओंने अग्निको देखके दयायुक्त होकर सुवासे कहा, हे शुक! तुम्हारा वचन एक-बारगी नष्ट होगा, जिह्वा ऐंठी रहनेपर भी तुम्हारा वचन बालकी भांति अव्यक्त मधुर अद्भुत और अत्यन्त मनोहर होगा। शुक पक्षीको ऐसा कहके देवताओंने शमीगर्भमें अग्निदेवको देखके उस शमीवृक्षको ही सब कार्य्योंके लिये पवित्रस्थान किया। तभीसे अग्नि शमीगर्भसे उत्पन्न हुआ करती है। उस ही समयसे मनुष्योंको शमीको शाखासे अग्नि उत्पन्न करनेका उपाय मालूम हुआ। हे भार्गव! रसातलमें जो सब जल अग्निके द्वारा स्पर्शयुक्त हुआ था, जिसमें अग्निदेव सोये थे और जो अग्निके तेजसे उत्तप्त हुआ था; वही पर्व्वतके भरनेके सहारे उष्णता परित्याग किया करता है। जो हो, उस समय अग्निदेव देवताओंको देखके दुःखित हुए और उनसे पूछा कि तुम लोग किस निमित्त आये हो? उन देवताओं और परमर्षियोंने अग्निसे कहा, कि हम लोग तुम्हें किसी कार्य्यमें नियुक्त करेंगे, वह तुम्हें करना होगा, उसे करनेसे तुम्हारा भी उत्तम महान् गुण प्रकटेगा।

अग्निदेव बोले, हे देववृन्द! कहो तुम्हारा कौनसा कार्य्य है? मैं उसे करूंगा। मुझे तुम लोगोंके नियोज्य विषयमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

देववृन्द बोले, तारक नाम असुर ब्रह्माके वरसे दर्पित होकर बलपूर्व्वक हम लोगोंको पीड़ित करता है, इसलिये उसके बधका विधान करो। हे महाभाग पावक! इन देवताओं, ऋषियों और प्रजापतिका परित्राण करो। हे प्रभु! तेजसे युक्त वीरपुत्र उत्पन्न करो। हे हव्यवाहन! उस असुरसे हम लोगोंको भय हुआ है उसे नष्ट करो। हम लोग महादेवीके द्वारा शापयुक्त हुए हैं, इस समय तुम्हारे पराक्रमके अतिरिक्त हमारे लिये और कुछ भी सहारा नहीं है। हे प्रभु! इसलिये हमारा परित्राण करो। अनन्तर दुर्द्धर्ष भगवान हव्यवाहनने कहा, "ऐसा ही होगा" इतना कहके वह भागीरथी गङ्गाके समीप गये गङ्गाके निकट जाके उनके सङ्ग सहवास किया और उसी समय गङ्गाको गर्भ रह गया। तब कोषमें कृष्णवर्त्माकी भांति वह गर्भ बढ़ने लगा, अग्निके तेजसे गङ्गा विह्वल तथा अचेत होकर बहुत ही सन्तापित हुईं, वह उसे सह न सकीं अग्निके द्वारा तेजयुक्त गर्भके स्थित होनेपर किसी असुरने भयङ्कर शब्द किया। अकस्मात् उत्पन्न हुए उस महाशब्दसे गङ्गा डरके सम्भ्रान्तनयन विह्वल, चेतहीन तथा संज्ञारहित होकर देहके सहित गर्भको ले चलनेमें असमर्थ हुईं।

हे विप्र! तब गङ्गा तेजसे परिपूरित होके